

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180591

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H 83 Accession No. G H 2808

Author V 295

Title वरकर मामा
सिपही का बीबी

This book should be returned on or before the date marked below.

ऋषाही की बीवी

—सामाजिक पृष्ठभूमि पर लिखा मार्मिक उपन्यास—



लेखक

मामा वरेरकर

अनुवादक

रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे



पुस्तक भेंट के निमित्त है

१९६१

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय

मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली

पहली बार : १९६१

मूल्य

सजिल्द : अढ़ाई रुपये

राष्ट्रभाषा ।

दि

प्रकाशकोय

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मराठी के लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। उन्होंने अनेक नाटकों की रचना की है, उपन्यास लिखे हैं और बहुत-से ग्रंथों का बंगला से मराठी में अनुवाद किया है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह पुरानी पीढ़ी के होते हुए भी विचारों से नई पीढ़ी के साथ हैं। यही कारण है कि उनके विचारों में और उनकी कृतियों में आज भी बड़ी ताजगी है।

हिन्दी में लेखक की कई पुस्तकों के अनुवाद हुए हैं और हिन्दी के बहुत-से पाठक उनके नाम से भली-भांति परिचित हैं।

मामा के इस उपन्यास को हिन्दी-जगत के सामने रखते हुए हमें प्रसन्नता होती है। इसका कथानक सामाजिक जीवन से लिया गया है। एक परिवार के जीवन के उतार-चढ़ावों को लेकर उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। अनेक परिस्थितियों का निर्माण करते हुए अंत में लेखक ने परिवार के सदस्यों को ऐसे स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया है, जिसकी ठक कल्पना भी नहीं कर सकते।

उपन्यास का पटल छोटा है, पर उसपर अंकित चित्र मर्मस्पर्शी हैं।

हम आशा करते हैं, यह उपन्यास सर्वत्र चाव से पढ़ा जायगा।

—मंत्री

सिपाही की बीवी

: १ :

यदि मेरी भाभी से कोई कहता कि आप सिपाही की बीवी हैं तो उन्हें बुरा लग जाता। वैसे देखा जाय तो वह सिपाही की बीवी नहीं थीं। उनके पति याने मेरे बड़े भाई, जिन्हें मैं 'दादा' कहता था, सब-इन्स्पेक्टर थे। सिपाही को हवलदार, हवलदार को सब-इन्स्पेक्टर और सब-इन्स्पेक्टर को इन्स्पेक्टर कहने का आम रिवाज है। उसी तरह हमारे दादा को भी लोग इन्स्पेक्टर कहते थे और इसीलिए जब भाभी से कोई कहता कि वह सिपाही की बीवी हैं, तो वह नाराज हो जातीं। हमारे दादा एम० ए० पास थे। विश्वविद्यालय की इस अन्तिम परीक्षा को पास करने के बाद वह किसी कालेज में प्रोफेसर होना चाहते थे। स्कूल में अध्यापक हो जाना तो बहुत मामूली बात थी, पर मास्टरी उन्हें पसन्द न थी। उनकी अपनी महत्वा-कांक्षा यह थी कि जब नौकरी ही करनी है तो वह कम-से-कम किसी ओहदे की तो हो, उसका कोई रतबा तो हो। प्रोफेसर होने के लिए या तो प्रथम श्रेणी में पास होना चाहिए था या कहीं कोई वसीला होना चाहिए था, पर दादा पास हुए द्वितीय श्रेणी में, और कोई वसीला भी उनके पास न था। इसलिए उन्होंने पुलिस-विभाग में अर्जी भेज दी, और वह मंजूर हो गई। वह पुलिस ट्रेनिंग कालेज में भरती कर लिये गए और कुछ ही दिनों बाद उन्हें सब-इन्स्पेक्टरी मिल गई। बाद में उन्हें 'रावसाहब' का खिताब घर-बैठे आप-ही-आप मिल गया। इस खिताब का उन्हें बड़ा मोह था और सच तो यह है कि इसे पाने के लिए वह बड़े लालायित रहे थे। पर उनके लिए उन्हें राजा के जन्म-दिन या हर अंग्रेजी पड़वा को प्रकाशित होनेवाली फहरिस्त के लिए रुकना नहीं पड़ा।

मेरा अनुमान है कि भाभी और दादा का परिचय पहले कहीं किसी कालेज में ही हो गया होगा। 'हो गया होगा', मैं इसलिए कह रहा हूँ कि वे दोनों चार जनों के बीच कालेज के अपने पारस्परिक सम्बन्ध की बात कभी नहीं करते थे, परन्तु जब दोनों में कभी खटक जाती तो एक-दूसरे की पुरानी बातों पर ताना मारते समय कालेज के सम्बन्ध की बात अवश्य उठ आती; हालांकि इतना वे भूलकर भी कहने को कभी तैयार न थे कि उन दोनों की जान-पहचान उनके कालेज के दिनों से चली आ रही है।

भाभी भी बी० ए० पास थीं। विवाह से पहले वह बम्बई की एक प्रसिद्ध शाला में अध्यापिका थीं। इसीलिए मैं कभी-कभी उन्हें 'मास्टरनी भाभी' कह दिया करता था। 'सिपाही की बीवी' कहने से उन्हें जितना गुस्सा आता था, उतना ही 'मास्टरनी भाभी' कहने से उन्हें आनन्द होता था। पर उन्हें चिढ़ाने के लिए मैं उन्हें जान-बूझकर 'सिपाही की बीवी' कह दिया करता था।

भाभी की एक आदर्श अध्यापिका बनने की बड़ी आकांक्षा थी। शायद दादा की तरह उन्हें भी प्रोफेसर बनने की तीव्र अभिलाषा रही हो। मेरे इस सन्देह का निराकरण आगे चलकर हो गया। परन्तु इतना सच है कि विवाह हो जाने के कारण उन्हें जो मास्टरनी की नौकरी छोड़ देनी पड़ी, वह उनके मन को हमेशा खटकती रही।

उम्र में मैं भी भाभी के ही बराबर था और मैं भी बी० ए० हो गया होता। पर...

पर बात यह हुई कि पढ़ाई से मैं बहुत जल्दी ऊब गया। हां, कालेज में गये बिना यदि परीक्षा में बैठ जा सकता तो मैं जरूर बी० ए० हो जाता, परन्तु स्कूल-मास्टरों और स्त्रियों के लिए यह सहूलियत जिस प्रकार नागपुर विश्वविद्यालय ने कर दी है, उस प्रकार की कोई सुविधा हमारे बम्बई के मुर्दा विश्वविद्यालय द्वारा न किये जाने के कारण डिग्री का तिलक मैं अपने माथे पर धारण न कर सका।

दूसरी एक बात और थी। वह यह कि हम घर के बड़े अमीर न थे। दादा की पढ़ाई में बहुत-सा रुपया स्वाहा हो चुका था। डिग्री लेने के बाद भी दादा के कुछ साल बेकारी में गुजरे थे और हम रहते थे देहात में।

पर छोड़िये इन बातों को । 'अन्दर की ये बातें' मैं अक्सर किसीसे नहीं कहता । दादा को अब अच्छी तनखाह मिलने लगी तो मुझ-जैसे आवारा भाई को घर-बैठे पोसने से उन्हें कोई इन्कार न था । फिर मैं कोई उद्योग-धन्धा करता तो क्यों करता ?

दादा की नौकरी शहर में लग जाने से हमें देहाती जीवन से अब छुट्टी मिल गई थी । हम शहर में रहने लगे थे । शहर कहने से साधारणतः बम्बई और पूना निगाह के सामने आ जाते हैं, पर हम देहातियों की दृष्टि में तहसील या जिले का सदर मुकाम भी शहर माना जाता है । इसकी कल्पना बम्बई और पूनावालों को नहीं हो सकती ।

लेकिन शहर की हमारी इस व्याख्या से भाभीजी असन्तुष्ट थीं । उनकी सारी जिन्दगी बम्बई में बीती थी । बम्बई के भीड़-भड़क और कोलाहल में वह छोटी से बड़ी हुई थीं । मेरी निगाह में जिले के सदर मुकाम की जो बस्ती शहर लग रही थी, वह उनकी निगाह में बिल्कुल पिछड़ी हुई थी और वहां के लोगों के रहन-सहन से उन्हें सन्तोष न था ।

हमारे घर में ज्यादा लोग न थे । दादा, भाभी और मैं । हम तीनों के अलावा हमारी दूर के नाते की बुआजी थीं । चूल्हा-चक्की का राज्य इन बुआजी को सौंपकर हम आलस में दिन बिताते थे । पर हां, हमारे आलस्य के कार्यक्रम में दादा शामिल न थे । उस शहर में वह एक जिम्मेदार अफसर थे और उनकी आफिसरी उन्हें घर-गिरिस्ती के सुख से वंचित रखने के लिए काफी थी ।

इसीलिए भाभी का असन्तोष बराबर बढ़ता जा रहा था । जिले का सदर मुकाम होने पर भी वहां कोई अच्छा पुस्तकालय न था । यों ले-देकर एक पुस्तकालय था, जिसपर वहां के लोगों को बड़ा गुमान था कि उनका वह पुस्तकालय महाराष्ट्र का सबसे पुराना पुस्तकालय है, पर उनके इस अभिमान का हम लोगों की नज़रों में कोई विशेष आधार न था । एल्फिंस्टनसाहब जब हिन्दुस्तान छोड़कर विलायत जाने लगे तो उन्होंने अपना पुस्तक-संग्रह बेच दिया था । मेरा अन्दाज है कि इस पुस्तकालय के पुराने प्रवर्तकों ने किसी समय वही संग्रह खरीद लिया होगा । यह नहीं कि उस पुस्तकालय में कोई नई पुस्तकें थी ही नहीं । थीं जरूर, पर वे थीं

तिलक का गीता रहस्य, इंदुप्रकाश का कथासरित्सागर और भागवत-महा-भारत के अनुवाद, आदि जैसी पुस्तकें। नई-नई पुस्तकें खरीदकर पाठकों के पठन-पाठन की भूख को शान्त करने की वृत्ति अभी तक उस शहर में उत्पन्न नहीं हुई थी।

वैसे देखा जाय तो उस शहर में पढ़नेवाले थे ही नहीं। जो थोड़े-बहुत थे भी, वे दैनिक और साप्ताहिक अखबार पढ़ लिया करते थे। नई पुस्तकें पढ़नी चाहिए, यह ज्ञान वहां के लोगों में अभी पैदा नहीं हुआ था। नई पुस्तकें पढ़ने की उपयोगिता को अनुभव करनेवाले जो इने-गिने पाठक वहां थे, वे ऐसी पुस्तकों को अपने खर्चे से मंगवाकर पढ़ा करते थे। ऐसे लोगों से मैंने अपना सम्पर्क स्थापित किया और नई-नई पुस्तकें उनसे मांगकर घर लाने और भाभी को पढ़ने के लिए देने लगा।

विद्यार्थी-जीवन में हमारे दादा खूब पढ़ते थे, परन्तु जबसे वह नौकर हुए, उन्हें पढ़ने की फुरसत ही न मिलती। मैं जो पुस्तकें दूसरों से मांगकर ले आता था, उनकी ओर वह फूटी आंख से भी न देखते थे। नौकरी के कामों में वह इतने घिरे रहते कि उन्हें यह सोचने को भी अवकाश न मिलता कि भाभी को पढ़ने का बेहद शौक है तो उनके लिए कुछ पुस्तकें मंगा देनी चाहिए।

और मैं नहीं समझ पाता कि भाभी को भी दादा से पुस्तकों की मांग क्यों नहीं करनी चाहिए थी? आखिर दादा को भी पता लगना चाहिए था कि मेरी पत्नी को पुस्तकों की जरूरत है? एक बार भाभी से मैंने यह कहा भी, पर वह गाल फुलाकर खामोश होकर बैठ गई। मुझे उन्होंने ठीक तरह से कोई जवाब भी न दिया। भाभी का स्वभाव चिड़चिड़ा हो, ऐसी बात न थी। यद्यपि यह जानने के लिए कि पढ़ाई-लिखाई के दिनों में वह कैसी थीं, मेरे पास कोई साधन नहीं था, फिर भी उस समय कुल मिलाकर वह बड़ी खुशमिजाज और खिलाड़ी रही होंगी, ऐसी मेरी धारणा थी।

लीजिये फिर 'होंगी' आ गया! 'होंगी' कहना याने यह अन्दाज करना कि आज उस तरह का न दीखने पर भी वह कभी वैसी रही होंगी! और वास्तव में बात यही थी। आज कहीं-न-कहीं कोई कांटा था और वह कांटा उन्हें चुभ रहा था।

हमारे घर रोज़ 'टाइम्स' आया करता था। सरकारी नौकरों के घर का तो वह भूषण हुआ करता है। पर दादा उस अखबार को शायद ही कभी पढ़ा करते। मैं उसे अथ से इति तक, छोटे-छोटे विज्ञापनों सहित, रोज़ पूरा पढ़ डालता था। भाभी इसपर नाराज़ हो उठतीं। एक बार तो क्रोध में वह चिल्ला उठीं, 'ह्वाई दिस डर्टी पेपर इन आवर हाउस?' (हमारे घर में यह गंदा अखबार क्यों?) हमारी भाभी को जब गुस्सा आता तो वह अंग्रेज़ी में बोलने लगती थीं। वह जो कहतीं उसका आशय कुछ इस प्रकार होता, "तुम इसे पढ़ते हो, लाला, इसीलिए यह अखबार हमारे घर आता है। 'वह' तो उसे कभी हाथ तक नहीं लगाते। अगर इसे बन्द करना चाहें तो कैसे करें? तुम्हें इससे इतना प्यार जो है!"

"बात ऐसी है, भाभी," मैं कहा करता, "पढ़ने को भी तो कुछ चाहिए न? हम चाहें, या न चाहें, पर यह 'टाइम्स' तो हमारे घर आता ही रहेगा। बिना आये रह नहीं सकता, क्योंकि सरकारी नौकर के घर का यह सौभाग्य है। हमारे घर बहुत-से आफीसर आया करते हैं। अगर उन्हें हमारे घर में 'टाइम्स' के दर्शन न हुए तो वे क्या सोचेंगे अपने मन में?"

"तुमसे तो बात करना ही फिज़ूल है!" कहकर भन्नाती हुई भाभी वहां से चल देतीं।

सच है कि जो अखबार भाभीजी चाहती थीं, वे हमारे घर में क्या, उस शहर में भी शायद ही कहीं मिल सकते थे। स्वयं उन अखबारों को मंगाने के लिए हमारी आर्थिक स्थिति काफी मज़बूत थी, परन्तु 'हमारी' शब्द की व्याख्या अभी तक निश्चित नहीं हुई थी। घर दादा का था। मैं यद्यपि भाई था, पर आश्रित था; क्योंकि न मैं कोई काम करता था, न कुछ कमाकर लाता था। यदि यह कहूं कि भाभी भी आश्रित थीं तो किसीको ठीक नहीं लगेगा। परन्तु उनकी और मेरी दृष्टि में वस्तुस्थिति यही थी। आमतौर पर यह माना जाता है कि पति के घर में गृहणी का शासन चलता है। मैंने बहुत-से परिवार देखे हैं। बहुत-से परिवारों की भीतरी हालत भी मेरी नज़रों से गुज़री है और इसीलिए मुझे लगता है कि आम लोगों का यह ख्याल पूरी तरह ठीक नहीं है।

भाभी को भी यही लगता था, इसीलिए उनकी ऐसी उपेक्षा हो रही

थी। वह कौन-से अखबार चाहती हैं, यह दादा न जानते हों, सो नहीं। मैं यह भी नहीं सोचता कि भाभी ने अपनी यह मांग कभी उनके सामने पेश न की होगी, पर जब वे अखबार हमारे घर नहीं आये, तब मेरा यह कहना भूल न होगी कि घर का सारा अधिकार दादा के हाथ में था।

बात मामूली थी, परन्तु वह भाभी को चुभती थी। उनका स्वभाव ऐसा था कि वह अपने दिल की चुभन को साफ-साफ कह देती थीं। पढ़ने को कुछ भी न मिलने के कारण कभी-कभी वह घण्टों आराम-कुर्सी पर पड़ी रहतीं। ऐसी हालत में उनकी मुंदी हुई आंखों से बाहर निकलनेवाली आंसुओं की बड़ी-बड़ी बूंदें उनके गाल पर से बहती हुई मुझे दीख पड़ती थीं। उस समय सहानुभूति से मेरा भी हृदय विह्वल हो उठता था।

मैं भी तो आखिर उन्हींकी तरह बेकार था न। उनका तो पत्नी के नाते फिर भी कुछ-न-कुछ अधिकार था। वैसे ही भाई के नाते मेरा भी अधिकार था, परन्तु बेकार होने के कारण लोग तरह-तरह की बातें करते थे। लेकिन भाभी को कभी किसीने बेकार नहीं कहा।

कोई कहे या न कहे, पर अपनी बेकारी उन्हें आप महसूस होती थी। एक दिन मुंदी आंखों से आंसू बहाती जब वह आराम-कुर्सी पर पड़ी हुई थीं तो मैंने उन्हें पुकारा। मेरी आवाज से ज़रा हड़बड़ाकर वह एकदम चौंक उठीं। आंखें पोंछकर हँसने की कोशिश करती हुई उसी तरह कुर्सी पर तनकर बैठ गई और बोली, “क्या है, लाला?”

“रो रही थीं, भाभी?” यह पूछते हुए मेरा भी गला भर आया।

“नहीं तो!” भाभी बोली, “आजकल मेरी आंखों को कुछ हो गया है।”

“आंखों को?” मैंने डरते-डरते पूछा, “या सिर को? या मन को? या हृदय को?”

“तुम बड़े खराब हो, लाला।” हँसने की ख्यासी चेष्टा करती हुई भाभी बोली, “मनुष्य जब खाली होता है तो अपने दिमाग में वह अंट-पटांग विचारों के ताने-बाने बुनता रहता है। तुम्हारी भी वही स्थिति हो गई है। मेरी आंखों में थोड़ा-सा पानी आ गया और तुमने उससे कितने लम्बे धागे निकाल डाले?”

“सच है।” मैंने कहा, “मनुष्य जब खाली होता है तो उसे दुनिया की ओर देखने की इच्छा होती है। देखते-देखते उसकी दृष्टि सूक्ष्म हो जाती है। व्यवहारी मनुष्य को न दीख पड़नेवाली बातें मुझ-जैसे निठल्ले दर्शक की आंखों से दीखने लगती हैं और जब वे दीख जाती हैं तो उनके बारे में पूछे बिना बिल्कुल रहा ही नहीं जाता।” इतना कहकर मैं थोड़ी देर रुका। सोचा, भाभी कुछ कहेंगी, पर वह कुछ भी न बोलीं तो मैंने ही कहा, “देखिये भाभी, जिस तरह मैं बेकार हूं, उसी तरह आप भी बेकार हैं।”

भाभी एकदम जैसे चौंक पड़ीं और बोली, “मैं कैसे बेकार हूं जी ? मुझे घर के काम जो करने पड़ते हैं।”

“आपको कौन-सा काम है ?” मैंने कहा, “तीन जनों की हमारी गृहस्थी है। खाना बुआजी पकाती हैं। आप उधर जाती ही नहीं। कभी एकाध चीज बना ली, वह बात अलग है। परन्तु वह कोई काम नहीं कहा जा सकता। वह सिर्फ आपके लिए एक खेल होता है, मनोरंजन होता है। इसलिए मैं कहता हूं कि जिस तरह मैं बेकार हूं, उसी तरह आप भी बेकार ही हैं। आप कहती हैं कि खाली बैठे रहने से मेरे दिमाग में ऊंट-पटांग विचार आते हैं। खाली बैठे रहने से आपके दिमाग में जो विचार आते हैं, उन्हें भी अगर मैं ऊंटपटांग कहूं तो मेरे ख्याल से आप मुझे इसके लिए दोष न देगीं।”

मैं जो कह रहा था, बिल्कुल हृदय से कह रहा था। मेरी बातों का उनके मन पर प्रभाव पड़ा होगा। उनकी आंखें एकदम सजल हो उठीं।

“अब यही देख लीजिये,” मैं एकदम बोल उठा, “आपकी आंखें फिर बरसने लगीं। क्या हुआ आपको ?”

कांपती हुई आह छोड़कर वह क्षण-भर के लिए खामोश रहीं और बाद में सिसकी निगलकर बोलीं, “सच है, लाला, सच है। कहते हैं, खाली मकान में भूत घुस आते हैं। सो ठीक ही है। मैं क्या करूं ? यदि खाली न बैठूं तो आखिर करूं भी क्या ? कहीं कोई रास्ता नहीं सूझ रहा है। यहां की स्त्रियों से मेरी पटती नहीं। वे पुराने जमाने की हैं। चाहती हैं शहर के गड़े मुर्दे उखाड़ना, जले फफोले फोड़ना, और मुझे ऐसी बातों से बेहद चिढ़ है। यहां के छोटे अफसरों की जो औरतें हैं, वे सब ऐसी ही हैं। पति

के मूल्य से वे उसकी पत्नी का दर्जा आंकती हैं। उनके हिसाब से मैं उनकी बराबरी की नहीं हूँ। वैसे देखा जाय तो उनमें से एक भी मेरे जितनी पढ़ी-लिखी नहीं है, परन्तु मुंसिफ और तहसीलदार के आगे पुलिस सब-इन्स्पेक्टर का जो दर्जा है, उसी दर्जे से वे मेरी ओर देखती हैं। मुझे बुरा लगता है। अब रह गई ऊँचे अफसरों की स्त्रियाँ—डिस्ट्रिक्ट जज, एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, सिविल सर्जन, असिस्टेंट कलेक्टर की स्त्रियाँ—यहाँ सिर्फ एक कलेक्टर ही गोरा है। परन्तु इन काले माहबों की स्त्रियाँ साड़ियाँ पहनने पर भी समझती हैं कि वे मेमें हैं। इसलिए वे भी मुझ-जैसी को तुच्छ ही मानती हैं। मेरी भाषा जो समझ सकें ऐसी अब कौन-सी स्त्रियाँ बची हैं यहाँ? मैं जब अपने मन में विचार करती हूँ तो ये सब बड़ी-बड़ी कहलाने-वाली स्त्रियाँ मुझे अपनी अपेक्षा कम दर्जे की लगती हैं।...

“आप बिल्कुल सच कहती हैं, भाभी।” मैं बीच ही में बोल पड़ा, “मैट्रिक के आगे बढ़ी हुई एक भी नहीं है उनमें।”

“यही तो मुझे खटकता है।” भाभी इस तरह बोलीं जैसे अपने-आपसे कह रही हों, “मैं बी० ए० हूँ। अब्वल दर्जे में पास हुई थी, कई पदक और पारितोषिक प्राप्त किये थे, और अब मैं क्या कर रही हूँ? क्यों मैंने इतनी हैरानी उठाई? क्यों जान लड़ाकर इतनी पढ़ाई की? रेसकोर्स के घोड़े की तरह कलेजा फटने तक परीक्षाएं देने के लिए मैं क्यों इतना दौड़ी?”

वह एकदम बीच ही में रुक गई। उनके चेहरे पर जो मायूसी झलक रही थी, वह अब गायब हो गई थी और वहाँ कठोरता की छाया फैल गई थी। मैं सोचता हूँ, उन्होंने जो किया, वह अब स्वयं उन्हें ही अखर रहा था। किसी अज्ञात सात्विक संताप के कारण मस्तक तक चढ़े हुए खून के नीचे उतरने तक वह रुकीं और बाद में दिल खोलकर हँसती हुई बोलीं, “पर तुम हो यहाँ, लाला, इसलिए मेरा दिल थोड़ा वहला रहता है, कम-से-कम तुमसे तो बातें कर लेती हूँ।”

“पर मैं भी कहां आपकी बराबरी का हूँ?” मैंने कहा, “मैं तो सिर्फ मैट्रिक ही हूँ, यहाँ की जो स्त्रियाँ हैं, उन जैसा ही मैं भी हूँ। है न? आफीसरो की औरतों का तो कम-से-कम एक सामाजिक दर्जा है। मैं कौन हूँ?”

भाई के दम पर चर रहे मुझ-जैसे बेकार बकरे की समाज में क्या कीमत है, इसकी कल्पना घर बैठे-बैठे आपको नहीं हो सकेगी, भाभी ।”

इसी तरह की बातें जब उन्होंने अपने बारे में कीं तो वह चिढ़ उठी थीं, पर उसी तरह की बातें जब मैंने अपने बारे में कीं तो मैं हस्यांसा-सा हो गया। भाभी को मुझपर दया हो आई। बोलीं, “ऐसा मत कहो, लाला। तुम्हें क्या लगता है, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। तुम बेकार हो, इसलिए लोग तुम्हारा नाम उछालते हैं। परन्तु मैं बेकार हूँ, इसका लोगों को कुछ नहीं लगता। बेकार भाई लोगों की नज़रों में चुभता है, बेकार पत्नी के बारे में कोई कुछ नहीं कहता, न उसे नाम धरता है। मैं पत्नी जो हूँ न किसी-की ? ऐसा दुर्भाग्य है हम स्त्रियों का !”

“मैंने अब सोचा है,” मैंने कहा, “कि बंबई जाकर कोई नौकरी खोजूँ।”

“यह निर्दयता तुम्हें क्यों सूझी है ?” एकदम चौंककर मेरी ओर देखती हुई भाभी बोलीं।

“इसमें निर्दयता क्या है, भाभी ?” मैंने कहा, “अब और कितने दिनों तक मैं भाई के घर टुकड़े तोड़ता रहूँ ? लोग पग-पग पर मेरा अपमान कर रहे हैं। इसे मैं कबतक सहता रहूँ।”

“परन्तु तुम्हारे दादा ने तो तुमसे नहीं कहा कि तुम जाकर कहीं नौकरी करो।”

“हां, दादा ने तो नहीं कहा, पर दादा के ऐसा कहने तक चुपचाप बैठे रहना क्या उचित होगा ? जबतक दादा मुझसे यह न कहें कि ‘भैया, अब जाकर कहीं नौकरी खोजो और मेरा बोझ कुछ हल्का करो,’ तबतक मैं अगर मुर्दे की तरह यहीं बैठा रहूँ तो क्या यह मेरे लिए मुनासिब होगा ?

“तुम चले जाओगे तो मैं क्या करूंगी ? कम-से-कम तुम हो, इससे मुझे बाहर की दुनिया की कुछ तो खबरें मिल जाती हैं। तुम कुछ-न-कुछ पढ़ते रहते हो। मुझे आकर सुनाते हो। मेरे पास बैठकर मुझसे बातें करते हो। इतना ही यहां मेरे मन को संतोष है। तो क्या मेरा इतना संतोष भी तुम मुझसे छीन लोगे ?

बोलते-बोलते उनकी आंखों में फिर आंसू छलछला आये। उनपर उस समय क्या बीत रही थी, इसकी मुझे अनुभूति न हो रही हो, सो बात नहीं। पर आखिर में कर क्या सकता था ? लोगों के ताने मुझे असह्य हो रहे थे। बेकारी ने मेरे मन में यह शंका पैदा कर दी थी कि मेरी शक्ति धीरे-धीरे कहीं लुप्त तो नहीं हुई जा रही है ? दादा का स्वभाव पूरी तरह एक ढर्रे पर चलनेवाला था। अपनी नौकरी को छोड़कर और किसीसे भी उन्हें प्यार न था। एक सब-इन्स्पेक्टर के रूप में उनका बड़ा नाम हो गया था और उस नामवरी के कारण ही नौकरी अच्छी तरह से बजाने की धुन उनपर सवार हो गई थी। इसीलिए मुझे लगता है कि भाभी की ओर उनका ध्यान नहीं जा रहा था।

मुझे चुप देखकर भाभी बोलीं, “क्या सोच रहे हो, लाला ?”

उत्तर देने के पूर्व मैं हँस पड़ा और उस हँसी के कारण मुझे लगा कि मेरे मन में जो कुढ़न आई थी वह तिरोहित हो गई। मैंने कहा, “पत्नी और नौकरी में अधिक आकर्षक क्या है, यह सोच रहा था, भाभी।” तभी मुझे लगा, मैं कुछ ऊँटपटांग बक गया। परन्तु यह देखकर कि मेरे इस उद्गार के कारण भाभी हँस पड़ीं, मैं बोला, “अब मैं कोई छोटा तो हूँ नहीं। मेरे बराबर के नौकरियाँ करके पुरुषार्थी बन गये हैं। जब कभी उनमें से किसीसे मुलाकात हो जाती है तो मुझे अपनी गर्दन झुका लेनी पड़ती है। यही मुझे इस समय महसूस हो रहा है। मेरे जाने के कारण आप अकेली पड़ जायंगी, यह मैं जानता हूँ, परन्तु कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि अगर मैं न रहा तो दादा आज की अपेक्षा आपकी ओर शायद अधिक ध्यान देने लगें। इसीलिए मैंने बम्बई जाने का विचार किया है।”

“क्या दादा से पूछ लिया है तुमने ?” भाभी ने संकोच-भरे स्वर में पूछा।

“दादा से पूछने की क्या जरूरत है ?” मैंने कहा, “अभी तक उन्होंने मुझसे यह नहीं कहा कि ‘जाकर कहीं नौकरी ढूँढें’ तो क्या यह मुझपर उनका कम उपकार है ? क्या मुझे स्वयं अपनी हालत को नहीं समझना चाहिए।”

“ऐसा मैं नहीं कह सकती ?” दयनीय मुद्रा से भाभी बोलीं, “क्यों नहीं कह सकती? क्या तुम्हें नहीं लगता कि कुछ कर दिखाने की हिम्मत तुम्हारी तरह मुझमें भी है ?” इतना कहकर वह चुप हो गई, लेकिन जब मैंने कोई उत्तर नहीं दिया तो उन्होंने फिर पूछा, “बताओ न, क्या मैं कमजोर हूं ? कायर हूं ? नालायक हूं ? फिर तुम जैसा कहते हो, वैसा कहने का साहस मुझे क्यों नहीं होता ?”

इस प्रश्न का मैं आखिर क्या उत्तर देता ? भाभी की योग्यता से मैं भली-भांति परिचित था । कमाल कर दिखाने की हवस उनमें होना कोई असम्भव बात न थी । कोई भी पुरुषार्थ करके दिखाने के लिए जिस योग्यता की आवश्यकता होती है, वह उनमें थी ।

“तो फिर तुम्हारा बम्बई जाना तय हो गया है ?” कठोर स्वर में भाभी ने पूछा ।

“नहीं, वैसी कोई बात नहीं है ।” मैं ज़रा शरमाकर बोला, “अभी तो सोच ही रहा हूं ।”

“सोचने से पहले एक बार अपने दादा से पूछ लो ।” कहकर भाभी एकदम उठकर वहां से चली गई ।

: २ :

हमारे सौभाग्य से उस दरिद्री जिले के सदर मुकाम से मेरे दादा की बदली हो गई । अब हम दूसरे जिले के सदर मुकाम में आये । इस शहर का वातावरण हम जैसे लोगों के रहने के लिए बहुत-कुछ अनुकूल था । अलबत्ता वह बम्बई की बराबरी नहीं कर सकता था, यह मुझे बार-बार महसूस होता था ।

परिस्थिति को ध्यान में रखकर दादा ने कोशिश करके यह तबादला करा लिया होगा, ऐसी भाभी की धारणा बन गई थी । वह मुझसे बोलीं, “अगर उन्हें तबादला ही कराना था तो बम्बई को क्यों नहीं करा लिया ?”

बी० ए० पास कर लेने से ही मनुष्य व्यवहार-ज्ञान नहीं आ जाता ।

मैंने कहा, “बम्बई राज्य का शासन भिन्न-भिन्न विभागों में बंटा है ।

एक विभाग से दूसरे विभाग में बदली करा लेना भी बड़ा कठिन होता है। बम्बई विभाग एक स्वतन्त्र विभाग है। जो मनुष्य उस विभाग में नौकरी शुरू करता है, वह प्रायः वहीं रहता है। उसे बम्बई नहीं छोड़नी पड़ती। बम्बई-विभाग बम्बई राज्य का 'मेरुमणि' है। वहां दूसरे विभाग के लोगों को प्रवेश मिलना सम्भव नहीं।”

“तो तुम्हारे दादा ने बम्बई में ही नौकरी क्यों शुरू नहीं की ?” भाभी के स्वर में थोड़ा आवेश था।

“उस समय वह यह कहां जानते थे कि आपसे उनका विवाह होगा ?” मैंने कहा, “यदि वह यह जानते होते और उस तरह विवाह हो जाता तो आज यह सवाल ही न उठता !”

जैसे अपने-आपसे कुछ कह रही हों, भाभी मुंह के भीतर ही बुदबुदाई, “अफसोस है, जिसने एम० ए० पास किया, वह इतना भी न समझे !”

“यह बात नहीं, भाभी !” मैंने बुजुर्गाने ढंग से कहा, “बहुत-से लोग ऐसे होते हैं, जो बम्बई का कोलाहल पसंद नहीं करते। फिर बम्बई में काम भी अधिक करना पड़ता है। वहां तरक्की जरूर मिल जाती है, पर ऊंचा पद पाने के लिए वहां बहुत समय लग जाता है...”

“अच्छा-अच्छा,” भाभी चिढ़कर बोलीं, “ऊंचा पद ! मुझे क्या करना है ऊंचे पद से !”

“नौकरी आप नहीं कर रही हैं, दादा कर रहे हैं।”

“यह मैं जानती हूं। मैं नौकर नहीं हूं, पर मैं पत्नी हूं। मेरे सुख और सुभीते की ओर भी तो उन्हें देखना चाहिए न ? तुम्हारे दादा को यह महसूस करना चाहिए था कि मेरी सुख-सुविधा की जिम्मेदारी उन्हींपर है !”

आज पहली बार भाभी ने इतने स्पष्ट शब्दों में अपने अन्तर का संताप व्यक्त किया। किसी भी बात में उन्होंने दादा को कभी दोष दिया हो, यह इससे पहले मुझे कभी दिखाई न दिया था। बात आगे न बढ़े, इसलिए मैं वहां से चुपचाप चला आया।

इस नये शहर में आने के बाद से भाभी पहले की अपेक्षा अधिक प्रसन्न दीख पड़ती थीं। यहां कुछ लोगों से उनके मित्रता के सम्बन्ध भी जुड़ गये थे। शहर में महिलाओं का एक छोटा-सा क्लब था, जहां ताश, केरम, बेड-

मिन्टन और टेनिस आदि खेलों का प्रबन्ध था। प्रायः रोज ही वहाँ ये खेल हुआ करते थे। भाभी इस क्लब की सदस्य हो गई थीं। इन खेलों में उनकी कोई विशेष रुचि थी, ऐसा न था, बल्कि वह उस घुटन का पूरा बदला निकाल रही थीं, जो वहाँ आने से पहले उनमें भर गई थी।

इस शहर का पुस्तकालय भी काफी अच्छा था। भाभी जिन अखबारों को चाहती थीं, वे इस पुस्तकालय में आते थे। इस कारण अब उन्हें पढ़ने की खूब सुविधा थी। बिल्कुल नये प्रकाशन यद्यपि इस पुस्तकालय में नहीं थे, फिर भी बहुत दिनों से कुछ भी पढ़ने को न मिलने के कारण जो पुस्तकें यहाँ से मिल रही थीं, वे हम दोनों को नई ही लगा करती थीं।

यहाँ आने के बाद से मैं बहुत घूमने लगा था। यहाँ एक 'साहित्य-संघ' था। कोशिश करके मैंने उसमें प्रवेश प्राप्त कर लिया था। साहित्यिक कहलानेवाले कुछ लेखक इस संघ के सदस्य थे। इन साहित्यिकों में से अनेक की प्रतिभा की दौड़ सिर्फ लघु-कथा लिखने तक ही थी। इसके परे उनकी पहुँच नहीं थी, परन्तु 'अन्धों में काना राजा' के अनुसार यही लोग अपने को बड़े लेखक मानते और उसी शान से अकड़कर रहते थे।

इस संघ के सदस्यों में कवियों की संख्या बेशक बहुत अधिक थी। पर उन कवियों में से किसीकी भी कविताएं कहीं विशेष प्रकाशित नहीं हुई थीं। वैसे देखा जाय तो मैं भी अपने ढंग का एक कवि था, लेखक भी था। गणेशजी के मेले के लिए मैंने बहुत-से संवाद लिखे थे। उन संवादों का संग्रह पुस्तक के रूप में छप जाने के कारण लेखकों की श्रेणी में खड़े होने का अधिकार मुझे प्राप्त हो गया था।

इस 'साहित्य-संघ' में जो लोग थे, वे असाधारण बुद्धिमत्ता के चाहे न हों, पर साहित्य के प्रति उनके हृदय में गहरा अनुराग था। लेखक के नाते यद्यपि उन्हें कोई बड़ा दर्जा प्राप्त नहीं था, फिर भी पाठक के नाते किसी भी ख्यात-नामा लेखक की अपेक्षा उनका पठन-पाठन और अध्ययन अधिक था।

इस 'साहित्य-संघ' में मैंने भाभी को भी खींचने का प्रयत्न किया। पर उसमें एक भी महिला सदस्य न होने के कारण उन्होंने सदस्य बनने से इनकार कर दिया।

इस संघ की बैठकें कभी-कभी हमारे घर भी हुआ करतीं। मैंने ही जैसे-तैसे यह संयोग जुटा लिया था। सदस्यों को भी यह बात एक प्रकार से बड़ी सम्माननीय मालूम होती थी। इस बैठक के समय चाय आदि का सारा प्रबन्ध स्वयं भाभी किया करती थीं, परन्तु हमारी बैठक में वह कभी भाग न लेतीं। मैंने बारीकी से देखा तो मुझे लगा, इच्छा होते हुए भी वह हमारी गोष्ठी में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेना जान-बूझकर टालती थीं। वह कहतीं, “तुम लोगों की सारी चर्चा मैं सुनती रहती हूँ। कुछ सदस्य सचमुच बड़े सहृदय हैं, उसी तरह विलक्षण भी हैं। कभी-कभी मेरा मन होता है कि उन चर्चाओं में मैं भी भाग लूँ।” इतना कहकर वह सहसा रुक गई और क्षण-भर कुछ सोचकर बोलीं, “पर मैंने सोचा कि मुझे अपनी मर्यादा में ही रहना चाहिए। कुछ भी हो, आखिर मैं हूँ तो स्त्री, और फिर आजकल मैं देख रही हूँ कि तुम्हारी चर्चा का दायरा कुछ बढ़ता जा रहा है। साहित्य छोड़कर तुम लोग अब राजनीति में घुसने लगे हो।”

“आप भूल रही हैं, भाभी।” मैं बीच ही में बोल पड़ा, “साहित्य और राजनीति में फर्क करने के दिन अब नहीं रहे।”

“इसीलिए मैं तुम्हारी गोष्ठियों में भाग नहीं लेती।” भाभी गम्भीर होकर बोलीं, “राजनीति मैं नहीं समझती।”

“यह आप बिल्कुल झूठ कह रही हैं, भाभी!” मैंने हँसकर कहा, “क्या आप सोचती हैं कि आपने अखबारों से काट-काटकर जो कतरनें एक फाइल में चिपका रखी हैं, वे मैंने देखी नहीं हैं?”

“कहां देख ली हैं?” भाभी एकदम चौंककर बोलीं।

“परसों आपकी वह फाइल दादा देख रहे थे।” मैंने चट से जवाब दिया।

“अच्छा ? तभी ?” भाभी अपने-आप ही बुदबुदाई, “अब मैं समझी।”

एक क्षण भाभी मौन रहीं। कोई विचार मन में आ जाने के कारण वह अत्यन्त मन्द आवाज में बोलीं, “मुझपर एक अहसान करोगे, लाला ? तुम्हारे दादा अगर कभी उस फाइल के बारे में पूछें तो क्या तुम यह कह दोगे कि वह फाइल तुम्हारी है ?”

“हां, कह दूंगा। पर एक शर्त है। वह फाइल हमेशा मेरे ही कब्जे में रहनी चाहिए। आपको जब जरूरत हो या आप उसमें कभी कोई कतरन चिपकाना चाहें तो उस समय भी आपको वह मुझसे मांगनी होगी।”

“यह शर्त मुझे मंजूर है।” कहते हुए उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। उस समय मुझे सचमुच उनपर रहम आ गया। मुझे लगा, यहां आने पर सन्तोष मिलने लगा है, यह ठीक है, परन्तु उस सन्तोष के साथ ही बेचैनी भी पैदा हो गई है। यह सन्तोष सुख का नहीं था। वह दुःख का मूल है, ऐसा अब मुझे लगने लगा। इस सन्तोष के कारण गृहस्थी कहीं चौपट तो नहीं हो जायगी, ऐसी शंका क्षण-भर के लिए मेरे मन में घूम गई। जब भाभी ने पूछा कि क्या सोच रहे हो तो मैं झट-से होश में तो आ गया, पर यह न सूझ पड़ने के कारण कि क्या उत्तर दूं, पागल की तरह उनके मुंह की ओर ताकता रहा।

मेरी वह दयनीय दशा देखकर भाभी हँस पड़ीं, बोलीं, “मैं अभी तक नहीं जानती थी कि पुरुष-जाति डरपोक होती है। तुम्हारे दादा की बात छोड़ दो, वह सरकारी नौकर हैं, पर तुम तो सरकारी नौकर नहीं हो, फिर तुम क्यों इतना घबड़ा उठे?”

मैं घबड़ाया ही नहीं था। मैंने कहा, “स्वयं अपनेको निडर सिद्ध करने के लिए क्या आप मुझे डरपोक साबित कर रही हैं, भाभी? ऐसा नहीं है तो बताओ, उन कतरनों की फाइल की मालकी मुझपर क्यों लादी आपने? नाराज न होइयेगा।”

“छि-छिः! नाराज होने की क्या बात है इसमें?” भाभी शान्ति से बोलीं, “तुम्हारा सवाल बिल्कुल ठीक है। तुम्हें वैसा लगना ही चाहिए। स्त्री के नाते मैं निडर हूँ। परन्तु पत्नी के नाते मेरी निडरता की जो एक सीमा बंध गई है, उसे तुम क्या जानो? तुम पुरुष लोग ऐसी सीमाएं बना दिया करते हो, पर वे हमें किस तरह खलती हैं, इसकी तुम लोगों को कोई कल्पना नहीं होती।” फिर व्यंग से हँसकर उन्होंने चोट की, “परदे की ओट में पति-पत्नी के व्यवहार की जो उलझनें होती हैं, उनकी तुम अविवाहित युवकों को कोई जानकारी नहीं होती, और वैसे तुम लोग कहानी-लेखक बन जाते हो! कुछ भी लिख मारते हो अपनी कल्पना के सहारे। उसे पढ़कर

हम विवाहित स्त्रियां मन-ही-मन में हँसती हैं और चुप रहती हैं। खैर, छोड़ो यह विषय। क्या लेना-देना है हमें इन बातों से? अपना वादा याद रखना, समझे!" कहकर वह वहां से चल दीं।

इस शहर में आने के बाद से दादा का काम बहुत बढ़ गया था। यह शहर आन्दोलनों के लिए बड़ा मशहूर था। यहां साहित्यिक सभाएं बहुत होती थीं, इसके अलावा कांग्रेस, हिन्दू महासभा आदि सार्वजनिक संस्थाओं के साथ-साथ म्यूनिसिपैलिटी के और सरकारी आन्दोलनों के लिए भी एक-न-एक सभा लगातार होती ही रहती थी। मुख्यतः यही काम दादा के जिम्मे आया था और इस काम का उन्हें शौक भी था। इन सभाओं में आकर उन्हें उनके नोट्स लेने पड़ते थे।

एक दिन एक बात हुई, जिससे मुझे बहुत बुरा लगा। बेकार होने के कारण मैं इन सारी सभाओं में उपस्थित रहा करता था। इसका फायदा उठाने की चाल दादा ने खेली। एक दिन वह मुझसे बोले, "बालू, यहां जो सभाएं होती हैं, उनमें तुम जाते हो, बड़े ध्यान से वक्ताओं के भाषण सुनते हो, यह मैंने देखा है। यह कोई बुरी बात नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि तुम इन सभाओं में मत जाया करो। लेकिन चूंकि तुम जाते हो, इसलिए मैं चाहता हूं कि वहां की अपनी हाजिरी का थोड़ा फायदा मुझे भी दो। यदि तुम इन सभाओं में होनेवाले भाषणों के नोट्स लेकर उनकी रिपोर्ट मुझे दे दिया करो तो मेरा काम हो जायगा। इसके अलावा अगर तुम किसी समाचार-पत्र से अपना सम्बन्ध कर लो और इन सभाओं के संवाद और रिपोर्ट उस पत्र के लिए भेजो तो तुम्हें थोड़ी आमदनी भी हो जायगी और तुम्हें यह नहीं लगेगा कि तुम सिर्फ मेरा ही काम कर रहे हो। क्यों, क्या ख्याल है तुम्हारा? मेरी बात ठीक है न?"

मैं 'हूँ' करके खामोश हो गया। भाभी भी उस समय वहां उपस्थित थीं। उन्होंने सारी बात सुनी थी। दादा के चले जाने पर मुझसे बोलीं, "फिर क्या सोचा है तुमने? कबसे शुरू कर रहे हो संवाददाता का काम? काम तो अच्छा है। तुम्हें यह भी न लगेगा कि बेकार भाई के घर बैठा हूं। जेब-खर्च के लिए भी तुम्हें कुछ मिल जाया करेगा। ठीक है न?"

भाभी ने मेरी ही कही बात को लेकर मुझपर चोट की थी, यह मुझसे

से छिपा न रहा। फिर भी उनके मन की गहराई से थाह लेने के उद्देश्य से मैंने कहा, “आज इतने दिनों से मैं इन सभाओं में जा रहा हूँ, पर अभी तक यह विचार मेरे दिमाग में कभी नहीं आया कि भाषणों के नोट्स लेकर किसी अखबार में भेजूं। दादा का सुझाव तो बड़ा अच्छा मालूम होता है। यहां जितनी भी सभाएं होती हैं, उनके संवाद अभी तक किसी भी अखबार में नहीं आते। ये सम्वाद अखबारों में आने लगेंगे और साथ ही जैसा आप कह रही हैं...”

“बहुत खूब !” भाभी बीच में ही बोल उठीं, “मान लो किसी सभा में मैंने भाषण दिया और कुछ वाहियात बातें कह गईं तो क्या उसकी रिपोर्ट भी तुम दे दोगे ?”

“रिपोर्ट देने का काम मेरा है। भाषण वाहियात है या बुद्धिमता से भरा यह देखना सम्पादक का काम है।” मैंने कहा।

“और जो रिपोर्ट तुम अपने दादा को दोगे, वह ?”

“वहां भी यही बात होगी। रिपोर्ट देने का अपना काम मैं पूरी सचाई से करूंगा। उस रिपोर्ट का उपयोग करनेवाला उसे अपनी नज़र और अकल से देखेगा। उससे मेरा कोई वास्ता नहीं।”

“अच्छा।” भाभी बोलीं, “तो कुल मिलाकर बात यह रही कि तुम अब संवाददाता बनोगे ?”

“कुछ-न-कुछ तो मुझे बनना ही चाहिए न ?” मैंने व्यंगपूर्ण स्वर में कहा, “घर में निठल्ला बैठा हुआ एक मुफ्तखोरे की तरह खा रहा हूँ, इसकी मुझे इससे पहले ही शर्म आनी चाहिए थी। अभी तक शर्म न आने का कारण दादा की भलमनसाहत है। उन्होंने इससे पहले मुझे कभी कोई काम करने को नहीं कहा था। अब उन्होंने कहा है और अगर मैं उसे न करूँ तो क्या वह मेरी कृतघ्नता न होगी ? इसके अलावा मैं जो यह काम करूँगा वह करूँगा समाचारपत्र के विशेष प्रतिनिधि के नाते। है न ? इसके लिए दुनिया भर में ढिंढोरा पीटने की जरूरत नहीं।”

भाभी क्षण-भर के लिए खो-सी गई। चिढ़ जाने के भाव उनके चेहरे पर नज़र आने लगे। परन्तु मुझे उत्तर देते समय उन्होंने यह सावधानी बरती कि उनकी मनोदशा मुझपर प्रकट न हो। वह बोलीं, “यदि

बेकार बैठे रहना तुम्हें अच्छा न लगता हो तो बम्बई क्यों न चले जाओ ? वहां खोज लो कोई नौकरी । तुम मैट्रिक हो ही । वहां नौकरी तुम्हें सहज ही मिल जायगी, जिससे मजे में अपनी गुजर चला लोगे ।”

“मतलब ? क्या आप यह कहना चाहती हैं कि मैं अपनी पसन्द का यह काम छोड़ दूं और जबरदस्ती का कोई बोज उठाने बम्बई जाऊं ? क्या आपका मतलब यह है कि मैं अब आपके घर से निकल जाऊं ?”

उनकी मुद्रा से लगा कि वह कोई बड़ा तीखा जवाब देने की सोच रही हैं । शायद इसीसे वह थोड़ी देर के लिए रुक गई और अपनेको साधकर बोलीं, “जानते हो, तुमने कितनी कठोर बात कह दी है ? इससे पहले क्या मैंने कभी तुमसे बम्बई जाने को कहा था ? अभी कहा ; पर मैंने यह सोचा था कि तुम इतने निर्बुद्धि नहीं हो, जो यह न समझ सको कि मैंने इस समय यह क्यों कहा ?”

“तो क्या अब आप ऐसा नहीं सोचती हैं ?” मैंने उतनी ही गम्भीरता से कहा, “क्या आपको यह लगा कि दादा की आज्ञा से मुझमें परिवर्तन हो गया है ?”

“फिर तुमने उनके सामने ‘हूँ’ क्यों कह दिया ?”

“मैंने स्वीकृति कहां दी है ? मैं अभी भी सोच रहा हूं ।”

“सोच रहे हो न ? तो अब भी सोच लो, खूब सोच लो, बाद में उन्हें उत्तर देना ।”

“तो मतलब यह कि मुझे जो काम बताया गया है, वह आपको नहीं जंच रहा है ।”

“ऐसा मैंने कहां कहा ? मेरा कहना सिर्फ यही है कि बिना सोचे-समझे कोई जवाब देकर अपने-आपको उलझन में मत डाल लो । एक बार जब वचन दे दोगे तो उसका हमेशा ठीक से पालन करना होगा, नहीं तो हो सकता है, बाद में कभी पछताने का मौका आ जाय ! तुम्हारे दादा के स्वभाव की थाह मुझे अबतक नहीं मिल पाई है, यह सच है, परन्तु जिम्मेदारी की नौकरी जब मनुष्य स्वीकार कर लेता है तो वह अपनी विवाहित पत्नी की प्रतारणा से भी बाज नहीं आता । इसे हम कोई दोष नहीं कह सकते, परन्तु तुम्हारे स्वभाव से मैं अच्छी तरह परिचित हूं ।”

यह देखकर कि मैं हँस पड़ा, वह बोलीं, “हँसो मत। मैं सच कह रही हूँ। अपने स्वभाव को तुम खुद जितना नहीं जानते होगे, उतना मैं जानती हूँ। इसीलिए मैं तुम्हें खतरे की सूचना दे रही हूँ।”

“धन्यवाद भाभी।” कहकर मैं खामोश हो गया।

इसके पश्चात एक-दो सप्ताह बीत गये। इस बीच शहर में एक-दो सभाएं भी हुईं, पर उन सभाओं के भाषणों की रिपोर्ट मैंने दादा को नहीं दी। ऐसा होने पर भी उन्होंने इस बारे में मुझसे कुछ न पूछा। इसी तरह दो सप्ताह और बीत गये।

अकस्मात् एक दिन दादा ने पूछा, “मैंने जो तुमसे कहा था, वह शायद तुम भूल गये।”

“क्या कहा था?” मैंने इस ढंग से कहा, जैसे मैं कुछ जानता ही नहीं। फिर कुछ याद-सी करके मैंने कहा, “हां-हां, क्या सभाओं की रिपोर्टों के बारे में आप कह रहे हैं? मैंने बम्बई के दैनिक को लिखा है। सोचा, बिना वहां से कोई उत्तर आये व्यर्थ ही रिपोर्ट क्यों लिखूं? अगर लिखने भी लगू तो वह शक का विषय हो जायगा। किसी समाचार-पत्र का अधिकार-पत्र हाथ में आ जाने से खुल्लम-खुल्ला सभा में बैठकर भाषणों के नोट्स लेकर रिपोर्टें तैयार करने में कोई आपत्ति न होगी।”

“मेरा कोई आग्रह नहीं है। समझे?” दादा हँसकर बोले, “तुम खाली बैठे थे, इसीलिए मैंने तुम्हें एक काम बता दिया था। मेरा इतना ही उद्देश्य था। इच्छा हो तो करो, इच्छा न हो तो मत करो। मेरा आग्रह नहीं है।”

ये बातें हो रही थीं, उस समय भाभी वहां उपस्थित थीं। शायद इसीलिए दादा ने अपनी बात इस ढंग से कही थी। पर दादा के चले जाने पर भाभी बोलीं, “सुन लिया तुमने? तुमपर यह जबरदस्ती नहीं है। चाहो तो करो, नहीं चाहो तो मत करो! ऐसी बात है! पत्नी से पति किस तरह पेश आता है, यह अविवाहित लोग क्या जानें। न अविवाहित स्त्री ही जानती है। इसीलिए लेखक लोग कल्पना के जोर पर पति-पत्नी के जो प्रेम-प्रसंग रचा करते हैं, उन्हें पढ़कर मुझ जैसी स्त्री को हँसी आती है। परन्तु अभी जो बातें मैंने सुनीं, उनसे मुझे आश्चर्य

हुआ। बेकार भाई से पेश आने का तरीका भी उसी प्रकार का क्यों नहीं चाहिए, जैसा कि पत्नी से पेश आने का होता है?" ऐसा कहकर वह उत्तर के लिए रुकीं नहीं। भट-से वहां से चल दीं।

मेरे सामने प्रश्न खड़ा हो गया—क्या दादा ने भाभी से भी इसी प्रकार का काम करने को कभी कहा था? या इसी तरह का कोई दूसरा काम बताया था?

हमारे इस सीमित परिवार में अब एक नया व्यक्ति और सम्मिलित हो गया था। गर्मी की छुट्टियां थीं। इसलिए बंबई के कॉलेज में पढ़नेवाली भाभी की एक बहन वायु-परिवर्तन के लिए हमारे घर रहने आ गई थी।

इस नये व्यक्ति के आगमन के कारण मुझे लगा कि भाभी मुझसे दूर हो चली थीं। इसका मतलब यह नहीं कि वह अपनी बहन से हमेशा चिपटी रहती थीं, बल्कि उसके आ जाने से मेरा संकोच कुछ बढ़ रहा था।

दादा के काम पर चले जाने के बाद मैं और भाभी, दो जने घर में रह जाते थे। बूढ़ी बुआजी थीं, पर उनका रहना न रहने के समान था। अपने मन की और अपने सुख-दुःख की बातों के साथ-साथ दुनिया में हो रहे उलट-फेर की बातें करने के लिए भाभी के पास अकेला मैं ही रहता था। इसलिए मेरा ही उन्हें आधार था। अब उनकी बहन उषा आ गई थी और वह उन्हें बातों में उलझाये रखती थी।

बड़ी बातूनी थी वह। बड़ी बहुश्रुत भी थी। अपनेको वह कम्यूनिस्ट कहा करती थी। भाभी के पिताजी काफी सम्पन्न थे, इसलिए कुल मिलाकर उषा बड़े ठाट-बाट से रहती थी। भाभी का स्वभाव वैसा नहीं था, इसलिए उषा का वह ठाट-बाट मुझे खलता था। वह दिन में तीन बार साड़ी बदलती। उसके ट्रंक की यदि तलाशी ली जाती तो उसमें इतने ब्लाउज निकलते कि वे सौ परिवारों के लिए काफी होते।

वैसे देखा जाय तो मैं उसकी कोई गिनती में न था। घर की नौकरानी से वह बातें करती थी, पर मुझसे बातें करना वह जानबूझकर टाल देती थी। पहले मुझे लगा, शायद स्त्री-सुलभ लज्जा के कारण वह ऐसा करती होगी। पर जब मैंने यह देखा कि दादा से बातें करते समय वह ज़रा भी नहीं शरमाती, तब मेरी वह राय बदल गई।

वह भाभी को हमेशा बातों में लगाये रखती। भाभी को मुझसे बातें करने का मौका ही न देती। बहुत दिनों के बाद बहन मिली थी और वह भाभी की बड़ी लाड़ली बहन थी। इसलिए भाभी भी उसकी हमेशा बड़ी सराहना करतीं। परंतु वह सराहना सुनाने के लिए भाभी यदि मेरे पास आतीं तो उषा को वह अच्छा न लगता। क्या उषा को मुझसे कोई जलन है, ऐसी आशंका मेरे मन में होने लगी। ऐसा होना स्वाभाविक था। आत्मीयों को छोड़कर यदि परायों के साथ आत्मीयता दिखाई जाय तो किसी-किसीको अच्छा नहीं लगता, यह मैंने देखा था। उसी तरह यह भी होगा, ऐसा मैं सोच रहा था। पर एक दिन मेरी आंखें खुल गईं।

समाचारपत्र में किसी पुस्तक पर समीक्षा आई थी। उस विषय पर भाभी मुझसे चर्चा कर रही थीं। वह बोले जा रही थीं। मैं सिर्फ सुन रहा था। भाभी को ऐसा लग रहा था कि समीक्षक ने लेखक के साथ अन्याय किया है और उनकी राय में समीक्षक लेखक की विचारधारा को समझ ही नहीं पाया है।

इससे पहले यदि वह ये बातें छेड़तीं तो हम दोनों की चर्चा प्रश्नोत्तर का रूप धारणा कर लेती, परंतु उषा के आने के बाद से मुझमें जो एक प्रकार का संकोच पैदा हो गया था, उसके कारण मंदिर में पुराण सुनने-वाली कोई श्रद्धालु विधवा जितनी निर्बुद्धि भावुकता से पुराण सुनती है, उसी वृत्ति से मैं भाभी की बातें सुन रहा था। यह देखकर उषा बोली, “क्यों इतने शब्द फिजूल खर्च कर रही हो, सुलू जीजी?” भाभी का मायके का नाम सुलेखा था। ससुराल में आने के बाद हमारी नानी का स्थान भर देने के लिए उनका नाम सुभद्रा रखा गया था। पर इस नाम से उन्हें कोई भी संबोधित नहीं करता था। सुलेखा हेगड़ के नाम से ही सब लोग उन्हें जानते थे।

जब उषा ने कहा कि मानसशास्त्र पर लिखी गई पुस्तक के बारे में तुम्हारे मैट्रिक पास देवर क्या खाक समझेंगे, तब मैं हँस पड़ा। मुझे हँसते देखकर उषा बोली, “हँसिये नहीं, बालूजी। यह आपका विषय नहीं है,”

“हां, यह सच है,” मैंने बड़ी विनम्रता से कहा, “यह विषय हमारे पाठ्य-क्रम में नहीं था, परंतु भाभी के साथ रहने से आजकल मैं नये-नये

विषय जानने लगा हूँ। उन्हें मैं समझता नहीं हूँ, पर समझने की कोशिश किया करता हूँ।”

जैसे वह कोई बुजुर्ग हो इस गर्व से उषा बोली, “जिस विषय में आप कुछ समझते नहीं हैं, उस विषय में आपको दखल ही क्यों देना चाहिए? बिना पढ़े कोई भी विषय किसीकी समझ में कैसे आ सकता है?”

मैंने कहा, “मैं तो सिर्फ कोशिश करता हूँ। ऐसे कठिन विषयों में मुझे रुचि है, ऐसा मैंने नहीं कहा।”

“वह आपकी समझ में ही नहीं आयागा।” उषा बोली, “आप तो अपने नाटक और उपन्यास ही पढ़ा करें।”

उषा की ये बातें भाभी को शायद अच्छी नहीं लगीं। वह बोली, “यह क्या है, उषा? किसीको उपदेश देने का अधिकार अभी तुम्हें नहीं मिला है। तुम अपने तक ही देखो।”

“यहीं तो तुम गलती करती हो, जीजी। ऐसे कठिन विषयों पर चर्चा करने के लिए तुम्हारे पति जैसा विद्वान पुरुष घर में होते हुए तुम इन मैट्रिक पास बालूजी से मगजपच्ची करती रहती हो, उसपर मुझे बड़ा अचरज होता है।”

इस अप्रिय चर्चा को बंद करने की गरज से कोई बहाना बनाकर भाभी वहां से उठकर चल दीं। मैं भी जा रहा था। परंतु इसी समय उषा बोल उठी, “मुझे जीजी की यही बात अच्छी नहीं लगती। जब उसे कोई बात नहीं जंचती तो वह इसी तरह विषय को अधूरा छोड़कर चल देती है। यह कायरता का लक्षण है। ऐसी कायरता मुझे बिल्कुल पसंद नहीं। जो कहना हो, निर्भीक होकर कह देना चाहिए। किसीकी भी परवा करने की जरूरत नहीं। अब यही देख लो, आपके दादा पुलिस अफसर हैं और यह जानते हुए भी मैं उनसे खुल्लमखुल्ला कम्प्यूनिज्म की बातें करती हूँ और वह चुपचाप सुनते रहते हैं।”

“हां,” मैंने कहा, “और मैं भी चुपचाप सुनता रहता हूँ। है न?”

तिरस्कारपूर्ण हँसी हँसती हुई उषा बोली, “चुपचाप सुनने का मतलब यह नहीं होता कि सुननेवाला विषय को समझ रहा है। उस समय भी जब जीजी आपसे उस पुस्तक की समीक्षा पर बातें कर रही थी तो आप

चुपचाप ही तो सुन रहे थे। पर विषय समझ में आता है, इसलिए चुपचाप सुनना और आपका यह चुपचाप सुनना, इन दोनों में बड़ा अंतर है।”

“बेशक अंतर है।” मैंने शान्तिपूर्वक कहा, “विषय समझ में आता है, इसलिए दादा चुपचाप सुनते हैं और विषय मेरी समझ में आ जाय, इसलिए यदि मैं चुपचाप सुनता हूं तो इसमें क्या बिगड़ा ?”

“नहीं-नहीं, आप मेरी बात ही नहीं समझे !” उषा चिढ़कर बोली, “समझना याने क्या, यही आप नहीं जानते। आपसे बातें करना याने शब्दों का अपव्यय करना है।” ऐसा कहकर नजदीक पड़ी एक पुस्तक को खोलकर वह पढ़ने लगी।

मेरी नालायकी किस तरह साबित होती थी, यह मैं अन्त तक नहीं समझ पाया। उसने बातें बन्द कर दीं और एक तरह से मुझे यह सुभाव दिया था कि अब मैं वहां से चल दूं। फिर भी मैं वहीं रहा, वहां से गया नहीं। उसके नजदीक ही पड़ी हुई एक दूसरी पुस्तक को उठाकर जब मैंने उमे खोला तो एकदम अपने हाथ की पुस्तक को दूर कर वह चिल्ला पड़ी, “इस पुस्तक की बातें आप बिल्कुल नहीं समझेंगे। वह आपका विषय नहीं है। रख दीजिये वह पुस्तक।”

मैंने पुस्तक को चुपचाप जहां-का-तहां रख दिया और वह फिर अपनी पुस्तक पढ़ने लगी।

बहुत देर तक मैं वहां उसी तरह बैठा रहा। काफी समय बीत जाने के बाद पुस्तक को एक ओर रखकर वह मुझसे बोली, “देखिये बालूजी, मुझे यह बिल्कुल पसन्द नहीं। कालेज के लड़के भी इसी तरह मेरे आस-पास मंडराते रहते हैं।”

“इसी तरह, याने किस तरह ?” मैंने इस भाव से पूछा, जैसे कोई अनजान पूछ रहा हो।

“इसी तरह याने—” पहले जैसा एक बूढ़ी नानी का भाव लाकर वह बोली, “आपकी तरह। मुझे वे लोग पसन्द नहीं, जिनका जीवन में कोई उद्देश्य नहीं। मनुष्य के सामने कोई विचारधारा (आईडियालाजी) होनी चाहिए, उसकी कोई नीति होनी चाहिए, उसका कोई आदर्श होना चाहिए, उसकी तात्त्विक दृष्टि होनी चाहिए। आपके पास इनमें से कुछ भी नहीं

है। आप भाई के दरवाजे पर टुकड़े तोड़ते पड़े हुए हैं। आपको ऐसे जीवन से लज्जा आनी चाहिए। समझे? अबतक बहुत हो चुका। आगे यदि आप इसी तरह मेरे पीछे पड़े रहेंगे तो...”

“मैं कैसे तुम्हारे पीछे पड़ा हूँ?” उतनी ही शान्ति से मैंने पूछा।

“अब मुझसे ज्यादा मत कहलवाओ।” पुस्तक मुंह के सामने करके वह बोली, “अब आगे कभी मेरे पास न फटकना।”

“यह घर मेरा है।” मैंने कहा।

“नहीं,” वह बोली, “आप इस घर के आश्रित हैं, मालिक नहीं। आप शायद इस बात को न समझते हों, पर मैं पूरी तरह समझती हूँ।”

“माफ करो, उषा, मुझसे गलती हो गई।” ऐसा कहकर जब मैं जाने लगा तो वह बोली, “खबरदार, जो मुझसे कभी उषा कहा। आपने मुझे पालने में नहीं भुलाया है।”

“माफ कीजिये, उषा मोसी।” कहकर मैं एकदम वहां से निकलकर बाहर चला गया। वह शायद बड़े क्रोध में थी, क्योंकि जब मैं कमरे से बाहर आया तो उसने जोर से मेज पर अपनी किताब पटक दी, जिसकी आवाज मुझे बाहर सुनाई दी। यदि एक क्षण और मैं वहां रह जाता तो शायद वह मुझपर हाथ उठा देती।

दोनों सगी बहनें थीं। पर दोनों में कितना अंतर था? दोनों ही उच्च शिक्षा प्राप्त थीं। भाभी की तरह उषा ने भी परीक्षाओं में अच्छे नम्बर लाकर नाम कमाया था। अगले साल वह बी० ए० होनेवाली थी। बाहरी पुस्तकों को पढ़ने में भाभी भी कोई पीछे न थीं। वह भी बहुश्रुत थीं। उन्होंने भी परीक्षाएं हमेशा ऊंचे दरजे में पास की थीं और बहुत-से पारितोषिक प्राप्त किये थे। कोई भी नया तत्वज्ञान उनके लिए अनजाना नहीं था। अर्थशास्त्र में ऊंचे नम्बर लाकर उन्होंने प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया था। पर वह जिस घर में आ पड़ी थीं, उस घर में उस विषय की कोई कद्र न थी। ऊंचे नम्बरों से परीक्षाएं पास करना और छात्रवृत्तियां प्राप्त करना, इसके सिवा दादा ने और कुछ न किया था। पढ़ने का यों उन्हें भी शौक था, पर इस समय जो नौकरी वह कर रहे थे, उसके परे उन्हें कुछ नहीं दीखता था और उसके लिए अधिक कुछ पढ़ने की जरूरत भी न थी। यदि

वह प्रोफेसर हो जाते तो उस नौकरी के कारण अपना विषय पढ़ाने के लिए उन्हें दस-पांच पुस्तकें पढ़नी पड़तीं और उस समय वह उन्हें शायद पढ़ते भी, क्योंकि अपनी नौकरी अच्छी तरह बजाने के लिए उस पढ़ाई की उन्हें जरूरत अनुभव होती। वर्तमान नौकरी में ऐसी कोई जरूरत अनुभव न होने के कारण केवल शौक के लिए पुस्तकें पढ़ने की उनकी वृत्ति न थी।

इसके बावजूद उषा हमेशा दादा की तारीफ करती थी और मेरा पग-पग पर उपहास किया करती थी। यह देखकर मुझे आश्चर्य होता था। मैं घर में बेकार बैठा रहता था तो यह बात भाभी को खलनी चाहिए थी। पर उन्होंने कभी कोई शिकायत नहीं की। इतना ही नहीं, बल्कि उनसे मुझे सदा समर्थन ही प्राप्त होता रहा। और अब चार दिन के लिए मेहमान बनकर आई हुई उनकी यह छोटी बहन मेरी बेकारी को लेकर बात-बात में मुझे ताने कस रही थी। मैं सोचता, उसे क्या अधिकार है मुझपर ताना-कशी करने का? किसके दम पर वह यह कर रही है? क्या किसीने उसे भड़का दिया है? सोचते-सोचते क्षण-भर के लिए मन में संशय हुआ कि कहीं दादा ने ही तो उसे प्रोत्साहित नहीं किया। उन्होंने मुझे जो काम करने को बताया था, वह मैंने अभी तक शुरू नहीं किया था। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि खुद कुछ न कहकर, उन्होंने इस लड़की के जरिये मुझे इस तरह अपमानित करवाने की चाल खेली हो?

दादा जब भी घर होते, उषा उनके पास बैठकर घंटों उनसे बातें करती रहती। वे क्या बातें करते थे, उन्हें सुनने के लिए भाभी शायद ही कभी वहां मौजूद रहतीं। मुझे लगा, हो सकता है, इस बातचीत के दौरान में दादा ने उससे मेरी बेकारी के बारे में कुछ कहा हो और उसीसे लाभ उठाकर यह लड़की जाने-अनजाने मेरा यों अपमान कर रही हो।

जिस तरह व्यवस्थित गृहस्थी का सुख होता है, उसी तरह अव्यवस्थित गृहस्थी का भी अपना आनन्द होता है। उसी प्रकार के आनन्द का हम अनुभव ले रहे थे। घर में कौन किस प्रकार का वर्ताव कर रहा है, इसकी किसीको कोई परवा न थी। इस लड़की के घर आने के बाद से परिस्थिति बदलने लगी। हर बात में वह जरूरत से ज्यादा दिलचस्पी दिखा रही थी। हर बात में अपनी ही अक्ल चलाया करती थी। आज

इतने बरसों से हमारी गृहस्थी का भार वहन करनेवाली बुआजी, जिनसे भाभी ने भी कभी कुछ नहीं कहा था, वह भी उषा की नुक्ताचीनी से नहीं बच पाई। उनके कामों में भी अपनी अक्ल भिड़ाकर वह उनके दोष उन्हें दिखाने लगी।

इस परिस्थिति के कारण मैं बहुत बेचैन हो उठा। भाभी के मन पर भी इसका कुछ प्रभाव पड़ा होगा, ऐसा मुझे लगा। वह प्रत्यक्ष बोलकर कुछ न कहती थीं। उषा यदि किसीसे कुछ भला-बुरा कहती तब भी वह उसे डांटती नहीं थीं। पर उस समय की उनकी मुद्रा जब मैं देखता तो मुझे लगता, उन्हें उषा की हरकतें अच्छी नहीं लगतीं।

यह सब चल रहा था कि एक दिन दादा ने मुझसे कहा कि तुमने अभी काम शुरू नहीं किया। असल में उस समय सभाओं की बाढ़-सी आ गई थी। एक ही समय में दो-दो सभाएं होने के कारण दोनों में जाना दादा के लिए सम्भव न था। इसीलिए उन्होंने मुझसे बात की और जल्दी काम शुरू कर देने को कहा।

सच पूछा जाय तो मैंने किसी भी दैनिक को कोई पत्र नहीं लिखा था। दादा से मैंने ठीक बात नहीं कही थी। शायद उन्हें शक हुआ हो। मुझसे बोले, “एक बार फिर पत्र लिखो। मेरे सामने लिखो और वह पत्र मुझे दो। मैं खुद उसे डाक में छोड़ूंगा। उस दैनिक का कोई भी विशेष संवाददाता इस शहर में नहीं है, इसलिए मुझे नहीं लगता कि वह तुम्हारी बात को अस्वीकार कर दें। कम-मे-कम आज की परिस्थिति में तो अखबारवालों को सभी शहरों के संवादों की बड़ी जरूरत है।”

मैं विवश हो गया। पत्र लिखकर मैंने दादा को दे दिया। पहले भेजे हुए, याने न भेजे हुए, पत्र का मैंने उसमें उल्लेख किया था। वहां से क्या उत्तर आयागा, इसकी मुझे कल्पना थी।

अन्त में वही उत्तर आया जो मैंने सोचा था। उन्होंने मेरी बात स्वीकार कर ली। संवादों के लिए पारिश्रमिक देने की बात भी उसमें लिखी थी। महीने में कम-मे-कम चार संवाद यदि मैं भेजूं तो मुझे इतना पारिश्रमिक मिलनेवाला था, जिससे मेरे भोजन का खर्च बखूबी चल सकता था। वर्तमान परिस्थिति में इतनी आय कुछ कम न थी। यह देखकर कि

दो-चार आने के लिए हर बार दादा के सामने हाथ फैलाने का मौका अब नहीं रहेगा, मुझे आनन्द हुआ, यह सच है; पर एक दूसरा भय भी मेरे सामने खड़ा हो गया। अब दादा के प्रस्ताव का क्या करूं ?

जब उषा को खबर मिली कि मैं एक प्रसिद्ध दैनिक का इस शहर के लिए विशेष संवाददाता नियुक्त हो गया हूं तो वह बोली, “ऐसे अशिक्षित लोग सम्पादकीय क्षेत्र में हैं, इसीलिए हमारी पत्रकारिता का सत्यानाश हो रहा है। फिर भी एक बात अच्छी हुई। कम-से-कम अपनी गुजर चलाने लायक प्राप्ति होने का सौभाग्य बालूजी को मिल गया !”

उसकी यह बात सुनकर मेरे पैरों के नीचे से धरती खिसक गई। पर भाभी एक शब्द भी न बोलीं।

: ३ :

अब मुझे यह चिन्ता हो गई कि यह पहेली कैसे हल हो। उषा कहीं बाहर चली गई थी। इस मौके से लाभ उठाकर मैं भाभी से मिला और उनके सामने मैंने अपनी यह उलझन रखी। वह बोलीं, “तुमने अपने-आप यह संकट मोल लिया है। इससे छुटकारा पाना कठिन है। अब दो ही रास्ते दीखते हैं। एक तो यह कि जो काम तुम स्वीकार कर चुके हो, उसे करो और दूसरा यह कि उसे छोड़ दो।” वह क्षण-भर के लिए रुकीं, हँसी और अर्थ-भरी दृष्टि मुझपर डालकर वह बोलीं, “अपना रास्ता अब तुम्हें बना लेना होगा। इतना जरूर है कि जिस सभा में तुम जाओगे, उस सभा के भाषणों की रिपोर्ट तुम्हें देनी होगी।”

मैं सोच में पड़ गया। भाभी कोई उपाय सुझाना चाह रही थीं, पर स्पष्ट शब्दों में वह मुझसे कुछ कह नहीं रही थीं। चूँकि उषा उस समय वहां नहीं थी, इसलिए वह अपनी बात कह सकती थीं, परन्तु मुझे ऐसा लगा, मानों उन्होंने निश्चय कर लिया है कि किसी भी मामले में वह अपना निश्चित मत नहीं देंगी।

“ठीक है।” मैंने कहा, “साफ-साफ आप न कहना चाहती हों तो न कहिये। इतनी सूचना दे देने पर भी यदि मैं स्वयं कोई उपाय न निकाल सका तो यही सिद्ध होगा कि मैं नालायक हूं। गनीमत है कि उषा इन

सभाओं में नहीं जाती। उषा की छुट्टी कब खत्म हो रही है ?”

भाभी हँसकर बोलीं, “अचानक बीच में यह बात क्यों पूछी ?”

“नहीं, कोई खास बात नहीं है।” मैंने तनिक संकोच से कहा, “आपकी बहन बहुत दिनों के बाद घर आई है और मेरा यह मतलब नहीं कि वह यहां से जल्द चली जाय। पर सच कहूं, उसका स्वभाव मुझे अच्छा नहीं लगता।”

“तो उससे तुम मत बोला करो।” भाभी कुछ जोर-से हँसकर बोलीं, “जब तुम्हारी उससे नहीं पटती तो तुम क्यों जाकर उससे बातें करते हो ?”

“मैं कहां उसके पास जाता हूं। वही जानबूझकर कोई बात निकाल लेती है और मुझसे बातें करने लगती है। फिर वही चिढ़ उठती है और आप मुझीसे कहती हैं कि मैं क्यों उसके पास जाता हूं ? वह आपकी सगी बहन है न ?”

मेरा यह प्रश्न सुनकर भाभी बड़े जोर-से हँस पड़ीं। मैं भी हँस पड़ा। प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर भाभी बोलीं, “गनीमत है, जो तुम्हारे दादा से उसकी पट जाती है। दोनों के मत जो मिलते-जुलते हैं। अगर उनसे भी उसकी न पटती तो मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाती। वह अपनेको कम्यूनिस्ट कहती है। पर जब तुम्हारे बारे में कोई बात निकलती है तो दोनों में जरा भी मतभेद नहीं होता और इसीपर मुझे आश्चर्य होता है। खैर जो है, सो अच्छा ही है। तुम्हारे दादा ने तुम्हारी तरह उषा के जाने के बारे में मुझसे नहीं पूछा, यही क्या कोई कम बात हुई ?”

उस दिन वह विषय यहीं तक रहा। मुझे अपने प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं मिला।

दूसरे दिन शहर में दो सभाएं थीं। एक हिन्दू महासभावालों की और दूसरी कांग्रेसवालों की। जब भी शहर में कांग्रेसवालों की कोई आम सभा होती, उसी दिन और उसी समय, हिन्दू सभावाले भी किसी अन्य स्थान पर अपनी आम सभा बुला लिया करते। यह उस शहर का जैसे एक रिवाज ही हो गया था। मैंने हिन्दू सभा की सभा में जाने का निश्चय किया। पर दादा ने मुझे कांग्रेसवालों की सभा में जाने का हुक्म दिया। मैं बड़ी उलझन में पड़ गया। उस दिन कांग्रेस की सभा में बाहर से आये हुए

कोई विख्यात नेता भाषण देनेवाले थे। उनके बारे में चर्चा थी कि वह बड़ा उग्र भाषण देते हैं। पहले ही दिन मेरी इस तरह परीक्षा लेने की दादा द्वारा खेली गई यह चाल देखकर मैं एकदम स्तब्ध रह गया।

भाभी बोलीं, “लो, तुम्हारी परीक्षा का आज पहला पर्चा है।”

मैं सभा में गया और वहां उषा को भी उपस्थित देखकर मेरे होश उड़ गये। कांग्रेस की सभा में उषा ! मेरे सामने प्रश्न खड़ा हुआ, क्या वह भी भाषण के नोट्स लेने आई है ? वक्ता ने जब भाषण शुरू किया तो यह देखने के लिए कि क्या उषा भी नोट्स ले रही है, मैं बीच-बीच में उसकी ओर निगाह डाल रहा था। वह बड़े ध्यान से भाषण सुन रही थी।

सौभाग्य से, उग्र भाषण देने के लिए विख्यात वह नेता उस दिन बिल्कुल शान्ति से बोले। इसलिए उनके भाषण की विस्तृत रिपोर्ट दादा के हाथ में देने में मुझे ज़रा भी संकोच न हुआ।

भाभी ने दादा से पूछा, “रिपोर्ट कैसी लिखी गई है ?”

“यह मैं क्या कह सकता हूं ?” दादा बोले, “मैं हिन्दू महासभावाली सभा में गया था। हिन्दू महासभावालों की सभा की रिपोर्ट लेना बड़ा सरल होता है। उन सभाओं के भाषण एक ही सांचे में इस तरह ढले होते हैं कि यदि हम एक सभा की रिपोर्ट लेकर, उसे उन्हींकी किसी दूसरी सभा की रिपोर्ट कहकर, पेश कर दें, तो भी उसमें विशेष फर्क नहीं पड़ता। यदि मैं इस सभा में न भी जाता, तो भी यह रिपोर्ट घर-बैठे लिख सकता था।”

“देखूँ वह रिपोर्ट !” कहकर उषा ने मेरी रिपोर्टवाला कागज दादा के हाथ से झटककर खींच लिया।

वह जब मेरी रिपोर्ट पढ़ रही थी, उस समय हम तीनों उसकी ओर देखते हुए चुपचाप खड़े थे।

“वाह, बहुत अच्छा !” उषा बोली, “बहुत सही रिपोर्ट है यह !” यह सुनकर मुझे भी क्षण-भर के लिए बड़ा सन्तोष हुआ। पर तुरन्त ही वह बोली, “ऐसी रिपोर्ट मैं नहीं लिख सकती। रिपोर्ट लिखने का काम किसी निर्बुद्धि को देना ही कुल मिलाकर अच्छा होता है। ऐसा मनुष्य एक-एक शब्द मशीन की तरह लिखता चला जाता है। लिखते समय ज़रा भी अपना दिमाग नहीं लड़ाता। वह बेवकूफ वक्ता, वह खादीवाला, कुछ भी अपना-

शनाप बक रहा था। अर्थशास्त्र किस चिड़िया का नाम है, इसकी उस मूर्ख को कोई कल्पना ही न थी। उस सिरफिरे की नज़रों में चरखा, तकली और खादी ही औद्योगीकरण था। यही एक ढपली बजा रहे हैं ये खादीवाले। आजकल मशीनें खूब हैं, मशीनों से उत्पादन होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से दुनिया में बड़े-बड़े उलट-फेर हो रहे हैं। ऐसे समय में अपनी आंखों पर खादी का पर्दा डालकर बैठे हुए इन गूलर के कीड़ों पर मुझे बड़ा तरस आता है। उस वक्ता के भाषण को सुनकर मुझे यही लग रहा है कि वक्तृत्व-कला में सिद्ध वह नेता महोदय गलत विषय चुन लेने के कारण बिल्कुल दो कौड़ी के बन गये !”

“हम यह कुछ नहीं समझते।” दादा बोले, “विषय में दिमाग लड़ाने की आदत जवतक छूट नहीं जाती, तबतक हमारा यह काम हो ही नहीं सकता। हमारे काम के लिए ऐसे आदमियों की जरूरत है, जो भाषण लेते समय बुद्धि रखते हुए भी निर्बुद्धि हो जायं, अथवा जैसा कि तुम कह रही हो, जो जन्म से ही निर्बुद्धि हों और मशीन की तरह रिपोर्ट लेते रहें। अपनी अक्ल खर्च करके लिखी गई रिपोर्टें हमारे किसी काम की नहीं होतीं। सो हमारे काम के लिए हमारा यह निर्बुद्धि बालू ही ठीक है।”

इसका मतलब तो यह हुआ कि दादा की नज़रों में भी मैं बेवकूफ हूं ! क्या उषा को खुश करने के लिए वह मुझे बेवकूफ कह रहे थे ? वैसे सुबुद्धि होने का मुझे कभी अभिमान न था। मेरी बुद्धि की परीक्षा के अवसर अभी आनेवाले थे। फिर भी उषा मुझे निर्बुद्धि कहे और दादा उसका समर्थन करें, इसपर मुझे चिढ़ आये बिना न रही।

भाभी ने कहा, “देखो लाला।” मैं चौंक पड़ा और बोला, “अब कम-से-कम आप तो जले पर नमक न छिड़कें, भाभी !”

“निर्बुद्धि मनुष्य को यदि निर्बुद्धि कहें तो उसे बुरा क्यों लगना चाहिए, यह मैं नहीं समझ पाती।” उषा बोली, “हर आदमी की अपने बारे में एक कल्पना होती है। उस कल्पना पर यदि कोई आघात करे तो उसे बुरा लग जाता है। परन्तु किसी-न-किसी को, कभी-न-कभी, उससे यह कह ही देना पड़ता है कि असल में वह क्या है।”

“ऐसी बात नहीं करते, उषा।” भाभी बोलीं, “सम्बाददाता का काम

करनेवाले लोगों में भी बुद्धिमान लोग होते हैं। यही नहीं, बल्कि मैं तो यह भी कहूंगी कि सम्वाददाता का काम बुद्धिमान लोगों को ही दिया जाता है। दुनिया की राजनीति की उथल-पुथल समाचार-पत्रों के सम्पादकों की अपेक्षा आज के ये सम्वाददाता ही कर रहे हैं।” फिर दादा की ओर मुड़कर वह बोली, “एक बात और मेरे मन में आई है। उषा जैसी उत्साही लड़की भावना का शिकार होकर यदि अपने समान ही किसी उत्साही व्यक्ति के हाथ में चली गई तो उस गृहस्थी में रोज भगड़े होंगे। दोनों एक-दूसरे पर अपना रीब गालिब करना चाहेंगे। समान वृत्ति के, समान उत्साह के और एक ही तौल के दो व्यक्ति यदि विवाह-बंधन में बंध जायं तो उनकी गृहस्थी सुखी नहीं होती। इसलिए मैं चाहती हूँ कि यदि उषा और लाला का...”

“अरे हटाओ !” उषा ने जोर का कहकहा लगाकर कहा, “इस मोम के पुतले को लेकर मैं क्या करूंगी ? जरा-सी आंच लगते ही यह पिघल जायगा। मैं विवाह ही नहीं करना चाहती और विवाह करने की कभी इच्छा हो ही गई तो दूसरे के द्वारा—कम-से-कम तुम जैसी व्यवहारशून्य बहन के द्वारा—चुने गये वर से तो मैं हरगिज विवाह नहीं करूंगी।”

“पगली हो तुम, उषा !” भाभी बोली, “ऐसे निर्बुद्धि पति ही अच्छे होते हैं। वह पत्नी के सामने कम-से-कम अपनी अक्ल का घमण्ड तो नहीं दिखाते। जैसे रखो, वैसे चुपचाप रहते हैं। बेचारे कभी कोई शिकायत नहीं करते। रोज काम में लाने के लिए ऐसे पुरुष ही बहुत बढ़िया होते हैं। कम-से-कम इस विषय में तो मेरी मान लो। खोजने से भी तुम्हें ऐसा पति नहीं मिलेगा।”

“क्या तुम इनसे विवाह कर लेती ?” उषा चिढ़कर बोली, “ऐसे बुद्ध की पत्नी कहलाने में क्या तुम्हें अभिमान मालूम होता ?” उषा की इस बात पर भाभी सिर्फ हँस पड़ीं। यह देखकर उषा दादा की ओर मुड़कर बोली, “अब आप ही जरा गौर कीजिये, रावसाहब, कैसा तमाशा है। जब खुद अच्छा पति पा जाती है तो स्त्री-जाति दूसरों के बारे में दोष निकालने लगती है।”

“क्यों सच है न यह ?” भाभी की ओर मुड़कर दादा बोले।

“यह सवाल आप मुझसे पूछ रहे हैं ?” भाभी ने दादा की ओर देखते हुए कहा ।

“नहीं तो किससे पूछ रहा हूं ?” दादा ने कहा, “विवाहित जोड़ी तो एक ही है न यहां ।”

“इसीलिए कह रही हूं,” भाभी ने उत्तर दिया, “अगर बचे हुए दो का विवाह कर दिया जाय तो बस, काम बन जायगा ।”

“मैं सोचता था,” दादा बोले, “तुम बड़ी समझदार हो । बालू के बारे में तुम्हें कुछ नहीं लगता, मुझे लगता है । पर मैं ऐसी बात कभी नहीं कह सकता था । वह आगे पढ़ सकता था । ऐसा नहीं कि आगे पढ़ने के लिए परिस्थिति की अनुकूलता न थी, परन्तु वह इस घर में बेकार बैठा रहा । मेरी नौकरी दौरेवाली है । हमेशा घर से बाहर रहना पड़ता है । तुम घर में अकेली रहती हो । घर में उसका साथ रहेगा, इसीलिए मैंने भी उसकी आगे की पढ़ाई की ओर कोई ध्यान न दिया । अब मैं सोचता हूं कि वह काम से लग गया है । उषा अब बी० ए० हो जायगी । जहांतक ज्ञान-संपादन का सवाल है, उसने बी० ए० पास से भी अधिक उन्नति कर ली है । इस दिशा में तुम्हें भी उसने मात दे दी है । क्या ऐसी मेधावी लड़की को तुम बालू के गले में बांधना चाहती हो ? हां, अगर तुमने मजाक किया है तो बात दूसरी है । कम-से-कम तुम्हें स्वयं अपनी ओर तो देखना चाहिए था । हमारा सम्बन्ध जब ऐसा है तो अपनी छोटी बहन के लिए बालू-जैसा वर सुभाने में तुम्हें कुछ तो सोचना चाहिए था ?”

“क्या आप इतना मजाक भी नहीं समझते ?” भाभी हँसने का प्रयत्न करती हुई बोलीं । हृदय में बाण लग जाने से होनेवाली वेदना को भुलाकर मनुष्य जिस समय हँसने का प्रयत्न करता है, उस समय उसकी मुद्रा कितनी दयनीय हो जाती है, यह भाभी के उपरोक्त उद्गारों के समय मुझे दिखाई दिया । इस अप्रिय प्रसंग को वन्द करने की गरज से मैं बड़े जोर-से हँसने लगा । दादा ने पूछा, “तुम क्यों हँस रहे हो, बालू ?”

“आप लोगों पर मुझे आश्चर्य हो रहा है ।” मैं गंभीर होकर बोली, “विशेषतः भाभी पर । जिसका विवाह करना है, कम-से-कम उससे पहले पूछ तो लेना था इन्हें । उषाजी से तो पूछा ही नहीं है, पर कम-से-कम

मुझे तो पहले पूछ लेतीं।”

“क्या तुमसे नहीं पूछा था ?” दादा बोले, “मेरा ख्याल था कि यह तुम्हारा ही प्रस्ताव है।”

“अब आपसे क्या कहा जाय, दादा ?” मैं कहकहा लगाता हुआ बोला, “मुझे पत्नी चाहिए है, पति नहीं ! भाभी यहीं तो गलती कर गईं। उन्हें लगा कि मैं उषा की पत्नी होकर रहूंगा, कुत्ते की तरह उसके पीछे-पीछे घूमूंगा, नाचूंगा, उसका मनोरंजन करूंगा। भाभी की चाल आप समझे नहीं, दादा। उन्होंने मजाक नहीं किया है। अभी तो वह आपको किसी तरह समझा रही हैं। उषा को वह खूब पहचानती हैं, इसीलिए उन्होंने मेरा नाम सुझाया है। परन्तु भाभी को समझ लेना चाहिए कि मैं इतना बेवकूफ नहीं हूँ ! अगर आप दोनों ही यह विवाह तय कर दें, तब भी मैं साफ इन्कार कर दूंगा। हां, भाभी इतनी चालाक होंगी, यह मैंने कभी नहीं सोचा था। उन्हें लगा, भरत की मांडवी और लक्ष्मण की उर्मिला, उसी तरह दोनों बहनें देवरानियां होकर रहेंगी और फिर दोनों मिलकर मुझे दिन भर काम में जोतती रहेंगी। एक पति के नाते और दूसरी देवर के नाते ! क्या खूब ! भाभी को मालूम हो जाना चाहिए कि मैं अभी इतना पागल नहीं हुआ हूँ कि ऐसे हिमालय पहाड़ को सिर पर उठाकर उसके नीचे कुचल जाने के लिए तैयार हो जाऊँ !”

मैंने यह सब इतना साफ-साफ कैसे कह दिया, इसपर स्वयं मुझे ही बड़ा आश्चर्य हुआ। भाभी तो स्तंभित होकर मेरी ओर देख रही थीं। उषा के मन पर शायद कोई दूसरा ही प्रभाव पड़ा होगा। वह बोली, “इतने आपसे बाहर क्यों हो गये, बालूजी ? मैंने कोई बिल्कुल ही इन्कार नहीं कर दिया था।”

“वाह, वाह ! ‘किसे चाहिए ऐसा बुद्ध पति’—क्या कुछ इस तरह नहीं कहा था तुमने ?” मैंने कहा।

“तब तो कहना चाहिए कि मेरा प्रस्ताव बिल्कुल ही व्यर्थ नहीं रहा।” भाभी बोलीं, “आज नहीं तो कल, दोनों कहीं-न-कहीं आधे रास्ते पर मिलेंगे, ऐसी सम्भावना दीख रही है मुझे। सुना, उषा ? मेरे कथन में कुछ तथ्य अवश्य है। मेरे प्रस्ताव को बिल्कुल ही मत उड़ा देना। शान्ति से

अगर सोचोगी तो तुम्हें यह जंचे बिना न रहेगा कि मेरा सुभाव तुम्हारे कल्याण के लिए ही है। आज शायद न जंचे, पर आगे...”

“अच्छा-अच्छा। आगे की बात आगे देखी जायगी।” दादा बीच ही में बोल उठे, “आज ही इस विषय पर बातें करने की क्या जरूरत है? बालू अब बेकार नहीं रहा है, यह सच है। वह काम से लग गया है। उसे जो काम मिला है, वह आज तुम्हें मामूली मालूम होता है। पर कल उसे इसका फल अच्छा मिलेगा, ऐसी मुझे आशा है। उसने आज समाचार-पत्र के आफिस पर और हमारे आफिस के द्वार पर दस्तक दी है। हो सकता है, आज नहीं तो कल, इनमें का कोई एक दरवाजा खुल जायगा और साथ ही उसकी किस्मत भी खुल जायगी। बालू, तुम्हारी आज की रिपोर्ट सच-मुच बड़ी अच्छी लिखी गई है। समाचारपत्र की तरह हमारे आफिस से भी तुम्हें इसके लिए उचित पारिश्रमिक मिलेगा।” ऐसा कहकर दादा उस रिपोर्ट को लेकर चल दिये।

अवास्तविक रीति से आरम्भ हुए इस विषय को कहीं वास्तविक स्वरूप तो प्राप्त नहीं हो रहा है, ऐसी शंका मुझे होने लगी। उस दिन से उषा ने मुझसे वर्तव करने का अपना ढंग बदल दिया। पद-पद पर मुझे अपमानित करने का अपना पहले का तरीका छोड़ दिया। अब वह मुझसे काम लेने लगी।

विक्टोरियन काल के किसी दाक्षिण्य-युक्त नायक की तरह मैं भी उसकी सनक पर गर्दन झुकाने लगा। धीरे-धीरे वह भी मुझपर खुश हो रही है, ऐसा मुझे प्रतीत होने लगा। जैसा भाभी ने कहा था, उसके अनुसार ‘रोज के काम में लाने योग्य’ पति से किस तरह पेश आना चाहिए, इसका प्रयोग उषा कर रही थी और उस परीक्षा में ऊंचे नम्बरों से पास होने की मैं भी जी-जान से कोशिश कर रहा था। यह देखकर भाभी शायद घबरा उठी होंगी। एक दिन वह मुझसे बोलीं, “आजकल यह क्या चल रहा है, लाला? पहले की तुम्हारी वह तत्व-निष्ठा कहां चली गई? रोज सभा की रिपोर्ट लाकर अपने दादा को दे रहे हो? क्या पुलिस-विभाग में भरती होने का इरादा है तुम्हारा?”

“आखिर कुछ-न-कुछ तो मुझे करना ही होगा!” मैं गम्भीरता का

भाव लाकर बोला, “मुझे अब गृहस्थ बनना चाहिए। टुकड़े तोड़ता हुआ और कितने दिन पड़ा रहूंगा आपके दरवाजे ?”

“और उषा की जो इतनी चापलूसी कर रहे हो, इसका क्या मतलब ?”

“ठहरिये भाभी, आप जैसी विदुषी के मुख से ये उद्गार शोभा नहीं देते। मैं ‘प्रियाराधन’ करता हूं। मैं ठहरा अशिक्षित। एक सुशिक्षित स्त्री से मेरा गठबन्धन कर देने का आपने निश्चय किया है। इसलिए उसके योग्य सिद्ध होने का क्या मुझे प्रयत्न नहीं करना चाहिए ? जिस तरह मुझे नौकरी की जरूरत है, उसी तरह एक पत्नी की भी है। किसी देहाती फूहड़ स्त्री को पत्नी के रूप में स्वीकार करके अपने दाम्पत्य जीवन को देहाती बना लेने की अपेक्षा किसी सुशिक्षित और सुसंस्कृत विदुषी का मेहनती पति होकर रहना मेरे लिए अधिक शोभनीय होगा।”

“अच्छा, यह बात है ?” भाभी ने तानेभरे स्वर में कहा, “क्या तुमने मुझे बिल्कुल बावली ही समझ लिया है ? याद रखो, मैं तुम्हारी चाल जान गई हूं। कल तुम मुझसे पूछ रहे थे कि उषा कब जायगी और आज उसकी साड़ी को चुनटकर रखने के लिए भी तैयार हो गये हो ! इसमें वास्तविकता कितनी है और ढोंग कितना है, यह मैं खूब समझती हूं ! क्यों उस घमण्डी लड़की को इस तरह खिला रहे हो ?”

“मैं खिला रहा हूं ! किसे ? उषा को ! मुझ जैसे न जाने कितनों को उसने आज तक खिलाया है ! आपने तो सुना होगा, वही बता रही थी ! उसे मैं खिलाऊंगा ? अब आपसे क्या कहा जाय, भाभी ?”

“तुमसे तो बात करना ही फिजूल है !” ऐसा कहकर भाभी गुस्से से भरीं भीतर चल दीं।

यह देखकर कि भाभी मेरी चाल ताड़ गई हैं, मुझे सन्तोष हुआ। मेरे सामने प्रश्न खड़ा हुआ—कालेज के युवकों को उंगली पर नचाने की शान बघारनेवाली यह लड़की क्या सचमुच मेरे चकमे में आ जायगी ? दादा ने मुझपर नज़र रखने के लिए उसे एक तरह से नियत कर दिया था। रिपोर्ट लेने जिस-जिस सभा में मैं जाया करता, उस-उस सभा में वह भी उपस्थित रहती थी। जो मुझे अनुकूल होती, वह रिपोर्ट में लिखा करता

था। परन्तु दादा अब उषा को मेरी रिपोर्ट जांचने को देते तो वह उसमें कोई गलती न निकालती। इसपर मुझे आश्चर्य होता।

एक बार एक सभा की मेरे द्वारा दादा को दी गई रिपोर्ट और उनके द्वारा सुना गया उसी सभा का हाल, इन दोनों में बड़ा फर्क दिखाई दिया। दादा ने इस विषय में जब उषा से पूछा तो उसने मेरी रिपोर्ट को ही सच बताया।

दादा सोच में पड़ गये। जिस व्यक्ति ने उन्हें सभा का हाल सुनाया था, उसपर उनका बड़ा विश्वास था। उन्होंने जब पुनः मुझसे इस विषय में पूछा तो मैंने कहा, “क्या आप उषा पर भी विश्वास नहीं करते, दादा?”

“किसीने आपको धोखा दिया है, रावसाहब!” उषा बोली, “आपको बनाने की कोशिश की है उसने? कौन था वह?”

“क्या कोई हिन्दू महासभाई था?” मैंने पूछा।

दादा ने कोई उत्तर न दिया। मेरे उद्गारों का सूत्र पकड़कर भाभी ने टीका-टिप्पणी शुरू कर दी। वह बोलीं, “बड़े विलक्षण होते हैं ये हिन्दू-महासभावले। कांग्रेसवालों से वे इतना क्यों जलते हैं, यह मैं नहीं समझ पा रही हूँ। ऐसी कौन-सी विशेष नीति हमारी कांग्रेस ने स्वीकार की है, जो उन्हें अच्छी नहीं लगती?” भाभी के बोलते समय अन्यमनस्क दादा ने भाभी के मुख से ‘हमारी कांग्रेस’ शब्द के निकलते ही एकदम उनकी ओर टकटकी लगाकर देखा। भाभी ने अपने चेहरे की एक भी रेखा को बदलने नहीं दिया। बोलीं, “हमारे कांग्रेसवाले इन हिन्दू महासभाव-वालों के रास्ते कभी नहीं जाते। उनका समर्थन भी नहीं करते और न उनका कभी विरोध ही करते हैं। उन्हें वह अपने हिसाब में ही नहीं लेते। शायद इसीलिए मुझे लगता है कि वह हमारी कांग्रेस से इतना जलते हैं।”

“जरा ठहरो।” दादा बोले, “कांग्रेसवालों के बारे में तुम क्या जानती हो?”

“जितना आप जानते हैं, उतना ही मैं भी जानती हूँ।” भाभी शान्ति से बोलीं, “कालेज-जीवन से ही मैं कांग्रेस के आन्दोलन में शामिल थी। मैंने कितनी ही हड़तालें कराईं, कितने ही तिरंगे सरकारी इमारतों पर फहराये, अनेक जलूस निकाले, पिकेटिंग में भाग लिया और खादी बेचने के

लिए भी उसके गट्ठे सिर पर रखकर घर-घर के चक्कर काटे।”

एक क्षण तक हम सब स्तब्ध बैठे भाभी की बातें सुनते रहे।

“सुना रावसाहब,” उषा बोली, “ये सब ढोंग मैंने भी किये थे।”

“ढोंग !” दादा बोले, “क्या तुम्हें ये सब ढोंग मालूम हुए। क्या इसीलिए तुमने यह सब अब छोड़ दिया है ?”

“नहीं, यही कारण नहीं है।” उषा बोली, “बात यह है कि कांग्रेस का संकीर्ण दृष्टिकोण अब मुझे नहीं जंचता। अन्तर्राष्ट्रीय भावनाएं जैसे-जैसे बल पकड़ने लगीं, वैसे-वैसे कांग्रेस का यह वर्तमान कार्यक्रम मुझे अधूरा लगने लगा। जबकि दुनिया में मशीन-युग शुरू हो गया है, मुझे चर्खे घुमाते रहना निरा पागलपन लगा। यह देखते हुए भी कि पूंजीवाद के कारण दुनिया में अनर्थ हो रहे हैं, पूंजीपतियों से घनिष्ठता स्थापित करनेवाली कांग्रेस मुझे तिरस्कार के योग्य लगने लगी।”

इसके बाद उषा ने पूंजीवाद, अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन, विरोध-विकास-वाद, जड़वाद और निराशावाद आदि अनेक विषयों पर व्याख्यान देना शुरू कर दिया। उस समय भाभी उसकी ओर टकटकी लगाये देख रही थीं। मैं दंग रह गया। पर दादा के मन पर कुछ भी प्रभाव पड़ा हो, ऐसा दिखाई नहीं दिया।

कांग्रेस का आन्दोलन जोरों पर था। समाजवाद का सरकार आज विरोध कर रही थी। समाजवादी लोग कांग्रेस में घुसकर—कभी-कभी अपनेको कांग्रेसवादी कहकर—अपने मतों का प्रचार कर रहे थे। इस दृष्टि से देखने पर मैंने अन्दाज लगाया कि उषा की बातें दादा को अच्छी नहीं लगी होंगी। दादा ने प्रत्यक्ष यह बात कही नहीं और चूंकि वह कुछ नहीं बोल रहे थे, इसलिए उषा ने उनकी कोई परवा न की। सिनेमा की रील की तरह एक बार चित्र सरकने शुरू हुए तो वह किसी भी तरह रुक ही नहीं रहे थे।

दादा ने आंखें बन्द करके खरटि भरना शुरू कर दिया। यह देखकर भाभी ने उषा से कहा, “किससे बातें कर रही हो, उषा ?”

तब वहीं उषा का ध्यान दादा की ओर गया।

“यह हाल है इन पुरुषों का !” उषा बोली, “दूसरों की बात वे

बिल्कुल सुनना ही नहीं चाहते।”

“पर मैं तो सुन रहा हूँ ध्यान से।” मैंने कहा, “आज मुझे जितनी जानकारी मिली, उतनी इससे पहले कभी नहीं मिली थी। तुमने विषय को इतना आसान कर दिया कि सौ पुस्तकें पढ़ने के बाद भी मैं उसे इतनी आसानी से न समझ पाता।”

भाभी ने मेरी ओर आंखें तरेरकर देखा। यह देखकर मैंने कहा, “और एक हमारी यह भाभी हैं। इन्हें किसीमें भी रस नहीं आता। खुद तो कुछ करती-धरती नहीं, दूसरों को भी कुछ नहीं करने देतीं। सिर्फ नाम धरती रहती हैं लोगों को और हमें बताती हैं कि कांग्रेस के आन्दोलन में यह शामिल थीं। यह कह रही हैं, इसीलिए सच मान लेना चाहिए, वस !”

यह सुनकर उषा ने जोर का कहकहा लगाया तो दादा जाग पड़े, बोले, “अरे, मैं शायद सो गया था। हां, क्या कह रही थीं तुम उषा उस विरोध-विकासवाद के बारे में ?”

“अब वह विषय खत्म हो गया।” भाभी बोलीं, “अब जाकर सो जाइये। कल तड़के ही कहीं जाना है न आपको ?”

“अच्छी बात है।” कहकर दादा उठकर चल दिये।

नींद का उन्होंने सफल अभिनय किया था, इसका मुझे यकीन हो गया।

“क्यों फिजूल बक रही है ?” भाभी ने उषा से कहा, “हम लोग इस विषय को क्या समझ सकते हैं ?”

“हम लोग याने कौन लोग ?” मैंने भाभी से पूछा, “कांग्रेसवाले या सरकारी नौकरीवाले ?”

“दोनों ही।” भाभी बोलीं, “दोनों ही परिस्थिति के गुलाम हैं। दोनों ने ही विशिष्ट प्रकार के बंधनों में अपने-आपको जकड़कर रखा है। दोनों को ही उन बंधनों की सीमा एकसमान पालन करनी पड़ती है। भविष्य में जब भी कांग्रेस के हाथ में शासन आ जायगा तो इसका पूरा ज्ञान हो जायगा तुम्हें।”

इतने निश्चयपूर्वक इस विषय पर भाभी पहली बार ही बोलीं, ऐसा मुझे लगा।

“पर कांग्रेस के हाथ में शासन जाय तब न ?” उषा ने कहा ।

“वह समय अब अधिक दूर नहीं है ।” भाभी बोलीं और उठकर चल दीं ।

“बड़े विलक्षण हैं ये दोनों !” उषा बोली, “जीजी का स्वभाव मैं पहले से ही जानती हूँ । किसी एक सिद्धान्त से वह कभी चिपकी नहीं रहतीं । कल केसरिया पहनकर शान बघारती थीं और आज पुलिस सब-इन्स्पेक्टर की बीबी बनी बैठी हैं । कल खुद वह भी कोई सरकारी नौकरी कर लेंगी शायद !”

“और तुम ?” मैंने पूछा, “तुम क्या करोगी बी० ए० पास होने के बाद ?”

“यह मैंने अभी तय नहीं किया है ।” उषा इस भाव से बोली जैसे कोई बुजुर्ग हो, “वकालत की पढ़ाई करूँ या एम० ए० की करूँ, यह अभी निश्चित करना है । पर यह बेशक तय कर लिया है कि मैं न नौकरी करूँगी और न वकालत ।”

“फिर क्या करोगी ?” मैंने भावुकता से पूछा, “विवाह करोगी ?”

उषा हँस पड़ी और बोली, “विवाह शायद न भी करूँ और शायद कर भी लूँ, पर मेरे अनुकूल जोड़ीदार मिलना चाहिए ।” वह फिर हँस पड़ी और बोली, “नौकरी और विवाह, इन दो बातों को छोड़कर, क्या तुम लोगों को और कुछ सूझता ही नहीं ?”

“नौकरी और विवाह !” मैंने कहा, “यही दो बातें तो हैं दुनिया में । इनके सिवा किसीको और क्या दीखेगा ?”

“और तुम क्या करनेवाले हो ?” उषा ने पूछा ।

“मैं ? दुनिया की नजरों में मैं एक नाचीज़ हूँ । आजतक मैं यह सोचता था कि जबतक दादा कोई शिकायत नहीं करते तबतक मेरी जिन्दगी यों ही कटेगी, जैसी कि अभी कट रही है और कटती आई है, परन्तु तुम्हारे आने के बाद से मैं थोड़ा सोचने लगा हूँ । कुछ-न-कुछ मुझे करना ही चाहिए, ऐसा मुझे लगने लगा है । पर क्या करना चाहिए, कौन-सा काम मैं कर सकूँगा, यह जरूर अभी तक मैं निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ । इसके सिवा अब तुम चली जाओगी । कौन कह सकता है कि तुम्हारे जाने के बाद

मैं कहीं फिर न उसी तरह बेकार हो जाऊं, जैसे कि पहले था। अभी तक मेरा यह ख्याल था कि काम करने की स्फूर्ति अंतरंग से होती है।” इतना कहकर मैं रुक गया।

यह देखकर कि आगे मैं कुछ बोल नहीं रहा हूं, उषा ने पूछा, “अब तुम्हारा क्या खयाल है?”

“अब मुझे क्या लगता है, यह कहने की स्वतन्त्रता अभी तक मुझे प्राप्त नहीं हुई है। मैं एक परावलंबी और परोपजीवी प्राणी हूं। अपने पैरों पर खड़े होने की सामर्थ्य मुझमें नहीं, यह मैं महसूस करता हूं। इसीलिए मैं दादा और भाभी की सज्जनता पर निर्भर रहा हूं।”

ये बातें यहीं तक रहीं। रात अधिक हो जाने के कारण उषा उठकर चली गई। मैं अपने विचारों में खोया वहीं बैठा रहा।

एक आश्रित के नाते मेरा आजतक का जीवन बीता था। भाभी की सज्जनता के कारण मुझे आजतक कभी ऐसा नहीं लगता था कि मेरे इस प्रकार के जीवन में कभी कोई बाधा आयगी। परंतु जबसे दादा ने यह ऊंटपटांग काम मेरे गले से बांध दिया है, तबसे ऐसा लगने लगा है कि मेरे विचारों को कुछ गति मिल रही है। उषा के कारण उन विचारों का रूपान्तर ‘खलबली’ में हो गया है। मैं एक सीधे मार्ग से जानेवाला मनुष्य हूं, पर अब आड़े-टेढ़े रास्ते से जाने का मन होने लगा है।

मुझे यह शंका हुई कि आज जो बात हुई वह शायद भाभी को अच्छी नहीं लगी। मेरी बातों का उषा के मन पर पड़ा प्रभाव भी शायद विशेष अच्छा नहीं होगा। दादा भी मेरे बारे में सशंक हो गये थे। जो चाल मैं खेल रहा हूं, उसके कारण क्या मैं सबके मन से उतर जाऊंगा, यह शंका मेरे मन को छू गई और मैं उदास हो गया।

वह सारी रात मैंने बेचैनी में काटी।

: ४ :

उस वक्ता पर मुकद्दमा चला। अदालत में उसके भाषण की जो रिपोर्ट पेश की गई थी, वह मेरे द्वारा दी गई रिपोर्ट से बिल्कुल भिन्न थी। मेरी रिपोर्ट अक्षर-अक्षर ठीक थी, यह मैं नहीं कहूंगा। बहुत-से वाक्य मैंने

उसमें छोड़ दिये थे, परंतु जिस रिपोर्ट के आधार पर यह मुकद्दमा दायर किया गया था, वह रिपोर्ट बिल्कुल ठीक थी, ऐसा मुझे नहीं लगता था।

वह रिपोर्ट दी किसने ? वह रिपोर्ट किसकी थी, यह बात दादा ने अदालत में अपना बयान देते समय कही ही नहीं। मुकद्दमे में अभियुक्त ने अपना बचाव करने से साफ इन्कार कर दिया। इसलिए रिपोर्ट किसने लिखी, इसकी कोई पूछताछ ही नहीं हुई। मेरे लिए बेशक यह बात अंत तक एक पहेली ही बनी रही।

उस वक्ता को छः माह की कड़ी कैद की सजा हो गई।

उषा उस समय चली गई थी। चूंकि इस मामले में उसका भी थोड़ा संबंध था, इसलिए मुझे लगा कि इस समय यदि वह भी यहां होती तो अच्छा था। बंबई पहुंचने पर यदि वह मुझे पत्र लिखती तो शायद मैं भी उसे पत्र द्वारा इस मुकद्दमे का हाल लिख भेजता और इस मामले में उसकी क्या राय है, इसका भी पता मुझे चल जाता।

पर ऐसी कोई बात हुई ही नहीं। भाभी भी इस विषय में कुछ न बोलीं। उषा के आने के बाद से उन्होंने मुझसे बर्ताव करने का जो ढंग बदल दिया था, वह उन्होंने अभी तक उसी तरह कायम रखा था। मुझे वह महसूस हो रहा था। उनके बर्ताव से भी कुल मिलाकर मुझे ऐसा लगा कि वह शायद उन्हें भी महसूस हो रहा होगा। फिर भी इस शंका का निवारण करने की मैंने कोई कोशिश न की।

इस मुकद्दमे का फैसला हो जाने के बाद लोग ज़िद पर आ गये। नये-नये वक्ता आते और बड़े उग्र विचारों को प्रकट करनेवाले भाषण देते। रिपोर्ट लेने का काम मैं पहले की तरह कर ही रहा था। परंतु दादा को जो रिपोर्ट मैं दिया करता, उसका मुझे पहले की तरह पारिश्रमिक न मिलता था। कुछ रिपोर्टों का मिलता, तो कुछका न मिलता। यह देखकर कि एक खट्टरधारी महाशय भी मेरी तरह हर सभा में भाषणों की रिपोर्ट लेते हैं, मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने मुझसे कहा कि वह भी बंबई के एक दैनिक समाचारपत्र के विशेष संवाददाता हैं। और भी दो-तीन आदमी नोट लेते थे। उन्हें मैं जानता था। पर उन परिचित और अपरिचित मनुष्यों में दादा का आदमी कौन-सा है, यह मैं निश्चित रूप से न पहचान पाता।

रोज मुकद्दमे हो रहे थे और हर वक्ता को सजा मिल रही थी। यह देखकर मैं बेचैन हो उठा था। इस प्रकार जब मुकद्दमों का सिलसिला शुरू था, मुझे यह देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि भाभी भी उन सभाओं में आने लगी हैं। क्षण-भर के लिए मेरा मन सशंक हो उठा। एक बार मेरे मन में यह भी आया कि कहीं दादा की आज्ञा से ही तो वह इन सभाओं में उपस्थित न होती हों? मैंने जब उनसे इस विषय में पूछा तो वह बोलीं, “मानलो मैं तुम्हारे दादा की आज्ञा से ही इन सभाओं में जाती हूँ, पर क्या तुम सोचते हो कि किसीके इस तरह पूछने से मैं यह स्वीकार कर लूंगी? नहीं न? फिर क्यों पूछते हो?”

“आजकल आपको क्या हो गया है, भाभी?” मैंने दीन स्वर में उनसे पूछा, “मैं जब भी आपसे कुछ पूछता हूँ, आप उसका सीधा उत्तर कभी नहीं देतीं। ऐसा मैंने क्या अपराध कर डाला है आपका?” भाभी की आंखों में एकदम आंसू आ गये। वह क्षण-भर के लिए चुप रहीं। एक ओर मुड़कर, आंचल से आंसू पोंछकर, स्नेहसिक्त दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई बोलीं, “सच, पहले हम बड़े सुखी थे। थे न? यह कहां का कम्बख्त आन्दोलन शुरू हो गया और सुख की गृहस्थी चौपट होने लगी। मैं पहले की सब बातें भूल गई थी। पर उस दिन जब एक वक्ता को सजा हुई, जब उसका मुकद्दमा हो रहा था, तब मुझे उसके नाम का पता चला और मैं अदालत गई। वहां देखा तो वह मेरा कालेज का सहपाठी था। सहपाठी क्यों कहूं? जब मैं फर्स्ट ईयर में थी, वह जूनियर बी० ए० में था। वह अपने विद्यार्थी-जीवन में हमेशा अप-टू-डेट पोशाक में रहता था। जब उसी-को खद्दर पहने कठघरे में खड़ा देखा तो मेरा कलेजा धक-से हो गया। मैंने मन में कहा, ‘इस व्यक्ति पर यह मुकद्दमा! हम लोग उसका उन दिनों मज़ाक उड़ाया करते थे। उसे सब लोग ‘साहब’ कहा करते थे। उसमें यह परिवर्तन! और मैं ऐसी! लगा, कैसी उथल-पुथल हो रही है दुनिया में? पहले की वृत्ति उमड़ उठी। उस दिन सभा में गई थी। उस समय मुझे लगा, मैं भी मंच पर खड़ी होकर कुछ बोलूं। मैं अपने स्थान से खड़ी भी हो गई थी।”

हृदय से उमड़ रहे आवेग को दबाकर भाभी क्षण-भर को मौन

हो गई। उनकी आंखें फिर डबडबा आई थीं। मेरे सामने ही आंखें पोंछकर वह बोली, “तुमसे क्यों छिपाऊं? कुछ समय पहले मुझे बड़ी लज्जा आई थी, इसीलिए मुंह फेरकर आंसू पोंछे थे। अब उसीकी लज्जा आ रही है मुझे। पर तुमसे क्यों छिपाऊं? सिर्फ यहीं तो मुझे एक आधार है। फिर तुमसे प्रतारणा क्यों करूं?”

उनका कंठ भर आया था और उनकी आंखें बरस पड़ीं थीं। परिस्थिति का प्रभाव उनके मन पर पड़ गया था। उस प्रभाव को शब्दों के रूप में किसीके सामने प्रकट कर देना उनके लिए आवश्यक हो गया था, वरना हृदय का असह्य भार वैसे हल्का न हो पाता। मेरे प्रश्न के कारण वह व्यवधान दूर हो गया और भीतर का आवेग बाहर निकल पड़ा।

भाभी को क्या उत्तर दूं, यह मुझे सूझ नहीं रहा था। वैसे देखा जाय तो उन्होंने उत्तर की अपेक्षा भी कहाँ की थी? वह बोल रही थीं और मैं सुन रहा था। फिर भी उन्होंने कहा, “क्यों, बोलते क्यों नहीं हो, लाला? कुछ हो रहा है मन पर असर?”

इस आशा से कि कम-से-कम विपरीत प्रभाव के कारण उनका आवेग कुछ कम हो जायगा, मैं ज़रा कठोरता से बोला, “मुझपर क्या असर होगा? मनुष्य यहीं तो गलती कर देता है। सब्जीवाली से बैंगन खरीदते समय हम जितनी छानबीन से माल लेते हैं, मनुष्य उतनी भी छानबीन विवाह के समय नहीं करते। जब आपने विवाह किया, उस समय आप बच्ची नहीं थीं। किसी दूर के नातेदार के घर नहीं रह रही थीं। आपकी इच्छा के विरुद्ध भी यह विवाह तय नहीं हुआ था!”

एक गहरी सांस खींचकर भाभी बोली, “तुम सच कहते हो, लाला। आजकल प्रीढ़-विवाह का केवल नाम रह गया है, वैसे सब रीतियां पुराने जमाने के बाल-विवाह की तरह ही हो रही हैं। लड़की बी० ए० पास हो, फिर भी उसे देखने को आते हैं, चाय-नाश्ते का कार्यक्रम होता है। जाने-अनजाने उसी तरह से यह भी प्रबंध किया जाता है कि वर अपनी भावी वधू को देख ले। मेरे साथ भी यही हुआ था। विवाह के दूसरे दिन ही खादी की साड़ियों की गठरी को नैहर की खूंट पर टांगकर, जार्जेट की साड़ी पहनकर, मैं अपने पति के घर आई। मेरी ससुराल में न सास थी, न

ससुर। मुझपर किसीने कोई सस्ती नहीं की थी। पर मैंने स्वेच्छा से ही अपने कपड़ों में परिवर्तन कर लिया था। अब रोने से क्या लाभ ?” इतना कहकर भाभी ने पुनः एक गहरी सांस भरी और हाथों में सिर थामकर वह चुप बैठ गई।

वह कुछ सोच रही थीं। जब उन्हें लगता कि कुछ बोलें तो मेरी तरफ देखकर बोलना शुरू कर देतीं और फिर उसी तरह चुप हो जातीं। जब मैंने उनकी यह स्थिति देखी तो मैंने उनसे कहा “क्यों आप अपने मुंह को यों दाब रहीं हैं ? जो कहना चाहती हैं, कह डालिये। आपके दिल पर जो पत्थर रखा है, उसे फेंक दीजिये। उसे फेंके बिना आपके दिल का बोझ हल्का नहीं होगा।”

“हां, यह सच है।” भाभी बोलीं, “मुझे तुमपर पूरा विश्वास है। परिस्थिति के कारण मैं शायद तुम्हारी प्रतारणा करती होऊं, परंतु मुझे पूरा विश्वास है कि तुम विश्वासघात न करोगे।” पुनः एक क्षण के लिए रुककर, धरती की ओर देखती हुई वह बोलीं, “उससे मेरा विवाह तय हो गया था।”

“किससे ?” मैंने पूछा।

मेरे सवाल का सीधा जवाब न देकर उन्होंने अपनी बातें जारी रखीं जैसे अपने-आपसे ही कह रही थीं, “वह विलायती कपड़े पहनता था, इसलिए मैंने उसे अस्वीकार कर दिया था। वह भी मुझे देखने आया था। चाय की ट्रे हाथ में लिये जब मैं उसके सामने गई, तब उसके चरुट की महक से मेरा सर भन्ना उठा। कालेज में सब लोग उसे साहब क्यों कहते थे, यह मैंने स्पष्ट देख लिया। उसने मुझसे पूछा, ‘तुम्हारी हॉबी क्या है ?’ मैंने जवाब दिया था, ‘चरखे पर सूत निकालना।’ इस उत्तर को सुनकर उसका चेहरा टेढ़ा हो गया था। मैं शुद्ध खादी की पोशाक में लिपटी हुई उसे चाय देने गई थी। यह शायद उसे अच्छा न लगा था। जब मैं भीतर चली गई तो उसने मुझे पुनः बुलाया। पर दूसरी बार बाहर जाने से मैंने इनकार कर दिया। अपने चेहरे का कुछ ऐसा भाव बनाकर कि ‘छूटा इस बला से’ वह चला गया। अब उसी मनुष्य को खादी पहने राजनैतिक कैदी की हैसियत से जब कटघरे में खड़ा हुआ देखा, सच कहती हूं, उस समय

मुझे बड़ा धक्का लगा। मन में एक विलक्षण विचार कौंध गया। सच्चा सुनाने के बाद जब उसे जेल ले गये तो मन में आया कि जाकर उसे एक बार देख आऊँ, उससे मिलूँ। दिल में सोचती हुई कि उससे मिलूँ या न मिलूँ, मैं जेल के फाटक तक पहुँच गई। वहाँ के सिपाही मुझे पहचानते थे। उनकी सहायता से मैं उससे मिली।”

“आप उससे मिलीं?” मैंने आश्चर्य-चकित होकर पूछा, “और दादा को पता चल गया तो?”

“शायद पता चल भी जाय!” वह बड़ी बेफिक्री से बोली, “मैं उससे मिली, उसने मेरी ओर देखा। उसने अदालत में ही मुझे पहचान लिया था। मेरी ओर देखकर बड़े सहज भाव से वह बोला, ‘तो आखिर ऐसा उलट-फेर हो गया है। अब क्या है तुम्हारी हाँबी?’ सिर पर अगर कोई लाठी का प्रहार कर देता तो वह भी मुझे इतना महसूस न होता। मेरी घिघ्घी बंध गई। वह बोला, ‘तुम्हींसे मैंने यह स्फूर्ति प्राप्त की। तुम्हारे ही कारण मैंने खादी को अपनाया। जब तुमने मुझे अस्वीकार कर दिया, मुझे फटकार दिया, तब मैं सोचने लगा। सोचते-सोचते मन में रोशनी आई और अब मैं यहाँ हूँ। तुम...तुम कहाँ हो? मेरी आँखें खोल देनेवाली तुम—तुम्हारे ही पति ने अब मुझे जेल भेजा है।’ बिल्कुल अनजाने मैं सिसक उठी। एक शब्द भी न बोलकर मैं उसी तरह लौट पड़ी। जब जेलर ने पूछा कि वह आपके कौन हैं? तब यह कहकर कि ‘मेरे एक दूर के रिश्तेदार हैं,’ मैं वहाँ से चली आई। उस समय से...”

बोलते हुए भाभी का कण्ठ भर आया और वह फूट-फूटकर रोने लगीं।

मैं उनको सांत्वना देता। उन्होंने पहले जो प्रहार किया था, वही उलटकर अब उनपर आ पड़ा था। वह घटना ही कलेजा फाड़कर रोने की थी। शायद उस मनुष्य के स्वर में कोई ताना न रहा हो, कोई चुभन न रही हो, बिल्कुल स्वाभाविक तौर पर ही उसने कहा हो, जान-बूझकर भाभी के दिल पर चोट करने के लिए उसके मुँह से वे उद्गार न निकले हों, फिर भी उनका जो प्रभाव पड़ना था वह पड़कर ही रहा और यह स्वाभाविक भी था। भाभी के स्थान पर यदि मैं होता तो पश्चात्ताप की मार से मैं भी आहत हो जाता। मुझे लगा, जो हुआ सो ठीक ही हुआ।

“ऐसी होती है यह मनुष्य-जाति !” भाभी एकदम मेरी ओर देखकर बोलीं ।

“कैसी ?” मैंने मजाक के स्वर में पूछा ।

“यह मजाक नहीं है, लाला ।” भाभी गम्भीरता से बोलीं, “तुम कल्पना नहीं कर सकते कि मेरे हृदय को कितनी गहरी चोट लगी है ? आज दो-तीन दिन से मैं लगातार अपने जीवन का सिंहावलोकन कर रही हूँ । जैसे-जैसे बीते दिनों की ओर मेरी निगाह जाती है, वैसे-वैसे मेरा मन भड़क उठता है । अपनी लापरवाही से मैंने कितना बड़ा अपराध किया है ? अनजाने ही क्यों न हो, पर मैंने गुनाह किया है और यह महसूस करके पश्चात्ताप से मेरा हृदय जलने लगा है । मेरे कारण उस मनुष्य में परिवर्तन हो गया । मेरा विवाह हो गया है, यह वह जानता था । मेरे विवाह से पहले या बाद में उसमें यह परिवर्तन हुआ, यह मैं नहीं जानती । उससे यह पूछना मैं भूल ही गई । उससे पूछने का मुझे होश ही कहां था ? वह उस जेल में बन्द है । मैं इस जेल में पड़ी हूँ । मेरी बातों का उसके मन पर प्रभाव पड़ा और उसके कारण वह बदल गया ; और मैं यहां ऐसी पड़ी हूँ । उसने आज्ञादी की घोषणा की, वह जेल गया और मैं हूँ कि मैंने जान-बूझकर पराधीनता स्वीकार की, इसलिए मैं इस खुले दरवाजेवाले जेल में आजन्म बंदी होकर पड़ी हूँ । क्या होगा अब मेरा ?”

उनकी बातें समाप्त नहीं हुई थीं कि तभी दादा आ गये । भाभी के चेहरे की ओर निगाह जाते ही वह चौंकर एकदम रुक गये और बोले, “सुलू, क्या हुआ तुम्हें ?”

“आखें पोंछकर भाभी खड़ी हो गई । सीधी तनी हुई कुछ समय तक वह दादा की ओर देख रही थीं । दादा बेचैन हो उठे और मेरी ओर मुड़कर बोले, “क्या हुआ, बालू ?”

“क्या ? कहां ?” मैं अटकते-अटकते बोला, “कोई खास बात नहीं मालूम होती ।”

मेरी दशा दयनीय हो गई थी । उसे देखकर भाभी को मुझपर दया हो आई । दादा को लक्ष्य करके वह बोलीं, “बैठिये, मैं सुनाती हूँ ।”

उन्होंने सारा हाल जिस तरह मुझे सुनाया था, उसी तरह दादा को

भी सुना दिया। परन्तु मुझसे कहते समय उन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया था और मुझ जैसा श्रद्धालु श्रोता पा जाने से सारी बात जिस भावना से कही थी, वह भाषा और भावना दादा से कहते समय न थी। इस प्रसंग के कारण उनके मन पर सचमुच बड़ा प्रभाव पड़ा था। उस प्रभाव का वर्णन उन्होंने मुझसे किया था। परन्तु दादा से कहते समय वह वर्णन भी उन्होंने छोड़ दिया था। दादा को जो बताया गया था, वह उस प्रसंग का एक शुष्क वर्णन था। इसलिए दादा के मन पर उसका कोई असर न पड़ा। वह बोले, “वस इतनी-सी बात है ! उसके लिए यों रोने की क्या जरूरत ? उसने जान-बूझकर ही जेल जाना स्वीकार किया, बल्कि यह कहना चाहिए कि वह जेल जाना चाहता था, इसीलिए उसने वैसा उग्र भाषण दिया था। वह एम० ए० है, पी-एच० डी० है। (पी-एच० डी० शब्द सुनते ही भाभी चौंक पड़ीं) क्या वह यह नहीं समझता था कि उतना उग्र भाषण देने से उसे सजा होगी ? उसने अपना बचाव भी नहीं किया। किसी पागल की तरह चुपचाप जेल चला गया। और तुम रो रही हो ! मत जाया करो कभी ऐसे मुकद्दमे सुनने को।”

इतना कहकर दादा वहां से ऊपर के कमरे में चल दिये। बाहर खड़े हुए दो-चार सिपाही हाथ में कागजों की फाइलें लिये उनके पीछे-पीछे जीना चढ़ने लगे।

“सुन लिया ?” भाभी ने मुझसे कहा, “यह हाल है !”

“ऐसी बात है ?” मैंने कहा, “तो उसके लिए अब दुःख मनाने की क्या जरूरत ? यह तो इसी तरह चलेगा। अब इसका कोई उपाय नहीं।”

“उपाय क्यों नहीं है !” भाभी एकदम होंठ चबाकर बोलीं, “औरतें कोई भेड़ें नहीं हैं, यह उन्हें याद रखना चाहिए।” कहकर वह एकदम भीतर चल दीं। मैं उन्हें देखता रह गया।

रोज नये-नये वक्ता आ रहे थे। बड़े उग्र भाषण देते थे। उनपर मुकद्दमे चलते थे और अन्त में वे जेल जाते थे। न जाने दादा का मुझपर से विश्वास हट गया था कि एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, “बालू, अब मुझे तुम्हारी रिपोर्टों की जरूरत नहीं।” यह सुनकर भाभी हँस पड़ीं। दादा ने उन्हें हँसते देख लिया और वह भाभी से बोले, “भाषणों के नोट लेने के लिए

सरकार ने अब शार्टहैंड जाननेवाला बाबू मासिक वेतन पर रख लिया है। अब अगर बालू अपने नोट पुलिस को देगा तो उसे पुलिस-विभाग से मेहनताना नहीं मिलेगा। फिर व्यर्थ ही उसे यह काम करने को क्यों कहूं? कोई भी काम मुफ्त में कभी नहीं करना चाहिए। मुफ्त में किये गए काम का कोई मूल्य नहीं होता। यह मैं बालू से अभी से कह देना चाहता हूं। लेखन की उसे रुचि है। परन्तु इस लेखन के क्षेत्र में लेखक से मुफ्त में काम करानेवाले लोग बहुत हैं। इसीलिए मैंने बालू को नोट लेने से मना कर दिया है। तुम अपने दिल में योंही कुछ ऊंट-पटांग न समझ बैठना।”

फिर मुझे लक्ष्य करके बोले, “अभी तक तुमने बहुत अच्छा काम किया है, बालू, इसमें ज़रा भी शक नहीं है। पारिश्रमिक मिलने का जब भी मौका आयगा और हमें जरूरत होगी तो हम यह काम तुम्हींसे करावेंगे।”

बाहर जाते-जाते दादा यह कह गये। रास्ते पर जबतक वह निगाह से ओझल न हो गये तबतक भाभी उनकी ओर देखती रहीं। मैं खामोश था। कुछ भी नहीं बोला था। फिर भी भाभी ने पूछा, “तुम्हें क्या लगा, लाला?”

“इसमें लगना क्या है?” मैं बिल्कुल बेफिक्री से बोला, “मैं कौन उनसे कहने गया था कि मुझे यह काम दीजिये।”

“यह मैं जानती हूं, पर अभी जो उन्होंने तुमसे कहा, उसके बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है?”

“मुझे लगता है, दादा को इतना कहने की जरूरत नहीं थी और न उन्हें इतना कहने की आदत ही है। बस!”

“बस क्यों कहते हो? उसमें जाने कितना आ जाता है। ऐसी परिस्थिति में बोलते समय जब मनुष्य गिड़गिड़ाने लगता है तो वह शक की बात हो जाती है।”

“शायद ऐसा हो। पर इसमें बिगड़ा क्या?”

“क्या बिगड़ा!” भाभी बोलीं, “कितना झूठ बोल रहे थे वह! उनका झूठ मुझे साफ-साफ दीख रहा था। जब मैंने उनकी ओर शक-भरी नज़र से देखा, तब उन्होंने वह मामूली-सी बात इतनी बढ़ाकर कही, वरना क्या जरूरत थी उन्हें इतना गिड़गिड़ाकर कहने की? तुमने उनसे कोई शिका-

यत तो की नहीं थी ? फिर कौन जरूरत थी इतना दयनीय चेहरा बनाकर बोलने की ?”

भाभी को क्या जवाब दूं, यह मैं समझ नहीं पा रहा था। कुछ सूझ ही नहीं पड़ता था। गुम्मे स्पष्ट दीख रहा था कि आजकल उनका स्वभाव बदल रहा है। यह बात मेरे मन को चुभ रही थी। इस मौके से लाभ उठाकर मैंने उनसे पूछा, “देखिये भाभी, आपकी निगाह आजकल बिगड़ी हुई है। उस एम० ए०, पी-एच० डी० को सजा क्या मिली, आपका तो दिमाग बिगड़ गया। दादा के व्यवहार की ओर देखने की आपकी दृष्टि टेढ़ी हो गई है।”

“बिल्कुल सच कह रहे हो तुम।” भाभी उत्तलसित होकर बोलीं, “कम-से-कम तुम तो यह जान गये, यही मैं अपना बड़ा भाग्य समझती हूं। तुम्हारी रिपोर्टों के बारे में यह मुझसे शिकायतें किया करते थे। सुना ? इससे पहले मैंने तुमसे यह नहीं कहा था, पर अब कहती हूं। इन्हींने मुझसे कहा था कि ‘बालू की रिपोर्ट हमेशा बनावटी होती है।’ क्या इस समय वह इस बात को भूल गये थे ? उन्हें यह याद नहीं आया ? और अभी मेरे सामने इस तरह साफ-साफ यों झूठ कह गये ? उनके प्रति मेरे हृदय में अब कैसे आदर रहेगा ? ‘पत्नी’ के बारे में तुम पुरुषों की कुछ निश्चित कल्पनाएं होती हैं। तुम पुरुषों की एक रीति-सी है कि पति कुछ भी करे, फिर भी पत्नी को उसके अवगुणों पर परदा डाल देना चाहिए और हम स्त्रियां भी इस रीति को पालती हैं। इसीलिए उन्होंने सफेद झूठ बोलने की तनिक भी परवा न की और न उन्हें उसके लिए कुछ लगा।” तीव्र संताप के कारण आगे उनके मुंह से शब्द नहीं निकल पाये।

“छोड़िये भी,” मैंने कहा, “आप क्यों इधर ध्यान देती हैं ? जैसा चल रहा है, चलने दीजिये।”

“ऐसा तुम भले ही कहते रहो।” भाभी क्रोध से उबलती हुई बोलीं, “मुझसे अब यह बरदाश्त नहीं हो रहा है।”

“इसके लिए इतना बुरा मानने की कोई जरूरत नहीं।” मैंने एक बुजुर्ग का-सा भाव लाकर कहा, “जो है, सो है। यह ऐसा ही चलेगा। इसका अब कोई उपाय नहीं।”

“ऐसी बात सिर्फ पुरुष—तुम आजकल के पुरुष—ही कहें। हम स्त्रियां आजतक जो यह कहती आई कि इसका कोई उपाय नहीं, यही हमने बड़ी गलती की। अब भी अगर ऐसा ही कहती रहे तो तुम पुरुष और अधिक हमारे सिर पर चढ़ने लगोगे।”

इसपर मैं कुछ न बोला। भाभी बहुत नाराज़ हो उठी थीं। पर मुझे विश्वास था कि उनकी नाराज़ी का कोई नतीजा नहीं निकलेगा। सच पूछा जाय तो इस मामले में उन्हें नाराज़ होने का कोई कारण न था। वह मामला मुझे सम्बन्धित था और मुझे उसके लिए कुछ भी नहीं लग रहा था। फिर वह क्यों हैरान हों। मैंने उनसे इसकी कोई शिकायत नहीं की थी, न इस मामले में उनसे कोई निर्णय चाहा था। न उनसे कहा था कि वह इस मामले में मेरे और दादा के बीच में पड़ें।

वह इसलिए चिढ़ उठी थीं कि उन्हें दादा की बात पर शक हो गया था। उन्होंने शायद यह सोचा कि दादा ने जो कहा, वह मेरे लिए नहीं था, बल्कि उनके लिए था। उन्होंने जो शंका की थी, उसपर दादा का वह उत्तर था। वह सबकुछ जानती थीं। इसके बावजूद उनकी शंका का लाभ उठाकर दादा ने मेरी आंखों में धूल भोंकी थी।

उस दिन मैंने उस विषय को आगे नहीं बढ़ने दिया। मुझे साफ नज़र आ रहा था कि भाभी ने आजकल सुख से गृहस्थी चलाने की अपनी पहली वृत्ति छोड़ दी है। इसीलिए हमारी गृहस्थी में, जो आजतक सुख में चल रही थी, बाधा आ रही है। दादा पर इसका कोई असर नहीं पड़ रहा था। इसे वह महसूस नहीं कर रहे थे। उनकी निगाह में घर जैसा पहले चल रहा था वैसा अब भी चल रहा था। भाभी उनसे कोई शिकायत नहीं करती थीं। उनसे कुछ पूछती भी न थीं और न उनसे किसी उत्तर की ही अपेक्षा करती थीं। दादा एक तरह से घर के ‘मेहमान’ थे। घर में क्या चल रहा है, इसकी उन्हें खबर न थी। हमारी इस गृहस्थी में मैं ही एक अनोखा था। कुछ पुरुषार्थ कर दिखाने की योग्यता आ जाने पर भी घर में बेकार बैठा था। इसीलिए मुझे यह अखर रहा था। परन्तु दादा को कुछ भी महसूस नहीं हो रहा है, इसे पक्का मानकर मैं चुप बैठा।

भाभी ज्वालामुखी पहाड़ की तरह धधक रही थीं। मुझे पग-पग पर

लग रहा था कि आग कभी-न-कभी भड़क उठेगी। अन्त में यही हुआ।

एक दिन भाभी ने कांग्रेसवालों की एक सभा में जाकर बड़ा उग्र भाषण दे डाला। पुलिस का आदमी हमेशा की तरह भाषणों की रिपोर्ट लेने सभा में आया था। उस बेचारे पर मुझे बड़ा रहम आया। सभा के समाप्त होते ही वह मेरे पास आया। बोला, “बताइये अब मैं क्या करूँ, बालूजी? भाभी ने बड़ा तेज़ भाषण दिया है। सब लोग उन्हें जानते हैं। यदि मैं बनावटी रिपोर्ट दूँ तो कोई भी जाकर चुगली कर देगा और अन्त में मुझे अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा। अब तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ?”

“मैं क्या बताऊँ?” मैंने कहा, “मैं आजकल रिपोर्ट का काम नहीं कर रहा हूँ। मैं अगर तुम्हारी जगह पर होता तो सच्ची रिपोर्ट देकर छुट्टी पा लेता। दादा आप देख लेते।” ऐसा कहकर मैं वहाँ से चला आया।

पुलिस का वह आदमी मुझसे मिलने की बहुत कोशिश कर रहा था, पर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ मैं अपने घर आ पहुँचा। अभी तक भाभी घर नहीं लौटी थीं। भाषण समाप्त होने पर बहुत-से लोगों ने उन्हें घेर लिया था। मैंने सोचा, उन लोगों से बातें करने के कारण वह शायद पीछे रह गई होंगी।

मेरा मन उद्विग्न हो उठा था। भाभी के भाषण का पता दादा को लगेगा, इसमें कोई शक ही नहीं था। पर इसका नतीजा क्या होगा, यही चिन्ता मुझे सता रही थी।

बहुत देर तक जब भाभी घर न लौटीं तो उन्हें खोजने के लिए मैं घर से बाहर निकल पड़ा। सभा-स्थल पर देखा तो सब लोग चले गये थे। बम्बई से आये हुए प्रमुख वक्ता जहाँ उतरे थे, वहाँ मैं गया। वह भी अभी तक अपने घर नहीं पहुँचे थे।

घर लौटने के लिए जब वहाँ से निकला तो रास्ते में लोग मुझे रोक लेते और भाभी के बारे में पूछताछ करते। उन्हें उड़ता हुआ उत्तर देते-देते मैं बिल्कुल परेशान हो उठा था। हर आदमी भाभी की प्रशंसा कर रहा था। हर कांग्रेसी यह कहकर कि यह ढंका हुआ हीरा हमारे शहर में होते हुए भी हमें पता न चला, आश्चर्य के उद्गार प्रकट कर रहा था। पर यह बात कोई भी ध्यान में न ले रहा था कि वह हीरा आज तक एक सरकारी

अफसर के घर ढंका पड़ा था, बल्कि जान-बूझकर ही वे लोग इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहे थे।

घर पहुंचा तो काफी रात हो चुकी थी। इस भय से कि देर हो जाने के कारण भाभी नाराज होंगी, मैं दबे पांव घर में घुस रहा था। इसी समय मेरे कानों में दादा और भाभी की आवाज पड़ी। वे आपस में कुछ बातें कर रहे थे। मैं वहीं ठिठक गया। मेरा हृदय धड़क रहा था। डांट-डपट करने और शोरगुल मचाने के दादा आदी न थे। इसलिए यह समझने का कोई कारण नहीं था कि वे दोनों लड़ रहे होंगे। जो बातें मुझे बाहर सुनाई पड़ीं, उनसे मुझे यह दिखाई दिया कि मामला चरम सीमा पर नहीं पहुंचा है।

भीतर जाकर देखा तो दादा और भाभी मजे से बातें कर रहे थे। बातें भाभी के भाषण के बारे में ही हो रही थीं। यह देखकर कि दोनों बड़ी शान्ति से बातें कर रहे हैं, मैं दंग रह गया।

मुझे देखते ही दादा बोले, “क्यों बालू, कैसा रहा तुम्हारी भाभी का आज का भाषण? तुमने अपने पत्र के लिए उनके नोट लिये ही होंगे।”

“हां, मामूली नोट ले लिये हैं।” मैंने अटकते-अटकते कहा, “भाभी आज बहुत अच्छा बोलीं।”

“आज मुझसे प्रायः सभी यही कह रहे थे।” दादा बोले, “वह सब तुम्हारी भाभी की प्रशंसा कर रहे थे और मुझे बधाई दे रहे थे, जैसे भाषण मैंने ही दिया हो!”

भाभी के भाषण के सम्बन्ध में दादा का निजी विचार क्या था और उन्होंने उस बारे में क्या नीति अपनाई थी, इसका मैं कोई अन्दाज नहीं कर पा रहा था। मैं कुछ हिचकिचा-सा रहा था तभी दादा बोले, “देखू तुम्हारे नोट!”

“उनसे आपको कुछ पता नहीं चलेगा।” मैंने कहा, “मैं अपने नोट ‘मोड़ी’ लिपि में लेता हूं और बड़ी जल्दी-जल्दी आप उन्हें नहीं समझ सकेंगे। भोजन के बाद मैं उन्हें ठीक से लिखकर आपको दिखा दूंगा।” इतना कहकर मैं वहां से चल दिया।

इस बीच भाभी कुछ नहीं बोली। मेरे जाने के बाद वे दोनों फिर बातें

करने लगे। परंतु कान लगाकर चोरी से उनकी बातें सुनने की मैंने कोशिश नहीं की।

उस भाषण के कारण उस दिन के प्रमुख वक्ता पर मुकद्दमा चलाया गया। पूरे मुकद्दमे में भाभी के भाषण का कोई जिक्र नहीं आया। उस वक्ता को सजा हो गई और उससे भी अधिक उग्र भाषण देनेवाली भाभी सही-सलामत छूट गई। दादा ने क्या किया, वही जानें।

भाभी का अंदाज़ था कि इस मुकद्दमे में वह भी फसेंगी। पर जब यह न हुआ तो वह बड़ी हो व्यग्र उठी। इस मामले में दादा उनसे किस तरह पेश आये, इसका पता लगाना मेरे लिए संभव न था। मुकद्दमे में उनका नाम क्या दादा की इच्छा से छोड़ दिया गया था या उनकी सम्मति से, इसका भी मुझे पता नहीं लग पाया।

मुकद्दमे के दौरान में मुझे और भाभी को कार्रवाही का कोई पता न था। जब उस वक्ता को सजा होने का समाचार पत्रों में छपा, तब कहीं हमें मालूम हुआ कि उसपर मुकद्दमा चला और उसे सज़ा हो गई। बात यह थी कि वह मुकद्दमा जिस मजिस्ट्रेट के पास था, वह दौरे पर था और उसने उसकी पेशी किसी गांव में रखी थी, जो शहर से काफी दूर था। भाभी ने मुकद्दमे का फैसला पढ़ा तो बोलीं, “बड़ा भाग्यशाली है वह ! कुछ लोगों का दुर्भाग्य ही ऐसा होता है कि वे खाई में कूदने जाते हैं तो वहां उनके लिए मखमल का गलीचा बिछा होता है। यह सौभाग्य मेरे भाग्य में नहीं था।”

इस मुकद्दमे के बारे में दादा घर में एक शब्द भी नहीं बोले।

इस प्रकार भाभी की कोशिश व्यर्थ चली गई। मैंने जब उनसे कहा तो वह बोलीं, “इतने में कुछ नहीं हुआ। अभी समय है। और मौके आयेंगे।”

: ५ :

अक्तूबर की छुट्टियों में उषा आई। आने की कोई भी सूचना उसने भाभी को पहले नहीं दी थी। परंतु दादा के लिए उसका यह आगमन अनपेक्षित न था, ऐसा मुझे शक हुआ। उसके आगमन पर दादा ने कोई आश्चर्य प्रकट नहीं किया।

मुझे लगा कि उसके आने से हमारे घर का वातावरण कहीं फिर से तो नहीं बिगड़ जायगा। अब मैं दैनिक पत्र का केवल संवाददाता नहीं था, बल्कि साहित्य के प्रांगण में भी मैंने चरण रख दिये थे। बीच-बीच में मेरी एकाध कहानी, प्रचलित विषयों पर एक-दो लेख प्रमुख साप्ताहिकों में छपने लगे थे। लोग मुझे साहित्यिक कहने लगे थे। यदि इतना कह दूँ कि शहर के साहित्य-संघ का मैं उप-सभापति निर्वाचित हो गया था तो मेरा दर्जा अब कितना बढ़ गया था, इसकी पाठकों को कल्पना हो जायगी।

उस दिन जब मैं साहित्य-संघ की सभा से घर आया तो उषा बोली, “देखिये बलवंतराव, (अब उसकी दृष्टि में मैं ‘बलवंतराव’ हो गया था, ‘बालू’ नहीं रहा था) आप तो कहानियाँ ही लिखा करें। अन्य विषयों में क्यों बेकार दखल देते हैं। राजनीति मामूली विषय नहीं है। किसी दैनिक पत्र के संवाददाता बन जाने से ही कोई राजनीति का पंडित नहीं हो जाता।”

“इसके लिए मैं क्या करूँ?” मैंने कहा, “लिखने की सनक आती है तो कुछ भी लिख देता हूँ। एक बार मैंने सहज ही कुछ लिखा और एक पत्र को भेज दिया। वह छप गया। पुनः एक लेख भेजा, वह भी छप गया। फिर मुझे लिखने का चस्का लग गया। अब जो भी लिखकर भेजता हूँ, वह तुरंत छप जाता है। फिर मैं क्यों न लिखूँ?”

“यह तो ठीक है।” उषा बोली, “सम्पादकों की बात छोड़ो। उन्हें तो जैसे-तैसे अपने कालम भरने पड़ते हैं। पर कम-मे-कम हमें खुद तो यह देख लेना चाहिए कि हम जो लिखते हैं, उसके लिए कोई आधार भी है या नहीं। परसों आपने १९३५ के संविधान के बारे में लिखा है...”

“क्यों, क्या कहीं भूल कर दी है मैंने उसमें?”

“नहीं, आपने भूल नहीं की है, पर आपकी राय गलत है। राजशासन का ठेका किसीने कांग्रेस को ही नहीं दे रखा है! कांग्रेस पहले से ही इस संविधान का विरोध कर रही है। इसलिए अब यह कहने में क्या तुक है कि कांग्रेस शासन अपने हाथ में ले ले?,,

“फिर संविधान द्वारा दिया गया अधिकार-ग्रहण कौन करे? क्या नरम दलवाले? क्या लोगों का विश्वास है उनपर? क्या तुम समाजवादी भी उनपर विश्वास कर लोगे?”

“हम लोगों का तो किसीपर भी विश्वास नहीं और कांग्रेस पर तो बिल्कुल ही नहीं है। हम तो किसान और मजदूरों का राज्य चाहते हैं।”

“तो उसके मिलने तक क्या हाथ-पर-हाथ धरे चुपचाप बैठे रहोगे तुम लोग ?”

“हर्गिज नहीं। जबतक पूर्ण क्रान्ति नहीं हो जायगी, तबतक हम लगा-तार आन्दोलन करते रहेंगे। वर्गकलह का तत्व सारी जनता को समझा देंगे। दो वर्गों का जो यह संघर्ष है, उसका पूर्ण ज्ञान हुए बिना व्यावहारिक राजनीति आरंभ नहीं की जा सकती।”

“पर आज यह संविधान हमारे हाथ में आ गया है, उसका क्या किया जाय ? किसी-न-किसी पार्टी को उसे स्वीकार करना ही होगा। उस संविधान के अनुसार मुल्क का शासन कौन-सी पार्टी करे, यही आज का प्रमुख प्रश्न है।”

“ऐसे संविधान की हमें जरूरत नहीं। हम इसे पहले ही ठुकरा चुके हैं। यदि इस संविधान के अनुसार शासन चलाया जाय तो उसमें श्रमजीवियों का कोई कल्याण नहीं होगा।

“श्रमजीवी का क्या अर्थ ?” भाभी ने बीच ही में पूछा।

“अब तुमसे क्या कहा जाय, जीजी ?” उषा बोली, “और तुम कहती हो कि मराठी विषय लेकर तुमने बी० ए० पास किया है ?”

“महानुभाव के साहित्य से लेकर हरिभाऊ और वामन राव जोशी के समय तक का सारा मराठी-साहित्य मैंने पढ़ा है। पर उसमें यह शब्द मुझे कभी नहीं मिला।”

“श्रमजीवी का मतलब है ‘वर्कर’।” उषा बोली।

“कैसा वर्कर ?” भाभी ने पूछा, “सफेदपोश वर्ग से, पूंजीपतियों से तुम्हारा विरोध है तो क्या इस वर्ग के लोग कोई श्रम नहीं करते ? दफ्तरों के क्लर्क क्या मुफ्तखोर होते हैं ? पूंजीपति व्यापारियों के घर क्या बिना उनके हाथ-पांव हिलाये ही दौलत की वर्षा होती रहती है ? प्रत्येक व्यक्ति, फिर वह क्लर्क हो, पुरोहित हो, सेठ हो, उद्योगपति हो, अपनी उप-जीविका चलाने के लिए कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता है। अपनी जिंदगी जीने के लिए, अपनेको जीवित रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को

श्रम करता ही पड़ता है। इसलिए जिन लोगों से तुम्हारा मतलब है, उन्हें यदि मजदूर कह दें तो क्या बिगड़ जाता है ? 'मजदूर' शब्द के पीछे जो भावना है, वह 'श्रमजीवी' शब्द के पीछे नहीं है। उनके लिए श्रमजीवी जैसे प्रतिष्ठित शब्द का प्रचार करना अच्छी वृत्ति का द्योतक नहीं है।”

“तुम्हारे दिमाग में ये बातें नहीं आयेंगी, जीजी।” उषा चिढ़कर बोली, “नये तत्वों को लेकर जो नये आन्दोलन शुरू हुए हैं और उनसे जो नया ज्ञान प्राप्त हुआ है, उनके लिए नई परिभाषाएं होनी चाहिए। पहले जमाने के प्रचलित पुराने शब्दों के कारण प्राचीनता का जो ज्ञान होता है, उसकी अब हमें जरूरत नहीं।”

“यह निरा पागलपन है।” भाभी बोलीं, “अपनी थोथी प्रतिष्ठा की धाक जमाने के लिए तुम लोगों द्वारा रचे गए ये केवल ढोंग हैं। पुराने शब्दों में निहित पुरानी भावनाएं कभी नष्ट नहीं होंगी। मजदूर को मजदूर कहने में तुम्हें जो हल्कापन लगता है, वही तुम्हारी सफेदपोशी है ! नस-नस में समाई हुई यह सफेदपोशी प्रत्यक्ष शारीरिक परिश्रम किये बिना नष्ट नहीं होगी। सफेदपोशों की दृष्टि से तुम मजदूरों की ओर देखते हो और इसलिए तुम उन्हें श्रमजीवी कहते हो। मजदूर को मजदूर कहलवाने में कोई हल्कापन नहीं मालूम होता। जबरदस्ती अपनी यह सफेदपोशी क्यों तुम लोग बेचारे मजदूरों पर व्यर्थ लाद रहे हो ?”

“एक पुलिस कर्मचारी की बीबी दुनिया की राजनीति के मर्म को नहीं समझ सकती।” उषा चिढ़कर बोली, “तुम क्यों व्यर्थ हमारी चर्चा में दखल दे रही हो ? मैं बातें कर रही हूं बलवंतराव से।

“अरे वाह ! लाला 'बालू' से अब 'बलवंतराव' हो गये ! यह भी तुम्हारी सफेदपोशी वृत्ति है !” भाभी के स्वर में तीखा व्यंग था।

उषा चिढ़ उठी और एक शब्द भी बिना बोले गुस्से से पैर पटकती हुई वहां से चल दी।

“देखा कैसा तमाशा है, लाला !” भाभी मुभसे बोलीं, “किसी भी पार्टी के प्रति अभिमान हो जाने से मनुष्य इस तरह ज़िद्दी बन जाता है। फिर दलीले उसे नहीं जंचती।”

यह देखकर कि मैं कुछ नहीं बोल रहा हूं, भाभी पुनः बोलीं, “हां

स्वाभाविक ही तो है। उषा को यदि कोई नाम धरे तो तुम उसे कैसे बरदाश्त कर सकते हो ?”

“देखिये भाभी जी,” मैंने शान्ति से कहा, “व्यर्थ ही आप कोई अन्दाज न करें। मैं अपनी योग्यता से बखूबी परिचित हूं। मेरी क्या योग्यता है, इसे मेरी अपेक्षा उषा ही अधिक अच्छी तरह से जानती है। मैं इतना बेव-कूफ नहीं, जो आसमान के चांद को पकड़ने की चाह रखूं !

“अजी, यह तो तुम यों ही कह रहे हो।” भाभी बोलीं, “मुझे बनाने की कोशिश मत करो। उषा जिस दिन आई थी, उस दिन तुम्हारा चेहरा कितना खिल उठा था ! क्या तुम सोचते हो कि वह मैंने नहीं देखा था ?”

“खिला होगा।” मैंने कहा, “पर आप यह नहीं देख रही हैं, भाभी कि चेहरा खिलने के अनेक कारण होते हैं। जिस दिन उषा आई...”

“क्या अभी तक मेरी ही बातें हो रही हैं ?”—उषा पुनः भीतर आकर बोली, ‘देखो सुलू जीजी, मैं यहां आराम करने के लिए आई हूं। एक तो पढ़ाई के मारे पहले से ही थकी हुई हूं, ऊपर से हमारे स्वाध्याय-मंडल के अलावा एक-न-एक समाज-सेवा का काम भी लगा ही रहता है हमारे पीछे’ अभी से उसका अभ्यास हो जाना चाहिए न ? इस सब जंजाल से ऊबकर मैं यहां आई हूं। मैं चाहती हूं कि मगजपच्ची से मुझे कम-से-कम यहां तो छुटकारा मिले ! हमारे स्वाध्याय-मंडल में भी वाद-विवाद होते हैं, पर वहां तुम्हारी तरह कोई विरोध करनेवाला नहीं होता। विवाद होते हैं हमारे तत्वज्ञान के बारे में। अगर कभी कोई विरोध हुआ भी तो वह होता है उस तत्वज्ञान के सूक्ष्म विवरणों के बारे में। ऐसे विवाद मैं बरदाश्त कर सकती हूं। पर विरोध मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं और विरोध करनेवाले के मुंह लगने का मुझे अभ्यास नहीं। समझी ?”

“समझी !” भाभी बोलीं, “खूब अच्छी तरह समझ गई कि यह तुम्हारा खेल है, अध्ययन नहीं। जो अध्ययनशील होते हैं, उन्हें अपने अध्ययन की परीक्षा लेने के लिए विरोध का उत्तर देने की रुचि होती है। अपने मत कितने दृढ़ हैं, यह जानने के लिए विरोध की जरूरत है। विरोधों के कारण ही बुद्धि का विकास होता है। कम-से-कम तुम जैसे लोग जो अपनेको विरोध-विकासवादी कहते हैं, अगर विरोध से डरने लगे, तो काम

नहीं चल सकता। नहीं तो, हमारे यह लाला हैं। तुम कथा पढ़ो और यह किसी बुढ़िया की तरह श्रद्धा से सुनते रहेंगे।”

“हां, यह सच है।” उषा बोली, “ऐसे ही लोग मुझे पसन्द हैं।”

“लो, अब सुन लो, लालाजी !” ऐसा कहकर भाभी ने मुझे आंख से इशारा किया। मैं गम्भीर होकर बैठा रहा, मानो भाभी के संकेत को मैंने समझा ही न हो।

“हां-हां ! मैं फिर कहती हूं,” उषा बोली, “मुझे ऐसे ही लोग अच्छे लगते हैं। ऐसे ही आदमियों का साथ मैं पसन्द करती हूं। मैं भावुक श्रोता चाहती हूं। उपदेशामृत की खुराक पिलानेवाले तुम जैसे गुरुओं की मुझे जरूरत नहीं। समझी ?”

“उषा, कितनी बदल गई हो तुम ?” भाभी वात्सल्यपूर्ण स्वर में बोलीं, “पहले तुम्हारा स्वभाव कितना अच्छा था। तुम कितनी अध्ययनशील थीं। पढ़ने में तुम्हारी रुचि देखकर मैं आनन्द से फूली नहीं समाती थी। उस समय जो भी पुस्तकें तुम्हें मिल जातीं, उन सबको तुम पढ़ डालती थीं। अब मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारा पठन-पाठन एकांगी हो गया है। आजकल तुम कुछ पढ़ती भी हो या सिर्फ मुंह ही चलाती रहती हो, यही मैं नहीं समझ पा रही हूं।”

“देखो जीजी,” उषा बोली, “मैं जानती हूं कि तुम मेरी बड़ी बहन हो। जब तुम्हारा विवाह नहीं हुआ था, तब तुम मुझपर अपने बड़प्पन की शान जमाती थीं। उसे बरदाश्त कर लेने का उस समय मुझे अभ्यास था। तुम्हारा विवाह हो जाने के बाद मेरा वह अभ्यास छूट गया। उस घर में अब मैं ही बड़ी हूं। समझी ? इसलिए अब मैं अपने पर तुम्हारा वह पहले का शासन हर्गिज नहीं चलने दूंगी।”

मैं खड़ा हो गया और दोनों हाथ जोड़कर बोला, “देवियो, अब कृपा करो। यहां महाभारत न मचाओ। तुम्हारे भगड़े के कारण मुझ गरीब का दम घुटने लगा है। यदि आप लोगों को इसी तरह रोज लड़ना है तो मुझसे साफ कह दो, जिससे वायु-परिवर्तन के लिए मैं इसी समय कहीं चला जाऊं। आप लोगों से साफ कह देना चाहता हूं कि लड़ने की मुझे आदत नहीं। लड़ाई के कारण मेरा हृदय व्याकुल हो उठता है। कहीं लड़ाई

देखता हूँ तो मेरा सारा बदन थरथर कांपने लगता है। मैं सिर्फ श्रोता हूँ, यह सच है; परन्तु शान्ति-काल का श्रोता हूँ, इतना ध्यान में रखो और मुझ गरीब को बख़्शो।”

मेरा यह अभिनय देखकर भाभी हँस पड़ीं। वह लगातार हँस रही थीं। पर उषा गम्भीर बनी बैठी थी। मैं उसकी ओर मुड़कर बोला, “देखो उषाजी, मैं एक जिज्ञासु व्यक्ति हूँ। देहात में छोटे से बड़ा हुआ हूँ। इसलिए तुम्हारी बहुत-सी बातें मेरे दिमाग में नहीं समातीं। मुझे शहर में रहना है। सारी जिन्दगी यहीं काटनी है। मुझे इतना ज्ञान हासिल कर लेना है, जितना मनुष्य को शहर में रहने के लिए आवश्यक है। तुम जो भी कहना चाहो, मुझसे कहो और भाभी, (भाभी की ओर मुड़कर, मैंने हाथ जोड़कर कहा) जिस समय उषाजी अपने ज्ञान का लाभ मुझे प्रदान कर रही हों, उस समय कृपाकर आप वहाँ न बैठी रहा करें।”

बैठक यहीं समाप्त हो गई।

उस दिन से भाभी सचमुच मेरे रास्ते में नहीं आती थीं। मुझ जैसा श्रद्धालु श्रोता मिल जाने के कारण उषा को बड़ा जोश आ रहा था। वह अपने साथ जो पुस्तकें लाई थी, उनमें से बहुत-सी वह मुझे भी पढ़ने को दिया करती थी। मैं उन्हें जल्दी-जल्दी पढ़ डाला करता और पढ़कर लौटाता तो उषा मेरी परीक्षा लेती।

दादा को आजकल बहुत काम था। हमारी बैठक में आकर बैठने के लिए उन्हें शायद ही कभी समय मिलता। भाभी ने एक तरह से हम सब का जैसे बहिष्कार-सा ही कर दिया था। दादा की सुख-सुविधा की ओर भी वह शायद ही कभी ध्यान देतीं। यह काम अब उषा करने लगी थी। दादा के खाना खाने से लेकर उनके जूतों पर पालिश हुई है या नहीं, यह देखने तक हर काम पर उषा की नज़र रहती।

भाभी इन कामों की ओर ज़रा भी ध्यान न देतीं। वह अपने कमरे में घंटों अकेली ही आरामकुर्सी पर पड़ी रहतीं। यह देखकर, मैं जो नाटक कर रहा था, उससे मैं स्वयं ही ऊब उठा।

एक दिन मैंने भाभी से कहा, “आपको आजकल क्या हो गया है, भाभी? कोई काम न करके यों चुपचाप क्यों पड़ी रहती हैं आप?” उषा

उस दिन कहीं बाहर चली गई थी। इसीलिए मैं भाभी से बात कर सका था।

“तो क्या करूँ?” भाभी बोलीं, “तुम लोगों को मैं अच्छी नहीं लगती। तुम्हारे दादा को काम से फुरसत नहीं मिलती। अगर पढ़ना चाहूँ तो पुस्तकें नहीं हैं। बुआजी खाना पकाती हैं। दूसरे कामों के लिए नौकर हैं। सिपाही हैं। मेरे लिए काम ही क्या है? मुझे क्या करना चाहिए, तुम्हीं बताओ?”

“कुछ भी कीजिये। पर यों मुहर्रमी सूरत बनाये न बैठी रहा करें।” मैंने कहा, “मुझसे यह देखा नहीं जाता। कम-से-कम, बात ही किया कीजिये।”

“बात किससे करूँ?” भाभी कुछ नाराजी से बोलीं, “उषा ने मुझसे साफ कह ही दिया है। तुम हमेशा उषा से बातें करते रहते हो। ‘वह’ सिर्फ खाने के लिए घर आ जाते हैं, यही मेरे बड़े भाग्य हैं। बातें करूँ किससे? क्या नौकरों या सिपाहियों से?”

इतना कहकर भाभी हँस पड़ीं। उनकी वह हँसी बड़ी दयनीय थी।

मैंने कहा, “तो एक-दो कुत्ते या बिल्लियाँ पाल लीजिये। उनसे ही आपका मन बहल जाया करेगा।”

“जहां मनुष्य ही मुझे बरदाश्त नहीं करते, वहां कुत्ते-बिल्ली पालकर भी क्या होगा?” भाभी बोलीं, “दिल खोलकर बातें करने के लिए एक तुम थे। सो तुम्हारी गाड़ी भी अब दूसरी पटरी पर चली गई है। क्यों मेरे दुःखों पर दाग दे रहे हो?” इतना कहते-कहते उनकी आंखों में आंसू भर आये। मैं भी द्रवित हो गया।

क्या भाभी उषा से जल रही थीं? मैं उषा को खिला रहा था, जान-बूझकर खिला रहा था। पिछला अनुभव मेरे सामने था। दादा से जहां-तक हो सके, उसे दूर रखने का ही मेरा उद्देश्य था। भाभी को यह समझना चाहिए था। यह सच है, आजकल दादा को काम की अधिकता के कारण फुरसत बहुत कम मिलती थी, पर जिस थोड़े समय के लिए भी वह घर आते, उस समय उषा उनकी सेवा में हाज़िर रहती, उनके काम बड़ी तत्परता से करती और उनकी खूब चापलूसी करती। इसका प्रभाव दादा

पर पड़ता हुआ मैं देख रहा था। इसलिए मैं उषा को इस तरह अपने में ही उलझाये रख रहा था। भाभी की उससे पटती न थी। यदि मैं उसे उलझाये न रखता तो वह भाभी से रोज़ लड़ा करती। इस समय ये सब विचार मेरे मन में आये, परंतु मेरे सामने समस्या यह थी कि इन विचारों को भाभी के सामने रखूँ किस तरह? मेरे मन को यह शंका छू गई कि उषा से जलन होने के कारण ही भाभी के विचार में यह नहीं आ रहा है कि मैं आजकल इस तरह का बर्ताव क्यों करने लगा हूँ।

इन बातों को कहना संभव नहीं था, इष्ट भी न था। जबतक वह स्वयं ही इस बात को महसूस न कर लें तबतक उनसे कुछ भी न कहने का निश्चय करके मैंने कहा, “उषा थोड़े दिनों के लिए यहां आई है। अब जल्दी ही वह चली जायगी। वह एकाध विषय निकालकर उसपर बोलती रहती है। वह उसका प्रिय विषय होता है, पर आपको वह न अच्छा लगता है, न जंचता है। हाथ में चाकू लेना चाह रहे ज़िंदी बालक को चकमा देने के लिए जिस तरह झुनझुना उसके हाथ में दे देते हैं, उसी तरह मैं उषा के साथ कर रहा हूँ। इसके लिए आप मुझे क्षमा कर दें। इससे अधिक स्पष्ट बोलने की मुझे हिम्मत नहीं होती।”

भाभी एकदम रो पड़ीं। किन शब्दों में मैं उन्हें सांत्वना दूं, यह मैं नहीं समझ पा रहा था। भीगी पलकों से मैं सिर्फ उनकी ओर देखता रहा।

थोड़ा समय बीता। आंखें पोंछकर भाभी बोलीं, “भरे घर में किसी-को अगर अकेला रहना पड़े तो यह बहुत बुरा है। ऐसा लगने लगता है कि घर में हम एक रद्दी सामान की तरह हैं, हमारी किसीको भी जरूरत नहीं और फिर हम परेशान हो जाते हैं। इस घर में अब मेरे लिए बहुत ही घुटन हो गई है। अब जब एकाध सभा होगी तब ऐसा तेज़ भाषण दूंगी कि...”

“नहीं-नहीं, भाभी,” मैंने एकदम कहा, “ऐसी नासमझी की बात मन में मत आने दीजिये। एक बार हो चुका जैसे-तैसे। आप उससे निपट गईं। अगर दुबारा वैसा कुछ कर बैठोगी तो व्यर्थ की परेशानी में पड़ जाओगी। मुझसे कोई कह रहा था कि आपके भाषण से दादा पर भी थोड़ी आंच आ गई है। यह सच है या झूठ मैं नहीं कह सकता। पर यह

जरूर कह सकता हूँ कि अगर आप फिर तेज भाषण देंगी तो निश्चित ही आपको जेल की हवा खानी पड़ेगी। दादा स्वयं आपको जेल भेजेंगे।

“मैं भी तो यही चाहती हूँ।” कहकर भाभी ने आंखें बंद कर लीं, जैसे भविष्य के उस सारे दृश्य को वह अपनी आंखों के सामने लाकर देख रही हों!

“यही मैं नहीं चाहता।” मैंने कहा, “दुनिया भर में बदनामी हो जायगी।”

“कायर कहीं के!” भाभी चिढ़कर बोली, “आखिर उन्हींके जो भाई हो! और अपनेको लेखक कहते हो? दुनिया को राह दिखानेवाले बनना चाहते हो। नौकरी के अन्न पर पले आदमी की बुद्धि इसी प्रकार की होगी।”

“और आप?” मैंने कहा, “आप भी तो वही अन्न खा रही हैं।”

भाभी स्वर में तिरस्कार भरकर बोलीं, “हां, इसीसे तो इतनी मुर्दा हो गई हूं, जो आज इस पिंजड़े में बंद होकर पड़ी हूं, वरना सारी दुनिया के चक्कर लगाती रहती। उषा से मैं इसीलिए ईर्ष्या करती हूं। उसके मत मुझे नहीं जंचते, यह सच है; परंतु वह कुछ-न-कुछ कर तो रही है। विद्यार्थी-अवस्था में होते हुए भी कुछ कर रही है। धर्म का अन्न खाती हुई किसी गड़रिया के खिरके में भेड़ होकर नहीं रह रही है।” आवेश में भाभी का धीरज छूट गया और उनके शब्द लड़खड़ाने लगे। क्षण-भर के लिए स्तब्ध रहकर एक बड़ी-सी सिसकी निगलकर वह बोलीं, “मेरी ही शिक्षा-दीक्षा में वह तैयार हुई है। उसने झूठ नहीं कहा था। मैं उसपर बड़प्पन की शान जमाती थी। मैं उसे अपने साथ आन्दोलनों में सर्वत्र ले जाती थी। सभाएं, जलूस, पिकेटींग, इन सारे कार्य-क्रमों में वह लगातार मेरे साथ रही है। उसीका असर पड़ा है उसपर। यह असर कभी मिटेगा नहीं। जिंदगी-भर उसे यह महसूस होता रहेगा कि किस तरह मैंने उसपर अपने बड़प्पन का अधिकार चलाया। मुझसे एक भूल हो गई। मैंने उसे स्वतंत्र रूप से कोई भी काम करने नहीं दिया था, बल्कि उसका हाथ पकड़कर अपनी मर्जी के मुताबिक उससे सब काम कराये। यही अब उसकी आदत पड़ गई है। उसकी इस आदत के कारण ही मुझे लगता है कि वह अपने से

किसी बड़े-चढ़े आदमी के वशीभूत हो गई है, जो उसका हाथ पकड़कर उसे चला रहा है। मेरी ही गलती अब मुझे पीड़ा दे रही है।”

हम बातें कर रहे थे, उसी समय उषा आ गई और उसके पीछे-पीछे ही दादा भी आये। वह दोनों बाहर से साथ-साथ आये थे, या दोनों अलग-अलग दिशाओं से आकर दरवाजे के पास साथ हो गये थे, यह कहना कठिन था। परंतु मुझे कुछ ऐसा लगा कि दोनों कहीं से साथ-साथ आये थे और अंदर आने में थोड़ा अंतर उन्होंने जानबूझकर डाल दिया। जब दादा ने पूछा, “उषा, तुम कहां गई थीं,” तब भाभी की तरह मुझे भी लगा कि यह दादा का ढोंग है।

दादा ने ऐसा क्यों किया? अगर दोनों साथ-साथ आये थे तो इस बात को छिपाकर रखने का क्या कारण था? उषा घर की ही लड़की थी। रास्ते में कहीं अगर वह उन्हें मिल गई और दोनों घर एक साथ आ गये तो इसमें क्या हर्ज था। वह किसी पराये मनुष्य के साथ आती तो बात दूसरी थी। कुल मिलाकर दादा का उषा से वह सवाल पूछना मुझे अच्छा नहीं लगा।

उषा बिना कुछ जवाब दिये चुपचाप भीतर चल दी, दादा एक कुर्सी पर बैठ जूते के फीते खोलने लगे। फीते खोलते-खोलते बोले, “क्या तुम्हें पता चला, सुलू? आज एक खादीधारी आदमी हमारे शहर में आया है। कल से शायद उसके भाषण शुरू होंगे। उसके बारे में हमारे पास जो खुफिया रिपोर्ट आई है, वह अच्छी नहीं है। चूंकि वह खादीधारी है, इसलिए तुम उस सभा में जाओगी, ऐसा मुझे लगा और इसीलिए पहले से ही तुम्हें यह सूचना दे रहा हूं।” इतना कहकर दादा भीतर के कमरे में चल दिये।

दादा के जाने पर भाभी ने अर्थ-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैं कुछ नहीं बोला, पर भाभी का मनोभाव मैं ताड़ गया।

दादा के जाने पर उषा आई। मैंने पूछा, “क्यों उषाजी आज कहां धावा बोला था तुमने?”

“कहीं भी!” उषा ने झुंझलाकर कहा, “तुम्हें इससे क्या लेना-देना? मैं कोई तुम्हारी बीवी नहीं हूं!”

“पर दादा ने भी तो तुमसे यही पूछा था!” मैंने कहा।

“और मैंने उन्हें भी कोई उत्तर नहीं दिया था ।” उषा बोली ।

“हां-हां,” मैंने कहा, “यह तो मेरे ध्यान ही में नहीं आया । भाभी अगर कहीं बाहर जाती हैं तो दादा उनसे कभी नहीं पूछते कि वह कहां गई थीं । अगर उनसे कोई पूछता है तो मैं ही पूछता हूं । उसी तरह मैंने तुमसे पूछा । यहां पति-पत्नी के नाते का सवाल ही कहां पैदा होता है ?”

“माफ कर दो, बलवन्तराव ।” उषा बोली, “अपने उत्तर के लिए मुझे अब खेद हो रहा है । मेरे दिमाग में बहुत-से विचार घूम रहे थे । उनके कारण बड़ी हैरान-सी हो उठी थी । इसलिए मुंह से कुछ-का-कुछ निकल गया । उसका कोई ख्याल न करो और मुझे माफ कर दो ।”

मैं आश्चर्यचकित हो गया । उसे क्या हुआ ? वह क्यों इतनी गिड़गिड़ा उठी ? क्या दादा का नाम लेने के कारण ? कहीं उसे यह तो नहीं लगा कि मैंने देख लिया है कि वह दादा के साथ-साथ ही आई है ?

“देखो उषा,” भाभी बोलीं, “इस तरह अपना दिमाग न बिगाड़ा करो । लाला थे, इसलिए कोई बात नहीं । अगर दूसरा होता तो तुम्हारे उत्तर से उसके दिल को बड़ी चोट लगती । यदि ऐसा उत्तर तुम अपने राव-साहब को देतीं तो उन्हें भी बुरा लग जाता ।”

“पर मैंने उन्हें कोई जवाब ही नहीं दिया था ।” उषा पुनः एकदम चिढ़कर बोली ।

“यह भी तुमने ठीक नहीं किया ।” भाभी बोलीं, “पूछे गये प्रश्न का उत्तर देने में क्या हर्ज था ?”

हास्य की एक हल्की रेखा उषा के होठों को स्पर्श करती हुई निकल गई । मुझे यकीन हो गया कि वह दादा के साथ ही गई थी ।

“रावसाहब को बुरा नहीं लगेगा ।” उषा बोली, “वह मुझे अन्धरी तरह पहचानते हैं ।”

“अच्छा !” भाभी भीहें चढ़ाकर बोलीं, “बड़ा आश्चर्य है । इतने थोड़े-से सहवास में ही उन्होंने तुम्हें पहचान लिया ! फिर मैं ही अभागिनी हूं, जो इतने लम्बे साथ के बाद भी वह मुझे अभी तक नहीं पहचान पाये ।

उषा खिल-खिलाकर हँस पड़ी, बोली, “हर विवाहित बीवी को यही लगता है । मेरी जितनी भी सहेलियों ने विवाह किये हैं, उन सबकी यही

शिकायत है। विवाह से पहले दोनों कबूतर के जोड़े की तरह घूँ-घूँ करते हुए घूमा करते हैं, पर विवाह होने के बाद ऐसा क्यों हो जाता है ?”

“जबतक तुम्हारा विवाह नहीं होगा तबतक तुम यह नहीं समझ सकोगी।” भाभी बोली, “कल्पित कहानियां पढ़कर हम—पुरुष और स्त्री दोनों ही—कुछ विचार बना लेते हैं। कुछ कल्पित कथाएं पढ़ते हैं। उस समय हमारा घर नहीं बना होता। चोरी-चोरी हमारी मुलाकातें होती हैं। तब हमें लगता है कि कल्पित कहानियों की तरह ही हमारा भी जीवन चल रहा है। पर जहां विवाह हुआ, गृहस्थी जमाई और सिर पर जिम्मेदारियां आई कि सारा वातावरण बिगड़ जाता है। जिन्हें यह अनुभव हुआ है, उनका यह अनुभव पहले देखो ! तुम्हें भी आगे विवाह करना है।”

“कौन कहता है कि मुझे विवाह करना है ?” उषा बोली।

“मैं कहती हूं।” भाभी ने कहा, “तुम्हारी बहन कहती है, जो तुम्हारे स्वभाव को बचपन से जानती है। तुम मुझे धोखा नहीं दे सकोगी, उषा। हां, लाला भले ही तुम्हारे चकमे में आ जायं !”

“छिः-छिः क्या कहती हो, भाभी !” मैं बीच ही में बोल उठा, “मैं तो आशा लगाये बैठा हूं।”

“किसकी ? विवाह की !” भाभी ने मेरी ओर मुड़कर कहा, “शायद इसीने तुममें यह आशा पैदा की है।”

मैंने उषा की ओर देखा। उसका चेहरा निर्विकार था। मैंने कहा, “उसने तो कुछ नहीं कहा। पर मैं ही एक लालची की तरह उसके मुंह से ‘हां’ सुनने की लगातार राह देख रहा हूं।”

“हां’ या ‘ना’ कहने को कभी पूछा था तुमने ?” उसी निर्विकार मुद्रा से उषा बोली।

“कैसे पूछता ?” मैंने भाभी की ओर देखकर कहा, “मेरे मन में आता था कि पूछूं, पर हिम्मत नहीं हो रही थी। लगता कि यह विचार मन में भले ही आता हो, पर वह है अविचार और अविचार पूछा नहीं जा सकता। यह अब बी० ए० हो जायगी। फिर वह बम्बई की, याने शहर की और मैं हूं पक्का देहाती, याने गांव का। यह सब जानते हुए भी मैं कैसे पूछता ?”

“अब तो यह पूछने जैसा ही हो गया है।” भाभी उषा की ओर मुड़-

कर बोलीं, “उषा, अब कह दो ‘हां’ या ‘ना’ ।”

उषा हँस पड़ी, बोली, “क्या तुम सचमुच पूछ रही हो, जीजी या मजाक कर रही हो, मेरा नहीं, बलवन्तराव का ?”

“इन्होंने तो बड़ी आत्मीयता से पूछा है। फिर उनका मजाक कैसे करूंगी ?” भाभी ने कहा, “गृहस्थी का जोड़ीदार ताश के खेल का जोड़ीदार नहीं होता है। वह जरूरत के मुताबिक चाहे जब बदला नहीं जा सकता।”

“ऐसी बात है न ?” उषा ने एक बार मेरी ओर देखकर बाद में भाभी की ओर मुड़कर कहा, “इतना तो जानती हो न तुम ? तो अब मुझमें साफ-साफ क्यों कहलवाना चाहती हो ?”

दोनों अच्छी तरह से देख और सुन सकें, इतनी लम्बी आह भरकर मैंने कहा, “यही उत्तर मिलेगा, ऐसा मुझे लग रहा था। फिर भी मैं आशा नहीं छोड़ूंगा। जबरदस्त आशावादी होना एक बड़ा गुण होता है, ऐसा किसी एक बड़े लेखक ने कहा है।”

इसी समय दादा भीतर आये और कुर्सी पर बैठकर बूट पहनते हुए बोले, “अब मुझे जाना है। रात को मैं खाना खाने आ सकूंगा या नहीं, इसका मुझे भरोसा नहीं। खाना ढककर रख देना। और देखो, बालू, कल की सभा के भाषणों के नोट तुम्हें ही लेने होंगे। इसके लिए तुम्हें महनताना दिलाया जायगा। हमारा अपना रिपोर्टर बीमार हो गया है।”

इतना कहकर बिना किसीके उत्तर की प्रतीक्षा किये खट-खट करते हुए वह चले गये।

मेरी ओर देखकर भाभी बोलीं, “कल तुम्हारी परीक्षा है, लाला ?”

“क्यों ?” मैंने रुखाई से पूछा।

“इसका पता कल लग जायगा।” भाभी बोलीं और उठकर अन्दर चली गई। भाभी के उद्गारों का मेरे मन पर बड़ा विलक्षण प्रभाव पड़ा। दादा की मुझे यह एक चाल मालूम हुई। वह शायद भाभी को यह संकेत करना चाहते थे कि कल की सभा में वह कोई भाषण न दें।

मेरी गंभीर मुद्रा को देखकर उषा जोर से हँस पड़ी। मैं और अधिक बेचैन हो उठा। यह इरादा कहीं उषा और दादा, दोनों ने मिलकर तो नहीं किया है ?

: ६ :

अगले दिन सभा हुई। भाभी सभा में गई। उन्होंने भाषण दिया। सब वक्ताओं के भाषणों की तरह मैंने उनके भाषण के भी नोट लिये और सबके साथ उनके भाषण की रिपोर्ट भी दादा को दे दी। उन्होंने मुझे पारिश्रमिक दे दिया और मुझसे रकम पाने की रसीद ले ली।

समाचारपत्र को भी मैंने सभा की पूरी रिपोर्ट भेजी थी, पर उसमें सिर्फ मुख्य वक्ता का ही भाषण छपा। बाकी वक्ताओं के सिर्फ नाम दे दिये गए थे और उन नामों में सुलेखा हेगडे (भाभी) का भी नाम छपा था। मुख्य वक्ता के भाषण को छोड़कर अन्य वक्ताओं के भाषणों में कोई विशेष बात नहीं थी। भाभी का भाषण बड़ा उग्र था। इसी कारण संपादक ने उसका छापना जान-बूझकर टाल दिया होगा, ऐसा मुझे लगा।

भाभी का भाषण मैंने ज्यों-का-त्यों रिपोर्ट किया था। उसे पढ़ने के बाद दादा ने उस सम्बन्ध में भाभी से क्या कहा, यह जानने का मेरे पास कोई साधन न था। कम-से-कम मेरे सामने उन्होंने भाभी से इस विषय में कोई बात नहीं की थी।

उषा ने जरूर यह बात उठाई थी, लेकिन उस वक्त दादा मौजूद न थे। वह भाभी से बोली, “तुमने आज क्या-क्या कह डाला वहां? मैं यह नहीं कहती कि कड़े शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, परन्तु कड़ेपन की भी आखिर एक हद होती है। तुमने तो कोई हद ही नहीं रखी। जो मुंह में आया कह गई। बम्बई से तुम्हारा वह जो परमेश्वर या पत्थर आया था, उसका भाषण भी कोई कम उग्र नहीं था। पर वह किस तरह एक-एक शब्द नाप-तोलकर बोल रहा था! तुम्हारी इस नासमझी का नतीजा यह होगा कि एक दिन बेचारे रावसाहब बेकार चक्कर में पड़ जायेंगे!”

“उनसे मेरे भाषण का क्या सम्बन्ध?” भाभी बोली, “अपने भाषण के लिए मैं खुद जिम्मेदार हूं। ऐसा कोई कायदा नहीं कि पति और पत्नी के राजनैतिक विचार एक ही होने चाहिए। कौन कह सकता है, उनके मत भी शायद मेरे समान ही हों, पर सरकारी नौकर होने के कारण वह उन्हें बोलकर प्रकट न करते हों। जिसमें थोड़ी भी अक्ल है, जिसके पास हृदय

है, जिसे परिस्थिति का ज्ञान है, उसके मत मुझसे भिन्न हों, यह सम्भव ही नहीं। किसी विशेष पार्टी के प्रति अभिमान होने के कारण विषय-प्रतिपादन की शैली थोड़ी-बहुत इधर-उधर भले ही हो जाती हो, पर भारतीय कहलानेवाले प्रत्येक व्यक्ति का अंतरंग मैं जो बोली हूँ, उसकी अपेक्षा भिन्न भाषा में बोलेगा, ऐसा मैं कभी नहीं सोच सकती।”

“तुम तो बिल्कुल मर्द की शान से बातें कर रही हो, जीजी।” उषा हँसकर बोली, “तुम्हारी चोट मैं समझ गई। कम्यूनिस्टों की तरफ मेरा झुकाव है, यह मैं नामंजूर नहीं करती। बहुत-से कम्यूनिस्ट जेल हो आये हैं, बहुत-से जेल में हैं, और आगे भी बहुत-से जेल जायेंगे। उनमें स्त्रियाँ भी हैं। यदि मैं उस पार्टी में शामिल हो गई तो शायद मुझे भी जेल जाना पड़ेगा। परन्तु तुम्हारा आज का भाषण निरी बकवास थी, इसमें ज़रा भी शक नहीं। वह बिल्कुल वाहियात था और शायद उस वाहियातपन के कारण ही तुम्हें जेल भी जाना पड़े। इसीलिए मैंने तुमसे अभी कहा कि तुम्हारे इस वाहियातपन की आंच रावसाहब को नहीं लगनी चाहिए।”

“क्यों नहीं लगनी चाहिए?” भाभी बोलीं, “विवाह से पहले जब वह मुझे देखने आये थे, उस समय मैं सिर से पैर तक खादी पहने हुए थी। उस-पर से उन्हें जान लेना चाहिए था कि मेरे मत क्या हैं। कांग्रेसियों में संपूर्ण खादी की पोशाक पहननेवाले पुरुष बहुत बड़ी संख्या में हैं। परन्तु खादी-धारी स्त्रियाँ इनी-गिनी ही मिलेंगी। चूँकि मैं इन इनी-गिनी में से एक थी, इसलिए उन्हें जान लेना चाहिए था कि मैं किस धातु की बनी हूँ। इसके बावजूद इन्होंने मुझे पसन्द किया, मुझमें विवाह किया। तुम शायद यह सब नहीं जानतीं।”

“किन्तु विवाह होते ही तुमने अपनी पोशाक एकदम बदल दी।” उषा बोली, “तुम्हारे इस परिवर्तन से रावसाहब को यह क्यों न समझ लेना चाहिए कि तुम्हारे मत भी अब बदल गये हैं?”

“ज़रूर सोचना चाहिए!” भाभी बोलीं, “पर विवाह होने के बाद सोचने-समझने से क्या होता है? विवाह के पूर्व मेरे मत क्या थे, यह वह जानते थे। उस समय जैसी मैं थी, उसी तरह की मुझे उन्होंने स्वीकार किया था। उन्होंने शायद सोचा होगा कि विवाह होने के बाद मैं बदल जाऊँगी,

रास्ते पर आ जाऊंगी। उन्हें शायद यह भी लगा हो कि मैं बदल गई हूँ और इसे उन्होंने अपनी जीत समझी होगी। कितना अजीब स्वभाव होता है किसी-किसी मनुष्य का ! वह अपने-आपको गलत समझ लेता है। कोई इस बात को नहीं समझता कि बाहरी पोशाक भले ही बदल जाय, पर अन्तरंग नहीं बदलता। आज भी हम देखते हैं कि कितने ही भूठे, बेईमान और स्वार्थ-परायण लोग खादी की पोशाक पहनकर कांग्रेस में घुसे हुए हैं। पोशाक से क्या उन लोगों का अन्तरंग बदल गया है ? तुम्हारे रावसाहब ने मेरे बारे में भी यही क्यों नहीं सोचा ?”

उषा खामोश हो गई। बहुत देर तक मौन का सन्नाटा रहा।

वह विषय भी यहीं तक रहा। जब मैंने देखा कि दूसरी ही बातें चल पड़ी हैं तो मैं भी उठकर चल दिया।

दादा की वृत्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। कम-से-कम हमारे सामने तो उन्होंने उस विषय में अभी कुछ नहीं कहा। मैंने सोचा, मामला अब ठंडा हो गया है।

छुट्टियाँ खत्म हो जाने के कारण उषा चली गई। हमारी गृहस्थी पुचारू रूप से चल रही थी। कहीं भी कोई गड़बड़ी नहीं थी। परन्तु यह शान्ति तूफान के पहले की थी, इसकी मुझे कोई कल्पना न थी।

एक दिन हमारे घर रोज आनेवाला पुलिस का सिपाही वारंट लेकर आया। वह सिपाही हमारा परिचित था। इसलिए उसके आने से मुझे विशेष कुछ न लगा। वह आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। शायद वह इस पसोपेश में था कि वारंट की बात कैसे कहे ! दादा उस समय शहर में नहीं थे। किसी डाकेजनी की तहकीकात के लिए बहुत दूर किसी गांव में गये थे।

डरते-डरते उसने वारंट मुझे दिखाया। उसे देखकर मेरा कलेजा धक-से हो गया। एड़ी से लेकर चोटी तक कंपकंपी दौड़ गई। मैं करीब-करीब चीख उठा, “भाभी !”

“क्या हुआ ?” कहती हुई भाभी दौड़कर बाहर आई। कांपते हाथों से मैंने वारंट उनके हाथ में दे दिया। उसे पढ़कर, वह अपने-आप ही हँस पड़ीं और सिपाही से बोलीं, “क्यों रामजीभाई, क्या अभी तुम्हारे साथ चलना होगा ? क्या मुझे अपना बिस्तर और कपड़े आदि भी साथ में रखने होंगे ?”

रामजी मुंह बाये देखता रहा। जब वह कुछ न बोला, तब भाभी ने पुनः पूछा, “क्या तुम अकेले ही आये हो ?”

रामजी की हालत ऐसी हो गई थी कि काटो तो खून नहीं। वह अपने आप ही बुदबुदाया, “जमानत-वमानत का कोई इंतजाम...”

“जमानत कौन देगा ?” भाभी हंसकर बोलीं, “वह यहां नहीं हैं। मेरी यहां किसीसे इतनी जान-पहचान भी नहीं है। चलो, मैं चलती हूं तुम्हारे साथ।” इतना कहकर वह भीतर चली गई।

मैं चुप बैठा हुआ था। मेरा मस्तक सुन्न हो गया था। विचार करने की शक्ति लुप्त हो गई थी। कोई भयानक बात हो गई है और उसका परिणाम कुछ भयंकर होगा, इतना ही भान मुझे था।

बेचारा रामजी स्तब्ध खड़ा रहा। दिन में दस बार जिसे वह झुककर सलाम करता था, उसीको पकड़ने आना पड़ा, यह सोचकर वह सन्नाटे में आ गया था। वह कुछ भी न बोला।

भाभी कपड़े बदलकर बाहर आई। उन्हें देखकर, मैं अवाक रह गया। वह खादी की साड़ी पहने हुई थी, ब्लाउज़ भी खादी का था। जिन कपड़ों को वह गठरी में बांधकर लाई थीं, वह कपड़े भी खादी के ही थे या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। परन्तु जिस कपड़े में गठरी बांधी गई थी, वह कपड़ा खादी का था। जल्दी-जल्दी बांधी गई गठरी में से झांकनेवाली चद्दर और लिहाफ भी खादी के ही दीख रहे थे।

वह यह खादी कहां से लाई ? क्या पहले के ये सब कपड़े उन्होंने अपने पास कहीं सुरक्षित रख लिये थे ? या यह सोचकर कि आगे इन कपड़ों की जरूरत होगी, उन्होंने यहींपर चुपचाप यह सब नई तैयारी कर ली थी ?

“अच्छा लाला, मैं जाती हूं।” मेरी ओर मुड़कर वह बोलीं, “जाने अब कब लौटकर आऊंगी ! घर पर नज़र रखना और अपने दादा की सुख-सुविधा की ओर विशेष ध्यान देना।”

मैंने कहा, “ठहरिये मैं भी साथ चलता हूं।” वह बोलीं, “क्या जरूरत है ? तुम यहीं ठहरो।” यह कहकर वह ज्योंही गठरी उठाने को हुई कि रामजी आगे बढ़ा और उसने वह उनके हाथ से ले ली।

दानों चले गये । मैं मंत्रमुग्ध-सा खड़ा देखता रहा । क्या हो गया, यह मैं स्वयं नहीं समझ पा रहा था । जब वह दृष्टि से ओझल हो गई, तब मुझे होश आया । अब मुझे ऐसा लगने लगा कि मैंने बड़ी गलती कर दी । यद्यपि भाभी ने मुझे साथ जाने से मना कर दिया था, फिर भी मेरा उनके साथ जाना जरूरी था ।

पर जाकर मैं भी आखिर क्या करता ? मुझे वहां कोई पहचानता न था । यह सोचकर कि भाभी दादा की पत्नी हैं, सब लोग वहां उनकी समुचित देख-भाल करेंगे और उन्हें कोई कमी महसूस न होने देगे, मैं चुप रहा ।

अब सवाल था दादा को खबर भेजने का । मैंने सोचा उन्हें खबर भेजने की क्या जरूरत है ? उन्हें पता तो लग ही जायगा । उन्हींके लोग हैं वे ! वे उन्हें खबर भेजे बिना कैसे रहेंगे ?

तभी एक दूसरी ही शंका मेरे मन में पैदा हुई । यह देखकर कि दादा यहां नहीं हैं, कहीं उनके किसी दुश्मन ने यह वखेड़ा न खड़ा कर दिया हो ! यदि ऐसी बात होगी तो दादा को तुरंत खबर भेजने की जिम्मेदारी मुझ-पर है । मन में आया कि दादा के आफिस जाऊं । परंतु बुआजी घर में नहीं थीं । पुराण सुनते मंदिर चली गई थीं । उनके आने तक रुकना पड़ा ।

जब बुआजी को यह हाल मालूम हुआ तो उनके होश-हवाश गुम हो गये । वह एकदम नीचे बैठ गई और रोने लगीं । उन्हें मैंने समझाया । जब वह कुछ शान्त हुई तो मैं कपड़े पहनकर बाहर निकल पड़ा ।

दादा के आफिस इससे पहले मैं कभी नहीं गया था । मेरे सामने यह मुश्किल आ पड़ी कि किधर जाऊं और किससे पूछूं ? भाग्य से, रोज हमारे घर आनेवाला एक सिपाही मुझे वहां मिल गया । वह मुझे एक अफसर के पास ले गया । उस अफसर ने मुझे यह आश्वासन दिया कि वह स्वयं दादा को खबर भेजने का प्रबन्ध कर देगा । मैं घर लौट आया ।

दादा का विभाग ही ऐसा था कि उसके आदमी का मन किसी भी घटना से सहसा नहीं घबड़ाता । मैं यह पहले सिर्फ सुना करता था, अब उसका अनुभव हुआ ।

जो घटना हमारे घर में हो गई थी, उसका प्रभाव दादा के मन पर रंच-मात्र भी न पड़ा, ऐसा मुझे लगा । आते ही उन्होंने बिल्कुल स्वाभाविक

ढंग से मुभसे पूछा, “क्योंजी बालू, वारंट देखकर क्या तुम्हारी भाभी घबड़ा गई थीं ?”

“नहीं बिल्कुल नहीं।” मैंने कहा, “वह घबड़ाई नहीं थी, उल्टे मैं ही घबड़ा गया था। जाने के लिए वह एकदम तैयार हो गई, जैसे वारंट की प्रतीक्षा ही कर रही थीं।”

मेरा उत्तर अनसुना-सा करके दादा अपने कमरे में जाने लगे तो मैंने उन्हें रोककर कहा, “जरा ठहरिये दादा, इसमें कहीं मुझे भी तो नहीं फंसा देंगे ?”

“यह बात मेरे हाथ में नहीं है।” मेरी ओर न देखकर वह बोले, “इस मामले से मेरा कोई संबंध नहीं है।”

इतना कहकर दादा चले गये।

मनुष्य का मन भी कितना अजीब होता है ? अभी तक मैं इसलिए रुका हुआ था कि दादा के आने पर हम लोग यह निश्चित करेंगे कि इस मामले में आगे क्या किया जाय। पर दादा आये और अपने कमरे में चले गये। मैं बुरी तरह तड़प रहा था और पति होते हुए भी दादा को कोई फिक्र न थी।

उसके बाद, दो-तीन दिन तक दादा से मेरी भेंट ही नहीं हो पाई। उनके घर आने और घर से जाने का समय निश्चित न था। कभी-कभी घर में खाना भी नहीं खाते थे। मैंने सोचा, वह किसी कोशिश में लगे होंगे। जो हो, आखिर सरकारी नौकर थे और फिर पुलिस-विभाग में थे। बातों को छिपाकर रखने की आदत उनकी नस-नस में भिदी हुई थी। इसलिए मुझे लगा, वह मुझे कुछ बताना नहीं चाहते। पर मुझे यह विश्वास था कि वह अपनी पत्नी को छुड़ाने के लिए कोई तिकड़म जरूर भिड़ा रहे होंगे।

जैसे-तैसे मैंने अपने मन को समझा लिया।

मुकद्दमा चला पर मजिस्ट्रेट की अदालत में जाने की मुझे हिम्मत नहीं हो रही थी। दिल बेचैन हो रहा था। पूछता किससे ? बीच-बीच में पुलिस का सिपाही घर आया करता था। पर उससे पूछना ठीक नहीं लगा। जब मेरा भाई ही अफसर था, तब एक मामूली सिपाही से इस विषय में मैं कैसे पूछता ?

घर से बाहर निकलना मैंने आजकल बंद कर दिया था। यदि कोई

मुझे कुछ पूछता तो उसे उत्तर देना मुझे कठिन हो जाता। फिर लोग या तो मुझे बुद्धू समझते, या घमण्डी कहते।

एक बार मन में विचार आया कि उषा को पत्र लिखूं, पर उसका पता मुझे मालूम न था। जब दादा से पता पूछा तो बोले, “उसे क्यों खबर देते हो? उसे आप ही पता चल जायगा। उसकी पढ़ाई में व्यर्थ ही बाधा होगी।” इस प्रकार कहकर दादा चले गये।

सरकारी नौकर को अपना कलेजा कितना कठोर बना लेना पड़ता है? मैं उतना मंजा हुआ नहीं था, इसलिए तड़प रहा था। घर में बैठे-बैठे ही मुझे बड़ी घुटन हो रही थी। मैंने उषा को पत्र भेजने का निश्चय किया। पत्र लिखा और भेज दिया।

दूसरे दिन मुझे गवाह का सम्मन मिला। मेरा कलेजा धक्-से हो गया। सोचा, आखिर ये लोग इस मामले में मुझे फंसाकर ही रहे!

क्या करूं, कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था। रिपोर्ट मैंने ही लिखी थी। उसे अस्वीकार करना संभव न था। उसका पारिश्रमिक लेकर मैं रसीद दे चुका था। अदालत में जाकर मैं क्या कहूंगा? क्या भाभी के खिलाफ गवाही दूंगा?

डर के मारे मैं अभी तक अदालत नहीं गया था। अब आप-ही-आप वहां जाना बंद हो गया। गवाह होने के कारण अदालत में मुकद्दमा सुनने के लिए मुझपर रोक लग गई थी। नियत दिन पर मुझे अदालत जाना पड़ता था। पर जबतक मेरी पुकार न होती, तबतक मुझे अदालत के बाहर बरामदे में बैठे रहना पड़ता था। इस तरह दो-तीन दिन बीत गये। दूसरे लोग भी गवाह की हैसियत से बुलाये गए थे। उनकी गवाहियां होने तक मुझे दिन-भर बेकार ही बाहर बैठा रहना पड़ता था।

पहले ही दिन मेरी गवाही क्यों नहीं ले ली? क्यों मुझे यों तंग किया जा रहा है? वैसे देखा जाय तो मेरी गवाही सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी, पर मुझे उन लोगों ने सबसे पीछे रखा। क्या मुझे तंग करने के लिए ही जान-बूझकर यह योजना बनाई गई थी?

जिस समय अदालत के भीतर मुकद्दमा हो रहा था, उस समय अपना बाहर बैठे रहना मुझे बड़ा खल रहा था। जान-पहचान के लोग आकर मुझसे

मिलते थे। नाना प्रकार के प्रश्न पूछकर मुझे तंग करते थे। उन्हें जवाब देते-देते मैं परेशान हो रहा था। भाभी को जो सजा होगी सो तो आगे होगी पर आज ही मुझे जो सजा मिल रही थी, वह असली थी। हर मिनट मेरी परेशानी बढ़ रही थी।

अंत में मेरी पुकार हुई। मैं कटघरे में जाकर खड़ा हुआ। उस समय मैं पसीने से तर-बतर हो उठा था। जीभ तालू से चिपक गई थी। नाम, बाप का नाम, पेशा आदि के बारे में पूछे गए प्रश्नों के मैंने जैसे-तैसे जवाब दिये। इसके बाद मेरे द्वारा लिखी गई रिपोर्ट मुझे दिखाई गई और अदालत के सवाल के जवाब में मैंने मंजूर किया कि वह रिपोर्ट मैंने ही लिखी है।

भाभी और दादा से मेरा क्या नाता है, इस विषय के कुछ आड़े-टेढ़े प्रश्नों को पूछने के बाद मेरी गवाही समाप्त हुई। आगे अभियुक्त का बचाव शुरू हुआ।

भाभी ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। यह देखकर मैं दंग रह गया। दादा ने भाभी के बचाव के लिए एक अच्छे वकील का इंतजाम कर दिया था, परंतु जब भाभी ही अपनी तरफ से कोई बचाव करने के लिए तैयार नहीं हुईं तो बेचारे वकीलसाहब को चुप बैठना पड़ा। भाभी को तीन महीने की सादी जेल की सजा सुना दी गई।

वैसे दूसरे वक्ताओं को जो सजाएं मिली थीं, उनकी तुलना में भाभी की सजा सख्त नहीं कही जा सकती थी। उस दिन दादा को धक्का लगा होगा, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। दादा घर आये तो चुपचाप कमरे में चले गये। उन्होंने खाना नहीं खाया। मैंने भी नहीं खाया।

मेरा पत्र जाने पर भी उषा नहीं आई, इसपर मुझे आश्चर्य हुआ। उसने मेरे पत्र का जवाब तक नहीं दिया। उस घर से उसका घनिष्ठ नाता था, पर उस नाते को छोड़ भी दें, फिर भी उषा का यह व्यवहार शिष्टता के विरुद्ध था, ऐसा मुझे लगा।

दादा ने एक दिन मुझे अचानक खबर दी कि भाभी को किसी दूसरे शहर की जेल में भेजा जा रहा है। मैं भाभी से मिलने गया। जाते समय उन्हें देने के लिए कुछ पुस्तकें भी साथ ले गया।

मैं डरते-डरते ही गया था, परंतु भाभी ने भेंट होते ही मेरा सारा भय जाता रहा। वह हँसती हुई मुझसे मिलने आई। दादा उनसे एक बार भी मिलने नहीं गये, यह पता मुझे वहीं चला।

मैंने भाभी से पूछा, “छूटने पर घर ही आओगी न ?”

“जरूर !” भाभी बोली, “नहीं और कहाँ जाऊंगी ?”

मैंने हिचकिचाते हुए कहा, “दादा आपसे यहाँ मिलने भी नहीं आये। जेल काटकर आप घर लौटेंगी, इसीलिए यह पूछा।”

“मैं घर ही आऊंगी।” भाभी बोली, “अगर वह मुझे घर में न आने देंगे तो फिर देखूंगी, क्या करना है। परंतु ऐसा होगा नहीं, मुझे यकीन है। वह इतने कमजोर नहीं हैं।”

निर्जीव पैरों से मैं जेल के बाहर आया। मन में नाना प्रकार के विचार कोहराम मचा रहे थे। घर में भाभी का आधार था। उस आधार के टूट जाने से दादा का मन बदल जायगा, ऐसी एक शंका मेरे मन को छूने लगी। तीन महीने की अवधि बहुत लंबी नहीं थी, पर मुझे लगने लगा कि मेरे लिए ये तीन महीने तीन युग की तरह होंगे।

वही हुआ। एक-एक दिन मुझे एक-एक वर्ष की तरह लग रहा था। पढ़ने में भी मन नहीं लगता था। दूसरा कोई काम न था। साहित्य-संघ की कभी-कभी गोष्ठियाँ होती थीं। वही मेरे लिए थोड़ा मनोरंजन था।

दिसंबर की छुट्टियों में उषा आई। मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा कि पहले क्यों नहीं आई तो बोली, “मैं आकर क्या करती? उसका पति पुलिस का अफसर है। उससे अधिक मैं क्या कर सकती थी? तुम पूछोगे, मैंने तुम्हें पत्र का उत्तर क्यों नहीं दिया? मैं पत्र के उत्तर में आखिर लिखती क्या? मैंने अखबार में पढ़ा कि जीजी को तीन माह की सादी जेल की सजा हो गई। जब मैंने यह पढ़ा कि उसने कोई बचाव नहीं किया, तब मुझे लगा कि मैं जो यहाँ उस समय नहीं आई, सो अच्छा किया। बचाव न करने का यह कांग्रेसी पागलपन मुझे पसंद नहीं। इसके सिवा जब उसने अपना अपराध स्वयं ही स्वीकार कर लिया तो बचाव भी क्या करती? मेरे ख्याल से यहीं गलती होती है। भाषण भले ही उग्र रहा हो, पर जो बातें भाषण में कही गई थीं, वे सच तो थीं न? फिर बचाव क्यों नहीं

करना चाहिए था ? रावसाहब ने उसके लिए एक अच्छा वकील कर दिया था। उस वकील से उसने फायदा क्यों नहीं उठाया ? ऐसा पागलपन मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता। ऐसे लोगों के साथ मेरी कोई सहानुभूति नहीं।”

बचाव न करने के सिद्धान्त पर वह बहुत बोल रही थी, परंतु उसकी उन दलीलों का मेरे मन पर कोई असर न हुआ।

मैं अपनी मनःस्थिति से उषा की मनोवृत्ति का विश्लेषण करने लगा। मेरे विवेक को उसका कथन जंच नहीं रहा था। उसका तर्क ठीक था, पर सहृदयता की भावना को वह जंचनेवाला न था। कम-से-कम मुझे तो वह नहीं जंच रहा था।

दादा घर आये तो उषा को देखकर हर्षविभोर हो उठे और बड़ी खुशी के साथ उन्होंने उसका स्वागत किया। यह देखकर भी मुझे आश्चर्य हुआ। उनसे बातें करती हुई वह उनके साथ उनके कमरे में चली गई। मुझे लगा, यह क्या है ?

भाभी के जेल जाने का उषा को क्या कोई दुःख नहीं हुआ ? पर मेरा मन दुःख से क्षुब्ध हो रहा था। उषा तो उसकी सगी बहन थी ! हँसते हुए वह दादा से गप्पें हांकने के लिए उनके साथ ऊपर चली गई।

बहुत देर तक वह ऊपर गप्पें हांकती रही। मैं प्रायः ऊपर नहीं जाता था। इस समय अगर जाता तो ऐसा लगता, जैसे मैं जान-बूझकर ही गया हूँ। पर मुझे यह सुनने की बड़ी जिज्ञासा थी कि उषा दादा से क्या बातें कर रही है। पर मैंने अपने मन को रोक लिया।

उषा हँसती हुई नीचे आई। मेरी छलछलाई आंखों को देखकर वह बोली, “तुम तो औरतों जैसे हो जी, बलवंतराव ! औरतों जैसे भी कैसे कहूँ ? मैं औरत हूँ, पर मुझे तो इसका कोई दुःख नहीं हो रहा है, और तुम हो जो ऐसी रोनी सूरत बनाये बैठे हो। ये मर्द के लक्षण नहीं हैं !”

“तुम भले ही यह कह लो !” मैंने आंखें पोंछकर कहा, “मेरा मन ही ऐसा है। उसे मैं रोक नहीं सकता। सारी घटना मैंने अपनी आंखों से देखी है, इसलिए उसकी याद से मेरा मन सिहर उठता है। इस घर में रहनेवाले

एक तरह से हम दो ही थे। अब अकेला रह गया हूँ, इसलिए यह घर खाने को दौड़ता है।”

“जब तुम ऐसा कह रहे हो,” उषा बोली, “तो रावसाहब को भी यही क्यों न कहना चाहिए ? क्या घर उन्हें खाने को नहीं दौड़ता ? पर उन्होंने तो बिल्कुल मर्द जैसी बातें कीं। उन्होंने अपने मन पर रत्ती-भर भी इस सबका असर नहीं होने दिया। ऐसी मर्दानगी होनी चाहिए पुरुष में, और तुम उनके सगे भाई हो !”

“बात यह है”, मैंने कहा, “दादा का मन पक्का हो गया है। उनकी नौकरी ही ऐसी है कि मन को मारे बिना उनसे कुछ हो ही नहीं सकता। वैसे भी वह भाभी से विशेष कहां अधिक बोला करते थे ? घर में भाभी से कोई अधिक बोलता था तो मैं और इसीलिए मेरा मन दुखी हो रहा है।”

“अच्छा, ऐसी बात है !” उषा बोली, “सुशिक्षित और अशिक्षित में क्या फर्क है, यह अब मेरी समझ में आया। शिक्षा के कारण मनुष्य का मन जैसे-जैसे प्रगल्भ होता है, वैसे-वैसे वह भावना का शिकार कम होने लगता है। आगे चलकर तो वह भावना से दूर हो जाता है और हेतुवाद पर जीवित रहता है। बौद्धिक उन्नति के बिना मनुष्य में मनुष्यता नहीं आ सकती।” इतना कहकर वह इस ठाट से खामोश हो गई, जैसे उसने कोई बड़े सिद्धान्त की बात कह डाली हो !

मैं कुछ न बोला। उसने मुझे अशिक्षित सिद्ध कर दिया था। मेरे दिल में यह जरूर आ रहा था कि उससे सुशिक्षितों की व्याख्या पूछूं। पर मैं चुप रहा। उससे बहस करना बेकार था। हेतुवाद की उसकी व्याख्या मुझसे भिन्न थी। मैं उससे बहस करता, फिर भी उसे मेरी बात न जंचती। भावना से परे हो जाने का क्या मतलब ? क्या भावना का विलुप्त हो जाना, या भावना की छाती पर पैर रखकर उस पार चले जाना ? जीवन के धक्के खाते समय मनुष्य को अपना मन कठोर करना चाहिए, यह सच है। पर मन कठोर ‘करना’ और मन कठोर ‘होना’ इन दोनों में अंतर है। उषा और भाभी का खून का नाता था, पर उषा को दुःख नहीं हुआ। मेरा और भाभी का खून का नाता नहीं था, पर मुझे दुःख हुआ। रक्त के आकर्षण की अपेक्षा सहवास का आकर्षण ही अधिक दुस्सह होता

है। इसीलिए तो पिता का घर छोड़कर पति के घर जानेवाली लड़की बड़ी प्रसन्नता से अपनी गृहस्थी सजाती है।

इसमें कहीं उपा का स्वार्थ तो नहीं है ?

मेरे मन में यह कैसा वाहियात विचार आ गया ? छिः-छिः, उपा मूर्ख हो सकती है, पर मेरे दादा वैसे नहीं हैं।

एक सप्ताह तक उपा यहां रही। जब दादा घर होते तो अक्सर वह उनके पास ही ऊपर के कमरे में बैठी रहती। अगर दादा घर न होते तो कहीं बाहर घूमने चली जाती। वह बहुधा मुझे ढाला करती। अंत में जब मैंने साफ-साफ उसमें पूछा तब वह बोली, “मैं तुमसे नाराज हो गई हूं। सचाई की तुम्हारी भूठी कल्पना के कारण आज जीजी जेल गई है। तुम्हींने उसे जेल भेजा है। तुम्हारी रिपोर्ट...”

“हां, रिपोर्ट मेरी जरूर थी। पर मैंने वह दादा को दे दी थी। क्या उन्हें वह अच्छी तरह नहीं देख लेनी थी ? रिपोर्ट में कौनसी बातें उचित थीं और कौन-सी अनुचित, यह मेरी अपेक्षा वह ही अधिक समझते थे। उन्होंने आखें बंद करके मुझसे रिपोर्ट नहीं ली थी। उसे ध्यान से उन्होंने पढ़ा था। अगर उसी समय वह मुझसे उसमें कोई सुधार करने को कहते तो क्या बिगड़ जाता उनका ? क्या मैं सुधार न कर देता ? उस रिपोर्ट का क्या परिणाम होगा, यह मेरी अपेक्षा दादा ही अधिक जानते थे। मैंने तो केवल उनकी आज्ञा का पालन किया था, इसमें दोष अगर किसीका है, तो वह दादा का ही है। पर मैं उन्हें भी दोष नहीं देता। असल में दोष भाभी का है। जानते-समझते हुए भी यह नासमझी भाभी को क्यों करनी चाहिए थी ?”

“हां। अब कैसे बोले !” उपा ने कहा, “रावसाहब ने भी यही कहा। उनके हाथ में क्या था ?”

“क्यों नहीं था ?” मैं जरा चिढ़कर बोला, “कम-से-कम मुझसे रिपोर्ट सुधरवा लेना तो जरूर उनके हाथ में था !”

“कर्तव्य की उनकी अपनी कल्पनाएं बड़ी कठोर हैं।”

“मैं भी आखिर उन्हींका सगा भाई हूं। वही खून मेरी नसों में भी है। कर्तव्य के बारे में दादा की कठोरता तुम्हें सराहनीय लगती है, पर कर्तव्य

की वही कठोरता अगर मैंने दिखाई तो उसके लिए तुम मुझे दोषी सिद्ध करती हो ! वाह भई, यह भी खूब न्याय है। यह क्या इसलिए कि वह एक अफसर हैं और मैं बेकार हूँ ?”

इसपर उषा हँस दी और चुप हो गई।

“चुप क्यों हो गई ?” मैंने कहा, “मैं फिजूल ही यह बहस नहीं कर रहा हूँ। मैं नहीं चाहता कि मेरे बारे में तुम्हारे मन में जरा भी गलतफहमी हो। यह मुझे कभी अच्छा नहीं लगेगा। सच यह है कि शिक्षा की दृष्टि से मेरा दर्जा तुम्हारी अपेक्षा कम है, परन्तु उम्र में मैं तुमसे बड़ा हूँ। तुम्हारी अपेक्षा अनुभव भी मुझे अधिक है। यह तो तुम्हीं स्वीकार कर चुकी हो कि मुझमें भावनाएं हैं और तुम्हारा यह अनुमान सोलह आने ठीक भी है। मनुष्य जब भावनाओं के वशीभूत हो जाता है, तब उसमें असंभव को प्राप्त करने की चाह पैदा हो जाती है। उसी तरह की एक असंभव चाह मैंने भी पाल रखी है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि मेरे बारे में तुम्हें कोई गलतफहमी न हो।”

यह देखने के लिए कि वह क्या कोई उत्तर दे रही है, मैं क्षण-भर के लिए रुक गया और जब देखा कि वह खामोश है, तब मैंने कहा, “आज भाभी होतीं तो अच्छा होता। अभी जो मैंने कहा है, इससे भी अधिक साफ-साफ मैं कह सकता। आज मैं भले ही बेकार घर में बैठा होऊँ, फिर भी उसका कारण भाभी हैं। कल जब वह घर आजायंगी, तब मैं अगर कुछ पुरुषार्थ करने के लिए बाहर चला गया तो उसका कारण...” इतना कहकर मैं रुक गया।

“उसका कारण कौन होगा ?” उषा गंभीर होकर बोली, “क्या मैं ?”

“हां।” कहकर मैंने आंखों में प्राण समेटकर उसकी ओर देखा।

क्षण-भर के लिए वह अस्वस्थ हो उठी। पुनः क्षण-भर के लिए मेरी ओर एकटक देखकर उसने गर्दन घुमा ली। शायद मेरी बातों का उसके दिल पर असर हुआ।

एक गहरी आह भरकर बोली, “आज मुझे लग रहा है कि जनता-जनार्दन की सेवा में अपना सारा जीवन समर्पित कर दूँ। कौन कह सकता है, कल मेरा मन शायद बदल जाय। जनसेवा-संबंधी मेरे विचार जीजी से भिन्न हैं। वह देशसेवा कहती है, मैं जनसेवा कहती हूँ। मेरे मत क्या हैं,

इसकी थोड़ी-बहुत कल्पना तुम्हें जरूर हो गई होगी। यदि मुझे विवाह ही करना पड़ा तो मैं ऐसा जोड़ीदार ही चाहूंगी, जिसके कारण मेरे मतों का पोषण हो। ऐसा जोड़ीदार यदि किसी मिल में मजदूर हो, फिर भी मैं पति के रूप में बड़ी खुशी से उसे स्वीकार कर लूंगी। मेरे पास दर्जे का सवाल नहीं है। सवाल है ध्येय का, आईडियालाजी का। समझे ?”

एक क्षण के लिए रुककर मैं बोला, “ठीक है। मैं हमेशा यह ध्यान में रखूंगा। भाभी के जेल से लौटने के बाद एक बार उनसे बातें कर लूंगा और अपना आगामी कार्यक्रम तय कर लूंगा। तुम्हारे मतों से मैं परिचित हूँ। तुम्हारी विचार-धारा का मैं कायल हूँ। शब्द समझ में आ गये हैं। सिद्धान्त भी मैंने आत्मसात कर लिये हैं। अब सिर्फ इतना ही रह गया है कि उन्हें कार्यरूप में परिणत करने के लिए उचित परिस्थिति पैदा होनी चाहिए, अथवा पैदा करनी चाहिए। मैं तुमसे सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि तुम्हारी परीक्षा में पास होने के लिए मैं प्राणों की बाजी लगा दूंगा।”

ऐसा लगा, जैसे वह बहुत खुश हो उठी हो। दूसरे दिन वह जानेवाली थी। शाम को वह दादा के साथ घूमने गई। दोनों जब लौटकर आये तो दादा बोले, “बालू, सुना है, तुम बंबई जा रहे हो ?”

मैंने हिचकिचाते हुए उत्तर दिया, “हां, ऐसा कुछ सोच तो रहा हूँ। भाभी के लौटने तक रुका हूँ।”

दादा हँस पड़े और चल दिये।

“अच्छा, तो तुमने बंबई जाना तय ही कर लिया है ?” ऊषा बोली, “सचमुच ही तुम यदि कुछ करना चाहते हो तो मुझे बताओ ? मैं तुम्हें बड़े-बड़े नेताओं से मिला दूंगी।”

“धन्यवाद,” कहकर मैं खामोश हो गया।

मुझे बड़ा अजीब-सा लग रहा था। मैं आग से खेल रहा था। उस लड़की के प्रति ज़रा भी आत्मीयता मेरे हृदय में नहीं थी। मैंने उससे जो भी कहा, उसमें सत्यांश कुछ भी न था। मैं उसे तोल रहा था। भाभी की अनुपस्थिति में वह दादा से बड़ी घनिष्ठता स्थापित कर रही थी। यह मुझे ठीक नहीं जान पड़ रहा था। इसीलिए मैं यह चाल खेला था। मुझे शक है

कि मेरी चाल काम कर गई। कहीं विचारधारा की धुन में वह किसी बदमाश के चंगुल में न फंस जाय !

इस समय यदि भाभी होतीं तो बड़ा अच्छा होता !

दूसरे दिन उषा बंबई चली गई। मैं उमे स्टेशन पहुंचाने गया। अपने पहले के वादे को उसने जाते समय फिर एक बार दोहराया, जन-सेवा पर एक छोटा-सा व्याख्यान दिया, जग की राजनीति को हिला देने की ताकत जिस महान पुरुषों में है, उनमें मुझे मिला देने का पुनः एक बार वादा करके, मेरी ओर देखकर, मुंह-भर हँसती हुई वह चली गई।

यह सब देखकर मैं खिन्न हो गया।

: ७ :

सजा काटकर भाभी घर लौटीं। उन्हें लाने दादा स्टेशन गये थे। भाभी के आने की दादा ने मुझे कोई खबर न दी थी। इसीलिए भाभी को अचानक आया देखकर मैं चकित हो गया। उनके साथ दादा को देखकर तो मुझे और अधिक आश्चर्य हुआ।

एक प्रकार से मैं निराश हो गया। मैं देखना चाहता था कि जेल में छूटने के बाद दादा और भाभी की पहली मुलाकात किस तरह होती है। उस भेंट के समय एक-दूसरे के मन पर क्या बीतती है, यह देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी और इसीलिए मैं बड़ी आशा लगाये उस दिन की उत्कंठा से बाट जोह रहा था। पर वह संयोग मैं नहीं साध सका।

घर आते ही भाभी बोलीं, “तो तुम बंबई जा रहे हो, लाला ? क्या बिल्कुल तय हो गया ?”

“हां, सोच तो रहा हूं !” मैंने कहा, “पर देखिये, मौका कब आता है !”

मेरे बंबई जाने की बात दादा ने भाभी से कही होगी और दादा को उषा से पता लगा होगा।

“लगता है, मेरी गैरहाजिरी में तुम्हारी उषा से खूब अच्छी पटी ?” भाभी बोलीं। यह सुनकर मन-ही-मन मैं भेंप उठा। मैं सच बात कह देना चाहता था, पर उस समय वह कहना संभव नहीं था।

मैंने जेल की चर्चा शुरू की। वहां का हाल सुनाते समय भाभी बड़े रंग में आई। दादा ध्यान से सुन रहे थे। पर उन बातों का दादा के मन पर कोई प्रभाव पड़ता हुआ नहीं दीख रहा था। उन्हें यही लग रहा था, जैसे भाभी अपने मायके से लौटकर आई हैं। ऐसा कोई आसार नज़र नहीं आया, जिससे मैं यह कह सकता कि दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति दूरी पैदा हो गई है।

पर अधिक बारीकी से देखने पर मुझे मालूम हुआ कि दोनों का वह ढोंग था। दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति फासला ज़रूर था। पर दोनों ही एक-दूसरे से बर्ताव करते समय यह सावधानी बरत रहे थे कि मुझ-जैसे उनके अत्यन्त निकट के संबंधी को भी यह पता न लग पाये कि दोनों में मन-मुटाव है। यह देखकर मुझे लगा, ऐसी ढोंगी गृहस्थी किस काम की? 'होना' और 'दीखना' इनमें जो फर्क है, दुनिया उसे नहीं जानती। 'कैसे है'—इसे दुनिया नहीं देखती। दुनिया यही देखती है कि कैसा 'दीखता' है और इसी-लिए मनुष्य हमेशा इसी फिक्र में रहता है कि लोगों की नज़रों में उसकी गृहस्थी अच्छी दिखाई दे। जो 'नहीं होता' उसे दिखाने की कोशिश करने के कारण मनुष्य के मन को यातनाएं होती हैं। ये यातनाएं क्यों सहन की जायें? क्या सिर्फ दुनिया को धोखा देने के लिए? परंतु मन की इन यातनाओं को सहन करके उत्कृष्ट रीति से जो मनुष्य दुनिया की आंखों में धूल भोंक सकता है, उसे ही दुनिया सज्जन कहती है। हमारे दादा इसी प्रकार के सज्जन थे।

पर मैंने यह नहीं सोचा था कि ऐसी ढोंगी सज्जनता स्थापित करने के लिए भाभी प्रवृत्त हो जायगी। मैंने जब स्पष्ट रूप से उनसे इस विषय में पूछा तो वह बोलीं, "तो तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं? तात्त्विक दृष्टि से हम दोनों अलग-अलग छोर पर खड़े हैं। दैवयोग से, दो अलग-अलग वृत्ति के, अलग-अलग छोर पर खड़े व्यक्ति, एक स्थान पर आ गये हैं। यदि हम दोनों अपनी-अपनी वृत्ति के वशीभूत हो गये तो हममें रोज़ झगड़े होंगे और दोनों को ही सुख नहीं मिलेगा। यही नहीं, बल्कि हमारे घर में तुम जैसे तीसरे व्यक्ति का जीना भी दूबर हो जायगा। इसीलिए मैं इस ढोंग में शामिल हूं। हमारे ऐसे बर्ताव के कारण अगर यातनाएं होती हैं तो सिर्फ हम दोनों

को ही होती हैं। कम-से-कम हमारे आस-पास के लोग तो सुखी रहते हैं। दुनिया के बेकार भूमेलों से तो हम मुक्त रहते हैं। अभी की बात ही लो न। मेरे जेल से आने के बाद हमारी गृहस्थी किस तरह चौपट होती है, यह देखने के लिए बहुत-से लोग ताक लगाये थे। पर अब उन लोगों के मुँह बंद हो गये। यदि ऐसा-वैसा कुछ हो जाता तो उसके बाद और भी जो अनेक भूभट्टें और भूमेले खड़े होते, उनमें भी हमें छुटकारा मिल गया। यह सब शान्त हो जाने के कारण हमारे मन को जो संतोष होता है, उससे हमारी यातनाओं की पीड़ा भी धीरे-धीरे पिघलकर विलुप्त हो जाती है। मैं मानती हूँ कि यह ढोंग है, पर जब इस ढोंग में सभीकी भलाई होती है तो इस ढोंग को ढोंग क्यों कहना चाहिए ? असल में यह व्यवहार है, चतुरता है। ढोंग को ढोंग कहना व्यावहारिक दृष्टि से मूर्खता है !”

“वाह भाभी, क्या खूब !” मैंने कहा, “अदालत में आपने अपना बचाव नहीं किया। पर अदालत के बाहर यह बचाव आपने खूब किया !” भाभी हँस पड़ीं। यह देखकर मैंने कहा, “आप अगर सोचती हों कि आपके इस लम्बे-चौड़े व्याख्यान से आपकी बात मुझे जंच गई है तो यह भ्रम है। आपकी इन दलीलों से मुझे इतना ही लगा कि आप अगर कानून पास होतीं तो आपकी वकालत बेशक बहुत अच्छी चलती। आपसे स्पष्ट कहे देता हूँ कि मैं दुनिया के तौर-तरीकों का इतना कम जानकार नहीं कि आपके इस बुद्धिवाद से धोखा खा जाऊँ।”

“भूठ क्यों बोलते हो ?” भाभी बोलीं, “क्या तुमने नहीं किये कभी ऐसे ढोंग ?”

दादा से आज तक मैंने जो बर्ताव किया, वह मुझे याद हो आया। मुझे यह भी याद आया कि अभी कुछ दिन पहले ही मैं उषा को धोखा देने का प्रयत्न कर रहा था। भाभी की दलीलें बिल्कुल ठीक थीं। इसके बावजूद भी मैंने कहा, “मेरी बात अलग है। आप दोनों विद्वान हैं। मैं आप जैसा पढ़ा-लिखा नहीं। मैं एक साधारण-सा भावुक मनुष्य हूँ। मैंने भी ढोंग किये होंगे। मैं यह नहीं कहता कि मैंने ढोंग नहीं किये; परन्तु मेरे वे ढोंग भावनात्मक थे। आपके ढोंग बौद्धिक हैं। बौद्धिक ढोंग भावनात्मक ढोंगों की अपेक्षा अधिक बुरे होते हैं।”

“यहां हमें ढोंग की डिग्री नहीं देखना है, लाला ।” भाभी शान्ति से बोलीं, “ढोंग हर समय ढोंग ही होता है । ढोंग पर ही सारी दुनिया खंडी है । बुद्धिमान से लेकर मूर्ख तक, प्रत्येक एक-दूसरे को धोखा देता रहता है और धोखा देने की इस क्रिया को ही जग की रीति कहते हैं ।”

“ठहरिये, फिर कहिये । मुझे लिख लेने दीजिये ।” मैंने मजाक में कहा, “अपने किसी लेख में घुसेड़ दूंगा इसे ।” जानबूझकर मैंने यह विषय बदला और बातों का प्रवाह साहित्य की ओर मोड़ दिया ।

इसके बाद शहर में सभाएं पहले जैसी ही होती रहीं । उनमें उग्र भाषण भी होते थे । पर भाभी फिर कभी किसी सभा के मंच पर भाषण देने खड़ी नहीं हुई । लोग कहते, “तीन महीने की सजा से देवीजी घबड़ा गई—पति थानेदार जो है । उसने बीवी के अच्युती तरह कान उमठे होंगे । ये पढ़ी-लिखी औरतें शुरू-शुरू में बड़ी उछल-कूद मचाती हैं और फिर किसी समय एकदम हिम्मत हार जाती हैं । औरतों को देशभक्ति से क्या वास्ता ? उन्हें चक्की, चूल्हे और बच्चों को संभालते हुए घर बैठना चाहिए ।”

जब मैंने भाभी को यह बताया कि लोग उनके बारे में क्या कहते हैं, तब वह बोलीं, “लोग सोलहो आने ठीक कहते हैं । उनका एक शब्द भी झूठ नहीं । मेरा मन बहुत करता है कि फिर भाषण दूं । पर मैं क्या कर सकती हूं ? विवश हूं । यदि फिर भाषण दूं और फिर मुझे जेल हो जाय तो तुम्हारे दादा को अपनी नौकरी से ही हाथ धो बैठना पड़ेगा । सरकार यह सोचती ही नहीं कि एक के अपराध के लिए दूसरे को क्यों सजा दी जाय ? हम दोनों को विवाह से पहले ही इन बातों को सोच लेना चाहिए था । उस समय हमने नहीं सोचा । अब सोचा है । हम दोनों में से किसी एक के पीछे हटे बिना समझौता नहीं हो सकता । यदि मैं पीछे नहीं हटती हूं तो तुम्हारे दादा की नौकरी जाती रहेगी । इसलिए मैंने सोचा, मैं ही क्यों न पीछे हट जाऊं ? अगर कांग्रेस से एक औरत निकल गई तो देश की कोई बड़ी हानि न होगी । लड़ाई के एक मोर्चे से जब कोई आदमी चला जाता है तो दूसरा तुरन्त उसके स्थान पर जाकर खड़ा हो जाता है । यही सोचकर मैं अपने मन को सन्तोष दे लेती हूं ।”

उस साल पंडित जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में फैजपुर में कांग्रेस

का अधिवेशन हुआ। वह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। कांग्रेस के प्रचार के लिए पंडितजी ने सारे हिन्दुस्तान का तूफानी दौरा किया। आंधी की तरह वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर धड़ल्ले से भाषण देते हुए घूमे। समूचा देश हड़बड़ाकर जाग उठा। असेम्बली के चुनाव नजदीक आ गये थे। कौंसिल-वहिष्कार के प्रस्ताव को रद्द करके कांग्रेस चुनाव लड़ने के लिए अग्रसर हो गई थी। पंडितजी के भाषणों के परिणाम-स्वरूप ऐसा रंग दीख रहा था कि असेम्बली में सभी जगह कांग्रेस बहुमत से आयगी। पंडितजी के दौरे के समाचारों को मैं और भाभी दोनों बड़ी दिलचस्पी से पढ़ते थे। दोनों को बड़ी खुशी थी। पर भाभी के उल्लास में स्वार्थ का भाग अधिक था। वह कहतीं, “अगर कांग्रेस बहुमत से आ गई और उसका शासन हो गया तो मैं यह देखना चाहती हूं कि तुम्हारे दादा क्या करते हैं। इसीलिए मुझे इतनी खुशी हो रही है।”

“आपने कभी दादा से पूछा था यह ?” मैंने कहा।

भाभी हँस पड़ीं और बोलीं, “ऐसे प्रश्न पूछे नहीं जाते। पूछ लेने से सारा मन्ना किरकिरा हो जाता है।”

दादा को इस बात का पता ही न था कि देश में क्या हो रहा है। वह अपने ही काम में चूर थे। राजनैतिक मुकद्दमे अब बन्द हो गये थे। चोरियां, डाके, खून, मार-पीट आदि का बाजार गर्म था और इन्हीं मामलों में अपना जौहर दिखाकर वह सन्तोष कर लेते थे। हमारी गृहस्थी सुख से चल रही थी। इसी समय उषा हमारे घर आई।

आते ही उसने कांग्रेसवालों को गालियां देना शुरू कर दिया। चूँकि कांग्रेस ने लड़ाकू वृत्ति छोड़ दी थी, इसलिए वह कांग्रेस को दोष दे रही थी। मुझे आश्चर्य हुआ। वह कोई-न-कोई दोष हर हालत में कांग्रेस पर मढ़ती ही रहती थी। जब खादी और चरखे का आन्दोलन था, तब यांत्रिक प्रगति की तरफदारी करके वह कांग्रेस का विरोध करती थी। आज जब कांग्रेस ने कौंसिल-प्रवेश करने का निश्चय किया तो यह भी उसे नहीं जंच रहा था।

उसकी सारी नज़र थी जागतिक राजनीति पर। पूरे विश्व की राजनीति पर वह बातें किया करती थी। भाभी का मत था कि जब हमारी

ही राजनीति का कोई ठिकाना नहीं, तब हमें पूरे विश्व की राजनीति से क्या लेना-देना है ? जब वह दोनों बहनें इस विषय को लेकर बहस करने लगतीं तो मेरा माथा भन्ना उठता और मैं कहता, “क्यों फिजूल दुनिया की ये बातें कर रही हो । इससे तो अच्छा है, हम कुछ साहित्य-चर्चा करें । उससे और कुछ नहीं तो कम-से-कम हमारा मानसिक विकास तो होगा । ‘कला कला के लिए’, ‘कला और जीवन’, ‘मानस-शास्त्र’ और ‘सौन्दर्य-शास्त्र’ आदि जैसे विषयों की चर्चा करो न ? राजनीति का भूसा कूटते रहने से न हमें रोटी मिलेगी और न नौकरी ! इससे तो कुछ साहित्य-सम्बन्धी बातें की जायं । भाषा-शुद्धि के बारे में कुछ कहो, कोई नये शब्द गढ़ो, विज्ञान की परिभाषा निश्चित करो । आप पहले ही बी० ए० हो चुकी हैं, भाभी । उषा भी अब बी० ए० हो गई है । आपकी तरह वह भी अग्निल दर्जे में पास हुई है । अब किसी आई० सी० एस० कलेक्टर से वह विवाह करेगी और इस समय कूटा गया राजनीति का यह भूसा उस विवाह के साथ ही हवा में उड़ जायगा ।”

“आखिर तुम सोच क्या रहे हो, बलवंतराव ?” उषा चिढ़कर बोली, “विवाह ही जीवन का सर्वस्व नहीं है । राजनीति में भी रोमान्स है, समझे ?”

“कैसा रोमान्स ? सूखा या कबाड़खाने का ?” भाभी बोलीं ।

“तुम चुप रहो, जीजी !” उषा बोली, “तुम्हारा विवाह हो चुका है । इस विषय में बात करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं ।”

“मुझे तो अधिकार है न ?” मैंने कहा, “हां, कम-से-कम यहां एक अधिकारी तो है, यही अच्छा है ।”

“तुम्हें कहां से आया अधिकार ?” उषा बोली, “घर में बेकार बैठे रहने-वाले घर-घुसनों को किसी भी विषय में बोलने का अधिकार नहीं ।”

“ऐसा न कहो, उषाजी,” मैंने गंभीरता का भाव लाकर कहा, “मैं कुछ कर रहा था तभी तो भाभी जेल गई ! और भी दो-चार नेताओं को जेल भेजने का श्रेय मुझे ही मिलता है । इस काम में दादा की अपेक्षा मेरी योग्यता किसी कदर कम नहीं । उन्होंने अधिक-से-अधिक कुछ किया तो उन लोगों पर मुकद्दमा चलाया और इजलास में सरकार की तरफ से पैरवी की । पर उनके इन सारे कामों की जड़ मेरी रिपोर्टों में थी, यह न

भूलना तुम । समझीं ?” बोलते समय बीच-बीच में मैं भाभी के चेहरे की तरफ देख रहा था । निर्विकार भाव से वह मेरी बातें सुन रही थीं ।

“तो यह तुमने कोई बड़ा पुरुषार्थ नहीं किया !” उषा बोली, “उस समय तुम किराये के टट्टू थे और किराये का टट्टू बनकर कोई भी ऐसा काम कर सकता है । जब तुम राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लोगे, सैकड़ों लोगों के बीच अपना व्यक्तित्व स्थापित करोगे, तभी तुम्हें इस विषय में बोलने का अधिकार प्राप्त होगा ।”

“तुम शायद यह कर रही हो ?” मैंने पूछा ।

भाभी की ओर देखकर उषा हँस पड़ी और बोली, “इसे बंबई आकर देखो ।”

उस दिन यह विषय वहीं तक रहा । राजनीति और रोमान्स का परस्पर क्या सम्बन्ध है, यह मैं अंत तक न समझ पाया ।

पंडितजी के दौरे का बड़ा असर पड़ा । बम्बई की प्रान्तीय सरकार उस समय पूना में थी । विधान-सभा की बैठकें अभी आरंभ नहीं हुई थीं । प्रान्तीय कांग्रेस पार्टी में कुछ खलबली मची हुई थी । बम्बई प्रान्त की कांग्रेस का नेता कौन हो, इसपर बहस हो रही थी । वैसे नरीमन को नेता होना चाहिए था, परन्तु उनके खिलाफ कुछ शिकायतें थीं, जिसके कारण कांग्रेस पार्टी में विवाद उत्पन्न हो गया था ।

पूना आने पर मेरे जी-में-जी आया । ऐसा तो न लगा कि कुएं से निकलकर एकदम समुद्र में आ गया हूं, पर यह जरूर प्रतीत हुआ कि कुएं से निकलकर एक विशाल तालाब में पहुंच गया हूं । उषा ने जब मुझसे कहा, “बलवंतराव, अब तुम्हारी कूप-मंडूक वृत्ति गायब हो जायगी” तब मुझे वह सच लगने लगा ।

मैंने सोचा कि दादा ने जान-बूझकर ही अपना तबादला पूना करा लिया होगा । पूना आने पर भाभी को भी लगा कि बम्बई नहीं तो न सही, कम-से-कम पूना तो मिला । तसल्ली के लिए गुड़ की जलेबी ही काफी हैं ! पूना आने पर कर्वे हाई स्कूल में अध्यापिका की नौकरी प्राप्त करने की भाभी कोशिश करने लगीं । जब दादा को इसका पता चला तो वह एकदम बरस पड़े, “तुम्हें नौकरी की क्या जरूरत ? हमें किसी बात की कोई कमी

नहीं। वर्तमान परिस्थिति में हम सुख और संतोष में रह सकते हैं। यहां मैं सरकारी अफसर हूं। यदि लोगों को पता लगे कि मेरी पत्नी एक स्कूल में मास्टरनी है तो चार लोगों में मेरी बदनामी होगी।”

“यदि एम० ए० करूं तो क्या हर्ज है?” भाभी ने पूछा।

“इसकी भी क्या जरूरत है?” दादा एकदम चिल्ला पड़े, “क्या जरूरत है एम० ए० पास करने की? आखिर मास्टरनी बनने के लिए ही न? या सिर्फ मेरी बराबरी करने के लिए ही तुम एम० ए० होना चाहती हो?”

भाभी की आंखें अंगारे की तरह लाल हो गईं। उनके होंठ थर-थर कांपने लगे। दादा का उनकी ओर ध्यान न था, इसलिए वह बोलते गये, “कालेज जाने के लिए तुम अब कोई लड़की नहीं हो। हमारा भाग्य ही खोटा है, वरना अभी तक तुम दो बच्चों की मां बन जातीं। फिर एम० ए० पढ़ने की यह बात ही तुम न करतीं।”

भाभी का पारा एकदम नीचे उतर आया। काटे की चुभन कहां हो रही है, यह अब मेरे ध्यान में आ गया।

“फिर इसे क्या करना चाहिए?” उषा ने दादा से पूछा।

“जहां इच्छा है, वहां मार्ग भी है।” दादा बोले, “इस जैसी कितनी ही डिग्रीधारी महिलाएं इस पूना में हैं। वे क्या करती हैं, यह जाकर उनमें पूछो। वे जो कार्य करती हों, वही कार्य यह भी करे। नर्स और मास्टरनी के काम विधवाओं के लिए हैं या अखंड कुमारिकाओं के लिए। खानदानी स्त्रियों के वह काम नहीं।”

दादा के चले जाने के बाद भाभी बोलीं, “ऐसा है हम स्त्रियों का जीवन!”

“ठहरो”, उषा बोली, “स्त्रियों का मत कहो। चाहो तो विवाहित स्त्रियों का कह लो।”

“ऐसा क्यों कहती हो, उषा?” मैंने कहा, “सभी विवाहित स्त्रियों के पति ऐसे नहीं होते। मैं अपनी पत्नी से ऐसा कभी न कहता।” यह सुनकर भाभी हँस पड़ीं। मैंने कहा, “हँसिये नहीं, भाभी।”

“क्या जरूरत है इस चर्चा की?” भाभी बोलीं, “तुम्हें हमारा पहले

का हाल मालूम नहीं है। मैंने तुम्हारे दादा से पहले ही कहा था कि एम० ए० पास होने तक मैं विवाह नहीं करना चाहती। पर तबतक वह रुकने को राजी न थे। विवाह हो जाने के बाद मनुष्य किस तरह बदल जाता है, इसे अविवाहित लड़की नहीं जान सकती और न अविवाहित लड़का ही समझ सकता है।”

“तब तो बात ही खत्म है।” मैंने कहा, “हम दोनों ही इस विषय की चर्चा नहीं कर सकते। फिर भी आप एक काम कीजिये, भाभी, आप अपनी इस बहन का मुझसे विवाह कर दीजिये और फिर दोनों अपने-अपने पति की परीक्षा लेकर देखिये !”

“क्या सब-कुछ प्रत्यक्ष आंखों से देख लेने के बाद भी विवाह ?” उषा बोली, “छिः !”

“मैं अब कालेज में भरती होने की सोच रहा हूँ, भाभी।” मैंने कहा, “नौकरी करने से कालेज में पढ़ना अच्छा। चार-छः साल तो कम-मे-कम वहाँ मजे में कटेंगे और उषा, जिसे ‘कालेज लाइफ’ (कालेज का जीवन) कहती है, वह भी देखने को मिल जायगी !”

“अब बन्द करो ये वाहियात बातें !” उषा बोली, “इस विषय की अब काफी चर्चा हो चुकी। अधिक चर्चा की जरूरत नहीं। कोयले को जितना घिसोगे, उतना ही वह अधिक काला होता जायगा।”

मैं भी फिर खामोश हो गया। बहुत देर तक हम चुप बैठे रहे। विषय बहुत मामूली था, इसमें शक नहीं, परन्तु उसके कारण वातावरण बहुत बिगड़ गया था। मुझे भी यह महसूस हुए बिना न रहा।

पूना आने के बाद से भाभी के मन में ये दो विचार ही चक्कर काट रहे थे। घर में बेकार बैठे रहना उन्हें पसन्द न था। महिलाओं का समाज-सेवा नाम का जो ढोंग है, उससे उन्हें जन्म से ही बड़ी घृणा थी। नौकरी करने का उन्हें पहले से ही बड़ा शौक था। अध्यापिका का काम उन्हें बेहद पसन्द था। उनकी अपनी यह महत्वाकांक्षा थी कि वह स्वयं एक शिक्षा-संस्था चलावें और उसे आदर्श बनावें। अनेक बार उन्होंने मुझसे यह बात कही थी और शायद इसीलिए वह एम० ए० पास करना चाहती थीं। मुझे लगा, दादा द्वारा उनके विचार ठुकरा दिये जाने के कारण वह एकदम

निराश हो गई।

कांग्रेस-शासन शुरू हो जाने के कारण पूना के वातावरण में नई खल-बली शुरू हो गई थी। अर्थ-मन्त्री जमनादास मेहता पहले से ही पूनावालों के दोस्त थे। इसलिए प्रत्येक का यह ख्याल था कि उनकी 'डेमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी' अब अधिक बल पकड़ेगी। माननीय मेहता ने यह घोषणा की थी कि वह अपना आधा वेतन अपनी पार्टी को देंगे, इसीलिए सभी उन पर खुश हो गये थे। (उन्होंने अपना आधा वेतन घोषणा के अनुसार पार्टी को दिया या नहीं, इसका अभी तक किसीको पता नहीं।) पर कांग्रेस-दल में अभी तक कुछ अन्दरूनी कार्रवाई चल रही थी, जिससे जनता बेचैन हो उठी थी।

अब मेरे भीतर का रिपोर्टर हड़बड़ाकर जाग उठा। मुझे लगा, यही मौका ठीक है। बम्बई के दैनिकों के सम्वाददाता यहां हाज़िर थे ही। पूना से भी कई दैनिक निकलते थे। उनमें से किसी एक के द्वार पर दस्तक देने का मैंने विचार किया।

वैसे यहां आखिर मुझे मिलता ही कितना? पर मुझे आमदनी से सरोकार न था। मैं काम चाहता था—अपनी रुचि का काम चाहता था।

और एक दैनिक में मुझे वह मिल भी गया।

अन्त में कांग्रेस और सरकार में समझौता हो गया। साढ़े तीन महीने का शासन समाप्त करके कपूर-मन्त्रि-मण्डल अस्त हो गया। बालासाहब खेर मुख्य मन्त्री हुए। नरीमन के मामले में कांग्रेस-दल में बहुत मतभेद हो गया था, पर बालासाहब खेर जैसे अज्ञातशत्रु और सज्जन व्यक्ति का मुख्य मन्त्री पद के लिए चुनाव होने के कारण सभी सन्तुष्ट हो गये।

मैं अधिकार-ग्रहण के समारोह का मज़ा देखने गया था। उस अवसर पर मन्त्रियों की आरती उतारी गई। उनके तिलक लगाये गए। यह सब देखकर पूनावाले बड़े खुश हो गये। पर ये रस्में मुझे अच्छी नहीं लगीं। इन रस्मों के कारण एक धार्मिक वातावरण वहां उत्पन्न हो गया था, जो कांग्रेस के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं था। सौभाग्य से मन्त्रियों में कोई मुसलमान मन्त्री नहीं चुना गया था, इसलिए सब ठीक रहा। अगर मन्त्रिमण्डल में कोई मुसलमान मन्त्री होता तो तिलक और आरती के समय उसका क्या

रुख होता, यह देखने को मिल जाता। मन्त्रियों में गिल्डरसाहब पारसी थे। पर उनके आचार-विचार प्रायः हिन्दुओं के समान ही होने के कारण उन्हें इस विषय में कुछ अजीब नहीं लगा।

अधिकार-ग्रहण समारोह देखने के लिए भाभी और उषा भी गई थीं। दोनों के मन पर दो प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। प्रत्येक बात की ओर तुच्छता से देखने की उषा की जो वृत्ति थी, उसके अनुरूप वह समारोह उसे अच्छा न लगा।

भाभी बेशक गद्गद हो गई थीं। उस कार्यक्रम को देखते समय उनकी आंखों से आनन्द के आंसू बरस रहे थे और इसलिए उषा उनका मज़ाक उड़ा रही थी। इस समय भी उस समारोह का वर्णन करते समय उनका कण्ठ भर आया था। वह बोलीं, “तुम यह न समझ पाओगी, उषा। मेरी तरह तुम जेल नहीं गई हो। ये सब मन्त्री जेल हो आये हैं, जिन सिपाहियों ने कल इन्हें पकड़कर जेल में ठूसा था, वे सिपाही ही आज जब ६५ डिग्री का कोण बनाकर इन मन्त्रियों को सलाम करते हैं तो यह देखकर मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठता है। पर सुनती हूं, इन मन्त्रियों ने इस प्रकार से सलाम करने की प्रथा को बन्द कर दिया है। अब चपरासी और सिपाही भी नमस्ते करने लगे हैं। उसी तरह एक बात और है। मन्त्रियों का वेतन तीन हजार रुपया महीने है। पर इन्होंने इस लम्बे वेतन को ठुकरा दिया है और अब वह केवल पांचसौ रुपया माहवार पर काम करनेवाले हैं। हर महीने हजार-दो हजार पानेवाले उनके काले और गोरे सेक्रेटरी, जो फौलादी चौखट के आधार-स्तम्भ हैं, पांचसौ रुपये माहवार वेतन पानेवाले इन कांग्रेस-मन्त्रियों की मातहती में काम करेंगे, उनकी आज्ञाओं का पालन करेंगे। इस कल्पना मात्र से ही मेरा हृदय भर आता है।” बोलते हुए वह और भी अधिक गद्गद हो उठीं और उनकी आंखों से खुशी के आंसू बरस पड़े।

वह उस समारोह का बार-बार जिक्र कर रही थीं। उन्हें लग रहा था, जैसे कोई अभूतपूर्व बात हो गई है और बहुतों को भी यही लग रहा था, पर मुझे ऐसा नहीं लगा। संविधान के इस नये कानून के अनुसार मन्त्रि-मण्डल के अधिकार सीमित थे। इसलिए बहुत-से जानकार लोगों का यह ख्याल

था कि कांग्रेस को अधिकार ग्रहण नहीं करना चाहिए। इस कारण कांग्रेस की इस नीति से मुझे भी सन्तोष न था। अन्य लोगों की तरह मुझे भी यही लगता था कि अधिकार-ग्रहण करने के बजाय यदि कांग्रेस सरकार के विरोध में रहती तो अधिक अच्छा होता। मुझे जो यह लग रहा था, उसका कारण यह नहीं था कि मैं राजनीति का कोई विशेष ज्ञान अथवा उसमें दिलचस्पी रखता था, बल्कि एक दर्शक के नाते, मुझे सरकार और कांग्रेस की झपट में मज्जा आता था।

फिर भी भाभी के उल्लास को देखकर क्षण-भर के लिए उनके आनन्द में सम्मिलित हो जाना मुझे अच्छा लगा। उषा पहले से ही विरोध कर रही थी और अगर मैं भी कोई पख निकाल देता तो भाभी के आनन्द पर पानी फिर जाता, जो मैं नहीं चाहता था। इसलिए मैं चुप रहा।

दादा की बात छोड़िये। वह थे सरकारी नौकर। जो भी सरकार हो, वही उनकी सरकार थी। फिर वह सिविलियनों की हो, कपूर की हो या बालासाहब खेर की हो, इसकी उन्हें परवा न थी। सरकारी नौकरों की वृत्ति इतनी क्षुद्र नहीं होती कि उन्हें यह देखकर बुरा लगे कि कल जिन लोगों को हमने जेल भेजा था, वे ही लोग आज शासन के सूत्र हाथ में लेकर बैठे हैं और हमें उनकी आज्ञाओं का पालन करना होगा। अलग-अलग स्वभाव के भिन्न-भिन्न साहब हमेशा बदलते रहने के कारण, ऊपर की हुकूमत बदल जाने का अथवा उसमें परिवर्तन हो जाने का उनपर कोई असर हो, इसका कोई कारण न था। सरकारी नौकरों की यह वृत्ति कि जिस पांत पर गाड़ी जायगी, उसी पांत पर वह चलायेंगे, दादा की भी थी। इसलिए वर्तमान परिवर्तन से न उन्हें आनन्द हुआ, न दुःख।

कम-से-कम खुल्लमखुल्ला कहकर वह कुछ न बताते थे। हो सकता है, मन में उन्हें भी कुछ लग रहा हो, पर उसे बाहर न निकलने देने की वृत्ति उन्होंने ज़रा भी नहीं बदली थी।

उषा बेशक एक-न-एक पख निकालकर भाभी को चिढ़ाने की कोशिश कर रही थी। पर भाभी पर उसके चिढ़ाने का कोई असर नहीं था।

घर खादी के थान आये। दादा ने खादी के कपड़े बनवाये। इतने पर ही भाभी बेहद खुश थीं। यदि भाभी से कोई इससे पहले यह कहता कि

ऐसा 'अत्याचार' उनके घर में कभी होगा तो वह इसे सच न मानती।

मेरा अब रोज़ आफिस जाना शुरू हो गया था। रोज़ विधान-सभा की बैठक में हाज़िर रहना पड़ता था और बाद में प्रेस जाकर रिपोर्ट लिख-कर देनी पड़ती थी। इसलिए घर में मैं बहुत थोड़े समय के लिए ही रह पाता था। उषा भी शहर में बहुत घूमा करती थी। रात को अवश्य हम सब इकट्ठे होते थे। अगर कोई काम आ जाता तो कभी-कभी दादा ही गैरहाज़िर रहते थे। उनके दैनिक कार्य-क्रम में वैसे कोई खास फर्क नहीं हुआ था।

किसी-किसी शनिवार को मैं घर जल्द लौट आता था। इतवार घर से गैरहाज़िर रहने और शहर भर में मटरगश्ती करने का हमारा अपना हक का दिन था। इसलिए शनिवार को जब घर जल्दी लौट आता और घर में अगर भाभी होतीं तो उनसे अपनी निजी बातें करने का मुझे मौका मिल जाता था।

वैसे देखा जाय तो अब निजी बातें कोई रह ही नहीं गई थीं। सारा विरोध समाप्त हो गया था।

पर यह भी कैसे कहूँ ? उषा का साम्यवाद हर विषय में हमारा बक्त बरबाद किया करता था। भाभी की नौकरी करने और एम० ए० पास करने की इच्छाओं को दादा द्वारा ठुकरा दिये जाने के कारण भाभी के मन में अब भी चुभन हो रही थी। इसलिए निजी बातों के कम-से-कम ये दो विषय ज़रूर थे।

उषा बी० ए० पहली श्रेणी में पास हुई थी। उसने पूना में ही एम० ए० की पढ़ाई शुरू कर दी थी। इसलिए अब उसके बम्बई जाने की कोई सम्भावना नहीं थी। उषा का यह कार्य-क्रम दादा की सम्मति से बना था। अपनी पढ़ाई का सारा खर्च वह अपनी जेब से करनेवाली थी। रहने और खाने के लिए उसकी बहन का घर था ही। एक आदमी को खाना खिलाना और रहने के लिए एक कमरा दे देना दादा के लिए कठिन न था। पर मुझे शंका थी कि इस विषय में उन्होंने भाभी से अनुमति ली थी। एक दिन इस शंका का निवारण हो गया।

उस दिन शनिवार था। मैं आफिस से जल्दी लौट आया था। कपड़े

उतारकर एक पुस्तक हाथ में लिये पढ़ने बैठा ही था कि भाभी मेरे लिए चाय लेकर आई। नित्य की भांति चाय रखकर वह गई नहीं, बल्कि वहीं बैठ गई। यह देखकर मैं भी थोड़ा तन गया। चाय आने के बाद भी मैंने पुस्तक पर से अपनी नजर न हटाई।

“अब चाय पी लो न ?” भाभी बोलीं, “ठंडी हो रही है ! कौन-सी किताब पढ़ रहे हो ? क्या इतने खो गये हो उसमें ?”

बाएं हाथ में पुस्तक लेकर दाहिने हाथ से मैंने प्याला उठाया और पुस्तक पर से नजर न हटाकर ही चाय की चुस्की लेने लगा।

“क्या सुना नहीं ? मैं क्या पूछ रही हूं ?” भाभी ने जरा आवाज चढ़ाकर पूछा।

“क्या कहा आपने ?” मैंने पुस्तक से निगाह हटाकर भाभी की ओर देखते हुए पूछा।

“कौन-सी पुस्तक है वह ?”

“एंजिल का सोशलिज्म।”

“अच्छा ? बहुत खूब ! क्या यह प्रेमिका-पूजन हो रहा है ?”

“नहीं, यह बात नहीं। अब पत्रकार के व्यवसाय में पड़ गया हूं। नये-नये लेखकों के नाम कानों में पड़ते रहते हैं। सोचता हूं, उन्हे एक बार पढ़ लूं।”

“अच्छा-अच्छा, पढ़ो !” कहकर भाभी उसी तरह बैठी रहीं।

मैं चाय पी चुका था। फिर भी मैंने अपना यह अभिनय कि पुस्तक में खोया हुआ हूं, अभी तक कायम रखा था। भाभी भी उसी तरह बैठी हुई थीं। बहुत देर तक भी जब वह नहीं गई तो मैंने पुस्तक पर से निगाह हटाकर उनकी ओर देखते हुए कहा, “क्या है, भाभी ?”

“आखिर हमारी तरफ तुम्हारा ध्यान गया तो ? बड़े भाग्य हैं हमारे !” भाभी ने एक गहरी सांस खींचकर कहा, “कोई मेरी परवा नहीं करता। तुम्हारे दादा की नौकरी है। तुम भी नौकरी पर जाते हो। उषा शहर में दिन-भर आवागामी करती रहती है।”

“तो आप भी क्यों नहीं जातीं बाहर और सहेलियां बना लेतीं ?” मैंने हँसकर कहा, “इसके लिए किसीने भी आपपर कोई रोक नहीं लगाई है।”

“हा, यह सच है !” भाभी मेरी ओर न देखकर बोलीं, “ऐसी रोक तो मुझपर नहीं लगी है। पर मैं कहां जाऊं जान-पहचान करने ? उषा के लिए कालेज है। तीन-चार कालेजों में उसे जाना पड़ता है। हर कालेज में उसकी पहचान हो रही है। एक-दो बार उसके साथ भी जाकर देखा, पर वहां ऐसा हो जाता है कि उसकी सहेलियों को मैं उनकी बराबरी की नहीं लगती। इसलिए वह मुझे अपने दल में मिलाने से भिन्नकती हैं। फिर जाऊं कहां ? यहां कोई अच्छा पुस्तकालय भी नहीं। वैसे एक महिला-क्लब है कहने को ! पर वह भी बड़ी दूर है। यदि शाम को घूमने जाना चाहूं तो अकेली जाना मुझे पसन्द नहीं।”

“तो मैं चला करूं क्या आपके साथ ?”

“तुम ?” भाभी ने ठहाका मारते हुए कहा, “तुम ? मेरे साथ ? और इस पूना में ? इज्जत से दिन काटने हैं मुझे यहां !”

“हां। यह भी सच है !” मैंने कहा, “यह शहर भी दकियानूसी ही है, उसी शहर सरीखा, जहां से हम बदलकर आये हैं।”

‘अजी, उससे भी खराब। इसे तुम न जान सकोगे। मैं आज यही तो कहने आई हूं !’ इतना कहकर भाभी रुक गई। जब उन्होंने देखा कि मैंने उनसे आगे कोई सवाल न किया तो थोड़ी देर और रुककर वह बोलीं, “मैं यह कहने आई हूं कि परसों उषा की कुछ सहेलियां यहां आई थीं। आपस में बातें कर रही थीं। मैं उनके दल में शामिल नहीं थी। यह देखकर कि मैं भीतर हूं, उनके मुंह खुल पड़े थे। चूंकि उषा के साथ तुम्हारे दादा रोज शाम को घूमने जाते हैं, इसलिए वे लड़कियां उषा से मजाक कर रही थीं। एक लड़की ने तो सीधा यह सवाल ही पूछा था कि तुम्हारी जीजी किसके साथ घूमने जाती है ? क्या उस रिपोर्टर के साथ ? यह सुनकर मेरा माथा भन्ना उठा।” इतना कहकर वह पुनः रुक गई।

थोड़ा समय बीता और वह कहने लगीं, “फिर भी गनीमत है, जो हम दोनों कभी एक साथ घूमने नहीं गये। और भी कह रही थीं वह।”

“क्या ?” मैंने धीरे-से पूछा।

“उसकी और तुम्हारे दादा की बातें !” भाभी क्रोध से लाल होकर बोलीं, “बड़ी बाहियात बातें थीं वे ! उन्हें सुनकर मुझे लगा कि जाकर

एक-एक का कान पकड़कर उनके मुंह पर चांटा जड़ दूँ। उनके मजाक से उषा ज़रा भी नहीं चिढ़ी थी, उल्टे वह उन्हें उकसा रही थी। उषा ने लड़कियों के मजाक का ज़रा भी प्रतिकार नहीं किया, बल्कि मन-ही-मन निर्लज्ज-सी हँस रही थी। यह देखकर मेरा खून खौल उठा। हम रोज देखते हैं कि उषा और तुम्हारे दादा शाम को एक साथ कभी घर नहीं आते। कभी उषा पहले आ जाती है और कभी तुम्हारे दादा। उषा यह कहकर उन लड़कियों का मुंह बन्द कर सकती थी। पर उसे तो उनका मजाक जैसे गुदगुदा रहा था। उन लड़कियों के चले जाने के बाद जब इस विषय में मैंने उषा से पूछा तो वह हँसने लगी और बोली, “रावसाहब से ही पूछ लो न ?” पर उनसे पूछने की मुझे हिम्मत न हुई।”

हमारी बातें हो ही रही थीं कि दादा आ गये। हम दोनों की ओर देखकर उनकी मुद्रा एकदम बदल गई। कुछ भी न बोलकर वह जीना चढ़कर ऊपर चले गये।

उनके पीछे-पीछे भाभी भी भीतर चल दीं। मैं वहीं बैठा हुआ विचारों में खो गया।

: ८ :

राजकीय वातावरण सर्वत्र शान्त था। अनेक लोगों का ख्याल था कि अब हर जगह खुशी और खुशहाली रहेगी, तो कई लोग ऐसे भी थे, जो कांग्रेस मन्त्रिमंडल का विरोध करने के लिए सभाएं करते थे। विधान-सभा के अधिवेशन सुचारु रूप से चल रहे थे।

रिपोर्टर के काम के साथ-ही-साथ अब मैं थोड़ा सम्पादकीय कार्य भी करने लगा था। हमारे पत्र के सम्पादक यद्यपि स्वयं कम्प्यूनिस्ट थे, पर कांग्रेस के विरोधी न थे। अधिकार प्राप्त होते ही कांग्रेस मन्त्रिमंडल ने बहुत-से कम्प्यूनिस्टों को जेल से रिहा कर दिया था। कांग्रेसी संस्थाओं पर लगी हुई रोक को उठाते समय कम्प्यूनिस्टों द्वारा संचालित मामूली संस्थाओं पर लगी हुई रोक भी उठा दी गई थी। बहुत-से कम्प्यूनिस्ट खादी की पोशाक पहनकर कांग्रेसियों के साथ घूमते हुए नज़र आने लगे थे। इन दो दलों में जो विरोध था, वह प्रायः मिट गया था।

कांग्रेस मन्त्रिमंडल का विरोध करनेवाली प्रमुख पार्टी एक ही थी—

डेमाक्रैटिक स्वराज्य पार्टी। पर उस पार्टी के प्रतिनिधियों की संख्या विधान-सभा में बहुत ही कम थी। मुस्लिम लीग का विरोध था ही। उसी तरह अंबेदकर का भी एक विरोधी दल था। अंबेदकर के दल ने 'स्वतन्त्र मजदूर दल' नाम धारण कर लिया था। परन्तु प्रत्यक्ष मजदूरों से उस दल का कितनी आत्मीयता का सम्बन्ध था, यह बेशक एक प्रश्न ही था। अपने को प्रगतिशील कहलानेवाले कुछ लोग भी अंबेदकर के इस दल में घुस गये थे, पर उनकी संख्या अंगुली पर गिनी जाने लायक से भी कम थी। प्रत्यक्ष मजदूर-वर्ग कांग्रेस के प्रतिकूल था। मजदूरों के लिए क्या करना चाहिए, इसकी चर्चा मन्त्रिमंडल में हो रही थी। श्रम-विभाग स्वयं मुख्य मन्त्री के पास था और गुलजारीलाल नंदा जैसे उनके पार्लमेंटरी सेक्रेटरी होने के कारण मजदूरों के क्षेत्र में कुछ-न-कुछ परिवर्तन होगा, ऐसी बहुतों को आशा थी।

रिपोर्टर के नाते बहुत-से राजनैतिक नेताओं से मेरा परिचय हो रहा था। जो लोग पत्रकारिता के व्यवसाय में थे और आम लोगों की नज़रों में जो महत्वपूर्ण व्यक्ति नहीं माने जाते थे, वे लोग भी राजनीति में कितने निपुण होते हैं, इसका मुझे अनुभव होने लगा था। उनके साथ रहने के कारण मुझे भी इस विषय का बहुत-कुछ ज्ञान होने लगा। फिर भी मुझे इतनी सामर्थ्य प्राप्त नहीं हो पाई थी कि उस विषय पर मैं साधिकार कोई चर्चा कर सकता।

प्रान्तीय सरकार की बैठक पूना से उठकर बम्बई गई और मेरा काम कम हो गया। अब मैं अपने दैनिक का उपसम्पादक हो गया था। रिपोर्टर के काम से मुझे छुटकारा मिला। इसलिए रिपोर्ट लिखकर दादा को देने की जरूरत नहीं रही। अब तो सारा समय ही बदल गया था। हमारे घर खादीधारी लोगों की आमदरफ्त शुरू हो गई थी। कुछ खादीधारी मुझसे मिलने भी आने लगे थे। स्त्रियां भाभी से मिलने आती थीं। जिन लोगों का यदि पहले कोई नाम लेता तो उस नाम लेनेवाले को भी हमारे घर में घुसने नहीं दिया जाता था, वे लोग अब स्वयं दादा के पास ही आते थे। और सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि वे लोग आकर दादा पर इस कदर रौब गांठते थे, जैसे कोई बहुत बड़े अफसर हों और दादा भी

उनके रौब को मान लेते थे ।

समाचार-पत्रों की तो इन दिनों जस बाढ़-सी आ गई थी । अकेले पूना से कोई सात-आठ दैनिक निकलते थे । इनके अलावा बम्बई के दैनिक थे ही । पूना और बम्बई से बीसों साप्ताहिक निकलते थे । हमारे घर अखबारों के रोज़ ढेर लगे रहते । जिन अखबारों को पढ़ने के लिए भाभी पहले वेचैन रहती थीं, वे और उन्हींके समान और भी अनेक अखबार आज घर में मौजूद होते हुए भी वह उनकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखती थीं ।

बात यह थी कि उनका पहले का-सा वह जोश अब नहीं रह गया था ।

विरोध के कारण ईर्ष्या बढ़ती है और जब विरोध मिट जाता है तो ईर्ष्या की तीव्रता भी एकदम कम हो जाती है । इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे इस समय हो रहा था । कांग्रेस की राजनीति में दखल देने के लिए हमेशा तड़पनेवाली भाभी पति का कोई विरोध न रहने के कारण अब उदासीन हो गई थीं । इसका मतलब यह नहीं कि कांग्रेस के प्रति उनका अभिमान जाता रहा था । पहले बहुधा वह यह नहीं कहा करती थीं कि कांग्रेस द्वारा अधिकार ग्रहण कर लेने से जनता का कल्याण होगा । परन्तु जब कांग्रेस ने अधिकार ग्रहण कर लिया तब उनके मत बदल गये थे । फिर भी बहुमत होने के बाद अधिकार ग्रहण न करके अधिकारारूढ़ मन्त्रिमंडल का विरोध करते रहने में ही कांग्रेस की प्रतिष्ठा में चार चांद लग जाते, ऐसा अभी भी उन्हें लगता ।

मैं जब चारों ओर निगाह डालता तो मैं भी यही सोचता । बहुजन समाज में कांग्रेस की प्रतिष्ठा पहले से ही अधिष्ठित थी । उसका यह स्थान अभी तक डगमगाया नहीं था । परन्तु कांग्रेस-विरोधी समाचार-पत्रों की अब पांचों उंगलियां घी में हो गई थीं । जो अखबार किसी समय नरीमन को गालियां देते थे, वे ही अब उनका पक्ष लेकर कांग्रेस हाईकमांड पर कीचड़ उछालने लगे थे । पूना के प्रमुख पत्र बहुधा कांग्रेस के खिलाफ ही थे । एक ही पत्र था काका लिमये का 'ज्ञानप्रकाश', जो विरोधी दल के पक्ष का होते हुए भी कांग्रेस का विरोध नहीं करता था, बल्कि समय-समय पर कांग्रेस मन्त्रिमंडल की प्रशंसा भी करता था ।

इस परिस्थिति को देखकर ही भाभी हताश हो गई थीं। एक दिन वह बोलीं, “अधिकार ग्रहण करने के समान दूसरा पातक नहीं। जिसके हाथ में अधिकार होता है, उसकी ओर सशंक दृष्टि से देखना स्वाभाविक ही है। जो अंध-भक्त होते हैं, वे लोग अधिकार-ग्रहण करनेवाले व्यक्तियों के गुण और अवगुणों की ओर भले ही कोई ध्यान न दें, पर मुझे विश्वास है कि अधिकार ग्रहण कर लेने के कारण विरोधियों की ताकत बढ़े बिना न रहेगी। सच है या भूठ, यह मैं नहीं कह सकती, पर मैंने सुना है कि गांधीजी भी अधिकार-ग्रहण का विरोध करते थे। अंतिम अधिकार जबतक हमारे हाथ में नहीं हैं, तबतक दूसरे दर्जे के अधिकारों को ग्रहण कर लेना मूर्खता ही है।”

“शब्द ज़रा कड़ा हो गया है, भाभी।” मैंने कहा।

“शब्द कड़ा भले ही हो, पर वह ठीक है।” भाभी बोलीं, “मैं फिर कहती हूँ कि यह मूर्खता ही हो गई है। आज या कल यह परिस्थिति हमें पीड़ा दिये बिना न रहेगी। कोई मुझसे यह कह सकता है कि यह सवाल बड़े-बड़े लोगों का है और बड़े लोगों को नाम धरने का मुझ-जैसे साधारण लोगों को क्या अधिकार है। पर मैं कहती हूँ कि यह सवाल बड़ों का है ही नहीं, साधारण लोगों का है। यदि हम जैसे साधारण लोगों के मत लिये जाते तो मुझे यकीन है कि मंत्रिमंडल बनाने के लिए साधारण लोग कांग्रेस का विरोध ही करते। यह जानते हुए भी कि जो अधिकार मिल रहे हैं, वे अधूरे हैं, किसी लालची की तरह उन्हें स्वीकार कर लेने में कांग्रेस ने भूल कर दी है, इसमें शक नहीं। साधारण बातों को साधारण लोग ही समझ सकते हैं। साधारण बातें असाधारण लोगों की समझ में नहीं आतीं और साधारण लोगों की संख्या ही अधिक होती है। साधारण मनुष्यों की दृष्टि से देखनेवाला असाधारण मनुष्य एक ही है—महात्मा गांधी, पर आज-कल उनकी कोई नहीं सुनता। जो बड़े लोग हैं, वे सब ऊपर देखकर चल रहे हैं और इस तरह चलने के कारण किसी दिन उन्हें ऐसी ठोकर लगेगी...”

“यह क्या कह रही हो, भाभी?” मैंने कहा, “कोई सुनेगा तो कहेगा, सिपाही की बीबी बोल रही है।”

“बिल्कुल सच कह दिया तुमने। सिपाही की बीवी ही बोल रही है, ‘इन्स्पेक्टर’ की नहीं। क्या तुम यह नहीं जानते कि कल जो ‘रावसाहब’ था, वह ‘साहब’ आज एक मामूली सिपाही-सा हो गया है?”

“आप कुछ भी कहें, भाभी,” मैंने कहा, “विरोध करने की आपकी आदत ही हो गई है। उसके बिना आपको चैन ही नहीं पड़ता। आपका स्वभाव ही असन्तोषी है।”

“बिल्कुल ठीक कहा तुमने,” भाभी बोलीं, “सौ प्रतिशत जबतक मेरे पल्ले नहीं पड़ जाता, तबतक मुझे सन्तोष नहीं होता। निन्नानवे प्रतिशत पर भी मुझे सन्तोष न होगा। मैं उस एक के लिए लगातार लड़ती रहूंगी, और जबतक वह एक मुझे पूर्ण रूप से नहीं मिल जाता, तबतक मेरी लड़ाई बन्द नहीं होगी।”

“आपको तो मंत्रिमण्डल में सम्मिलित कर लेना चाहिए था।” मैंने हँसकर कहा, “फिर देखता आप कैसा काम करतीं?”

भाभी बड़े जोर से हँस पड़ीं, बोलीं, “मैं इतनी बेवकूफ नहीं, जो इस ठूठे मंत्रिमण्डल में शामिल हो जाती। और फिर हम औरतों को मंत्रिमण्डल में लेता ही कौन है?”

“क्यों? हंसा मेहता जो हैं!”

“हां, वह हैं। पर वह पार्लमेंटरी सेक्रेटरी हैं, मन्त्राणी नहीं। यदि उन्हें भी मन्त्राणी बना देते और जो शिक्षा-विभाग अभी उनके पास है, वही उन्हें सौंपकर, उन्हें शिक्षा-मन्त्री का पद सौंप देते तो क्या बिगड़ जाता? पर यह होगा नहीं। इंग्लैण्ड में, जहां के स्त्री-दाक्षिण्य पर तुम पुरुषों को इतना नाज़ है, जब मजदूर-पक्ष अधिकारारूढ़ था, तब एक स्त्री थी मंत्रिमण्डल में। पर वह भी वहां अधिक दिन नहीं टिक पाई। पुरुष यह कभी बरदाश्त ही नहीं कर सकते कि कोई स्त्री उनकी बराबरी से शासन करे।”

यह देखकर कि चर्चा का प्रवाह दूसरी तरह मुड़ रहा है, मैंने ही वह विषय छोड़ दिया।

उषा बड़ी खुश थी। विरोध करने के लिए उसे अब अच्छा मौका मिल गया था। वह जब कांग्रेस को गालियां देने लगती, तब भाभी अपने मुंह से एक शब्द भी न निकालतीं। वस्तुस्थिति और उनके अपने मतों में जो

अन्तर पैदा हो गया था, उसके कारण उनकी घुटन बढ़ गई थी।

पर इस समय उषा की बातों का विरोध स्वयं दादा कर रहे थे, जो बिल्कुल अकल्पित बात थी। कांग्रेस मंत्रिमण्डल के खिलाफ वह कुछ भी सुनने को तैयार न थे। कांग्रेस मंत्रियों के विरुद्ध यदि कोई थोड़ा भी कहता तो वह उनसे बरदाश्त न होता था। तात्त्विक विवाद के लिए वह कभी तैयार न रहते। वह दलीलें-वलीलें नहीं जानते थे। परन्तु जब उषा कांग्रेस मंत्रिमण्डल का विरोध करने लगती तो वह अपनी पुलिसवाले की डांट-फटकार दिखाकर उसे वह चर्चा बन्द कर देने के लिए मजबूर कर देते।

एक तटस्थ दर्शक के नाते इस असंगति को देखते समय मुझे बड़ा मजा आया करता। वैसे देखा जाय तो मैं किसी भी पार्टी का न था, फिर भी पहले से ही भाभी के मतों का मुझपर सिक्का जम गया था। उनके इस समय के नये मत भी मेरे मन पर अंकित होने लगे थे।

कभी-कभी मेरे मन में प्रश्न उपस्थित होता—क्या यह व्यक्ति-पूजा का प्रभाव है? मुझे भाभी की बातें क्यों मान लेनी चाहिए? उषा जितने जोश के साथ समाजवाद की बातें करती थी, उतना आवेश कांग्रेस की चर्चा करते समय भाभी में नहीं रहता है, पहले भी नहीं रहता था। इसके बावजूद उषा का समाजवाद मेरे मन पर कोई प्रभाव न डाल सका था। और इसलिए उपरोक्त प्रश्न मेरे सामने उपस्थित हो गया था। इसके सिवा उषा को भी मेरे प्रति कोई बड़ा आकर्षण न था और मेरी दृष्टि में भाभी मुझे 'अंधे की लकड़ी' थीं।

इसीलिए मुझे कभी-कभी यह भी लगता कि क्या मैं अपने-आपको हीन समझ रहा हूँ? या कांग्रेस के प्रति मैं श्रद्धा रख रहा हूँ? पर मैं इसे अपनी अंध-भक्ति भी कैसे कहूँ?

कांग्रेस की वर्तमान राजनैतिक चाल, जिसका कि भाभी इस समय विरोध कर रही थीं और जो अब मुझे भी नहीं जंच रही थी, क्या इसलिए नहीं जंच रही थी कि भाभी के प्रति मेरे मन में आदर था या स्वयं मेरे अपने विचार से वह मुझे ठीक नहीं लग रही थी?

विधान-सभा के सब अधिवेशन मैंने देखे थे। मुझे दीख रहा था कि

प्रायः सभी विरोधी दलों का विरोध पग-पग पर बढ़ रहा था। हम पत्रकार जब आपस में चर्चा करते तो हमारे मत भी बहुधा इन विरोधियों के ही अनुकूल होते। मुझे लगा कि क्या इसीलिए मुझे भाभी का मत जंचने लगा ? ये सब बेकार के विचार थे। अपने दिमाग से इन्हें निकाल देने का निश्चय करके मैं फिर अपने काम में लग जाता।

उस दिन भाभी उदास चेहरा किये बैठी हुई थीं। मैं आफिस से आया और देखा तो उषा घर नहीं थी, वैसे उस समय वह हमेशा घर में रहती थी। मेरे आने के कुछ समय बाद ही वह घूमने जाया करती थी। दादा का घर में रहने का कोई समय निश्चित नहीं था।

भाभी को उदास देखकर मैंने पूछा, “क्या हुआ भाभी ?”

उनका ध्यान किसी दूसरी तरफ था। वह एकदम चौंक पड़ीं, बोलीं, “क्या कहा तुमने ?”

मुझे आश्चर्य हुआ। मैं आ गया था, इसका भी शायद उन्हें पता न था। मैंने कहा, “ऐसी क्यों बैठी हैं आप ? आज कोई खास बात हो गई है क्या ?”

“नहीं, कुछ नहीं।” कहकर, उन्होंने कांपती हुई दीर्घ सांस छोड़ी।

“कुछ कैसे नहीं ?” कहकर मैंने एक कुर्सी खींची और उनके पास जाकर बैठ गया, “मैं आया, यह भी आपने नहीं देखा। आपसे प्रश्न किया, वह भी आपने नहीं सुना। क्या हुआ है आपको ?”

एक क्षण के लिए रुककर भाभी बोलीं, “मेरा काम करोगे, लाला ? उषा के आसार आजकल कुछ ठीक नहीं दिखाई दे रहे हैं। कहीं कुछ गड़बड़ है। कालेज से आने के बाद किताबें फेंककर वह कहां जाती है, कहां रहती है, क्या करती है, इसका कुछ भी पता नहीं लगने देती। पहले पूछने पर वह बता दिया करती थी, अब अगर पूछती हूं तो जवाब नहीं देती। वैसे यह बात मुझे तुमसे नहीं कहनी चाहिए था। पर क्या उसपर नज़र रखोगे ? लड़की के ये रंग-ढंग देखकर मैं बड़ी चिन्तित हो उठी हूं।”

मैं स्तब्ध रह गया। जरूर कुछ दाल में काला है। वरना भाभी मुझसे इस प्रकार का काम करने को न कहतीं। मैं सोच रहा था। और भी कुछ पूछने के लिए मुंह खोल ही रहा था कि उषा जल्दी-जल्दी भीतर आई। आते

ही धड़ाधड़ जीना चढ़कर ऊपर चली गई। भाभी देखती रहीं। बड़ी दयनीय दृष्टि से उन्होंने मेरी ओर देखा और पुनः जीने की ओर निगाह फेंकी। क्षण-भर के लिए हम दोनों ही जीने की ओर चुपचाप देख रहे थे कि उषा पुनः उसी तरह जल्दी-जल्दी जीना उतरती हुई नीचे आई और पुनः बाहर जाने लगी।

“ठहरो उषा !” भाभी डांटकर बोलीं।

उषा दरवाजे में रुक गई। पीछे मुड़ी और भाभी का कोई लिहाज न करके उनकी ओर देखती हुई बोली, “क्यों, क्या है ?”

भाभी शान्ति से बोलीं, “अभी बाहर से दौड़कर आई हो, दौड़ती हुई ऊपर गई और अब फिर दौड़ती हुई कहां जा रही हो ? क्या है यह ?”

“क्या ..क्या ?” उषा चिढ़कर बोली, “तुम्हारे ये सवाल मुझे पसंद नहीं हैं, जीजी !”

“यह क्या कह रही हो, उषा ?” भाभी बोलीं, “जब मेरे घर में रह रही हो तो मेरी ही इच्छानुसार तुम्हें चलना होगा ?”

“क्या तानाशाही का यह पहला पाठ मुझे पढ़ा रही हो ?” नाक फुलाकर उषा बोली, “मैं कोई मेमना नहीं हूं ?”

“बेशक मेमना नहीं हो।” भाभी बोलीं, “आर्य-कन्या हो तुम, यह मैं जानती हूं।”

“नहीं।” उषा चिढ़कर बोली, “मैं आर्य-कन्या नहीं, हिंदू महिला नहीं, भारतीय बाला नहीं, स्वतंत्र दुनिया की एक स्वतंत्र इकाई हूं। भेदा-भेद मैं नहीं मानती।”

“पहले दुनिया को आजाद तो हो जाने दो।” भाभी बोलीं, “पहले हमारी मातृभूमि तो स्वतंत्र हो जाय। फिर करेंगे हम स्वतंत्र इकाइयों की बातें !”

उषा एकदम भाभी के सामने जाकर खड़ी हो गई और हाथ मटकाती हुई बोली, “यह मजाक नहीं है, मिसेज़ सुलेखा हेगड़े ! मैं तुम्हारी गुलाम नहीं और न जंजीर से बंधी पालतू कुतिया हूं !”

“बैठो वहां उस कुर्सी पर।” अधिकारपूर्ण ढंग से सामने की कुर्सी की ओर इशारा करते हुए भाभी बोलीं।

उनकी वह शान्त और गंभीर आज्ञा होते ही अनजाने उषा कुर्सी पर जाकर बैठ गई।

“अब सुनो।” भाभी बोलीं, “पिताजी ने तुम्हें मेरे घर भेजा है।”

“नहीं!” उषा बोली, “तुम्हारे घर नहीं, रावसाहब के घर।”

“बात एक ही है!” भाभी मुस्कराकर बोलीं। अब उनका पहले का सारा जोश जाता रहा था। बड़ी बहन छोटी बहन से बोलने लगी थी। “याने मेरे ही घर। वह और मैं दो नहीं!”

“यह तुम्हारा भ्रम है।” उषा बोली, “विवाह होने के बाद पति और पत्नी के एकजीव हो जाने की वह पुरानी कल्पना अब भूल जाओ। अब दोनों कभी एकजीव नहीं होते। मैं यह अच्छी तरह जानती हूँ। कम-से-कम तुम दोनों तो एकजीव नहीं हो। तुम दोनों अभी खेल खेल रहे हो और किसी भी तरह अभी उस खेल का फैसला नहीं हो रहा है। कान खोलकर सुन लो, सुलू जीजी। तुम अपने ही मनोराज्य में मत खोई रहो। अब मैं कोई दूध-पीती बच्ची नहीं। कल मैं एम० ए० हो जाऊंगी। प्रोफेसर हो जाऊंगी। लोगों को बी० ए० और एम० ए० बनाने का अधिकार मेरे हाथ में आ जायगा। तुमने मुझे समझा क्या है? मुझपर तुम रौब दिखाती हो?”

“नहीं उषा,” भाभी शान्ति से बोलीं, “मैं डरती हूँ अपने कर्म से। तुम्हें उसकी परवा नहीं। पर कल यदि कुछ भला-बुरा हो जायगा तो पिताजी मुझे ही दोष देंगे; न कि तुम्हें या तुम्हारे रावसाहब को। अब बताओ दौड़ती हुई क्यों आई और उसी तरह फौरन दौड़ती हुई कहाँ जा रही हो?”

“सुनो।” उषा उतनी ही गंभीरता से बोली, “दौड़ती आई इसलिए कि यहां रहती हूँ और दौड़ती हुई बाहर जा रही हूँ, इसलिए कि मुझे बाहर जाना है।” इतना कहकर, वह झट-से उठ पड़ी और आंचल फड़फड़ाती हुई एकदम बाहर चल दी।

एक क्षण भाभी उसी तरह चुप बैठी रहीं। पुनः कांपती हुई आह भरकर मेरी ओर मुड़कर बोलीं, “देखा?”

मैं क्या उत्तर देता? उषा का स्वभाव मैं जानता था। जड़ में कुछ न होते हुए भी शून्य पर हिमालय खड़ा करने की उसकी आदत मुझे मालम

थी। मैं यह कैसे सोचता कि जो मैं जानता था, उसे भाभी नहीं जानती थी? मैंने कहा, “देखिये भाभी, उषा का स्वभाव ही ऐसा है। आपको चिढ़ाने में उसे मजा आता है। इसमें कोई विशेष बुरी बात होगी, ऐसा कम-से-कम मुझे तो नहीं लगता।”

“तुमसे बात करना ही व्यर्थ है।” कहकर भाभी गुस्से-में भरकर उठ खड़ी हुई और चली गई।

बहुत दिनों के बाद आज दादा हम लोगों के साथ भोजन कर रहे थे। उषा बड़ी खुश थी। दादा को लक्ष्य करके वह बोली, “सुना रावसाहब, हम लोगों ने यहां एक स्वाध्याय-मंडल खोला है। वहां बहुत-से लड़के और लड़कियां इकट्ठा होते हैं। कई विषयों पर चर्चा होती है। एक बार आप भी आइये हमारी क्लास देखने।”

“निजी तौर से आऊं या सरकारी अफसर के नाते ?” दादा ने पूछा।

“किसी भी नाते से आइये !” उषा खिलखिलाकर हँसती हुई बोली, “अब नाते का यह भेद ही खत्म हो गया है।”

“क्या नये शासन के कारण ?” मैं बीच ही में बोल उठा।

“तुम चुप रहो।” मुझपर आंखें निकालकर उषा बोली और तुरन्त ही दादा की ओर मुड़कर कहने लगी, “कल आप कांग्रेसवालों को जेल में ठूस रहे थे और अब उन्हींके हुक्म से आपने हम कम्यूनिस्टों को जेल से रिहा कर दिया। कौन कह सकता है, कल यह शासन हमारा हो जायगा और फिर हमारे हुक्म आपको मानने होंगे। कांग्रेस का महत्व कितना भी बढ़ा हुआ हो, फिर भी यह साफ दीख रहा है कि वह पूंजीपतियों से दबी हुई है। कल जहां हमने पूंजीवाद खत्म कर दिया कि कांग्रेस का कोई महत्व ही न रहेगा।”

“और साम्राज्यवाद ?” मैंने बीच में ही कहा।

“तुम चुप रहो जी !” एकाएक मुझपर भल्लाकर उषा चिल्ला उठी, “जिस विषय को तुम समझते नहीं, उस विषय में अपनी टांग न अड़ाया करो ! हां, तो रावसाहब, कल अगर कांग्रेस का महत्व जाता रहा, मजदूर और किसानों की हुक्मत आ गई, जनता का राज्य स्थापित हो गया तो

आपको हमें भुक्कर सलाम करना होगा।”

“अच्छा ! ऐसी बात है ?” भाभी हँसकर बोली, “इनसे भुक्कर सलाम करवाने के लिए ही क्या तुम समाजवाद चाहती हो ? मजदूर और किसानों के राज्य की बात करती हो, पर कभी गई थीं किसी कारखाने में, किसी मिल में ? अँगन के तेल से तुम्हारे कपड़े गंदे हुए थे कभी ? भट्टी के सामने जाकर कभी खड़ी हुई थीं और वहाँ खड़े हुए पसीना निकला था कभी तुम्हारे वदन से ? इस जन्म में कभी खेत भी देखे हैं तुमने ? घुटने-भर कीचड़ में खड़े होकर धान का रोपा लगाया था तुमने कभी ? कभी हल देखा था अपनी आँखों से ? कटनी, बोनी, मिसाई की थी कभी जिन्दगी में ? हथौड़ा और हंसिया की बातें करती हो, पर मुट्ठीभर भी घास कभी काटी थी हंसिये से ? या हथौड़े के दो हाथ मारे थे क्या कभी तपे हुए लोहे पर ? मजदूर और किसान की लम्बी-चौड़ी बातें हाँकती हो ? सिर्फ़ रूसी किताबों के अंग्रेज़ी अनुवादों को पढ़कर ही मजदूर और किसानों का नाम लेने में शर्म नहीं आती तुम्हें ? जार्जट की महीन साड़ियों में लिपटी हुई, ऊँची एड़ीवाले जूते पहनकर, मुट्ठीभर क्रीम और पाउडर चेहरे पर पोतकर, सौ फुट चौड़ी सड़क पर मस्ती से कूदते हुए जाने की अपेक्षा, साल-दो साल किसी किसान के घर के कालेज की पढ़ाई करके एक बार एम० ए० होकर, किसानों की माँ बनो और तब अपना स्टडी सर्कल बनाओ । स्टडी सर्कल का स्थान गाँव के खेतों में है, कारखाने की जलती हुई भट्टी में है, जंगल की ओलती में है, सड़क की नाली में है, पर चार मंजली इमारत की हवादार अटारी में वह निश्चित ही नहीं है ! मजदूर और किसान के उद्धार की डींग मारती हो ! और क्या तुम लोग मटन-मुर्गी खाकर भूखे मजदूर और किसानों की राजनीति चलाओगे ? पूरे आठ दिन उपवास करो महीने में । अपनी पसलियाँ बाहर उभर आने दो, और फिर धूप से तपी हुई जमीन में हल चलाकर देखो । भट्टी और मशीनों के सामने खड़े होकर भूखे पेट काम करके देखो और फिर किसानों और मजदूरों का नाम लो । जैसे वह एक नरमदलवाले गरीबों के नेता बने फिरते हैं, उसी छाप के तुम लोग भी हो सिर्फ़ आरामकुर्सी के खटमल, लड़ाकू !”

“कह चुकीं ?” उषा बोली, “हो गया समाप्त तुम्हारा भाषण ?”

“नहीं।” भाभी बोली, “यह तो मेरे भाषण की प्रस्तावना है। समाप्त होने के लिए तो बहुत समय लगेगा, कई साल लग जायेंगे !”

“तो क्या इतने वर्षों तक तुम बोलती ही रहोगी ?” दादा बोले।

दादा की ओर देखकर भाभी मुस्काई और, बोलीं “मैं उषा से कह रही हूं। सच पूछा जाय तो मुझे कहना ही नहीं चाहिए था। पर जब ये बेवकूफ लड़कियां किसानों और मजदूरों के उद्धार की बातें करने लगती हैं तो अपनी जीभ पर मेरा अधिकार नहीं रह पाता। बचपन में मैं दस साल अपने नाना के घर रही थी। मेरी ननिहाल एक गांव में है। वहां के खेतों में खेलने-कूदने में मेरा बचपन बीता। मैंने स्वयं हाथ में हल न पकड़ा हो, पर हल के पीछे-पीछे कीचड़ में चलने के कारण मैंने नाना के हाथ की चपतें खाई हैं। खलिहान में मैं लौट जाती थी, इसलिए करीब-करीब रोज ही मुझे पिटना पड़ता था। कारखाने मैंने नहीं देखे। कारखाने में यों ही एक चक्कर लगा आना कारखाना देखना नहीं कहा जा सकता, वैसे मैंने मिलें भी देखी हैं, परन्तु खेतों के सुख-दुःख जिस तरह मुझे चखने को मिले, उस तरह मिल-मजदूरों के सुख-दुःखों के आत्मसात होने का मुझे कोई अनुभव नहीं हुआ। बचपन की याद बहुधा कोई भूलता नहीं। इसलिए खेतों की वह स्मृतियां अभी तक मेरे हृदय में जाग्रत हैं और इसीलिए मुझे इतना बोलना पड़ा। जो भी मैंने अभी कहा है, सिर्फ उषा के लिए कहा है। मैं इसलिए नहीं बोली हूं कि उषा के मन पर मेरी बातों का कोई प्रभाव पड़े। बोलने की स्फूर्ति हुई, जोश आया और बोल गई। मेरी बातों में आपके ध्यान में रखने योग्य कुछ भी नहीं है।”

उषा की ओर मुंह करके वह बोलीं, “और तुम भी मेरी बातों को भुला देना, उषा।”

“क्या मैं रख लूं उन्हें अपने ध्यान में ?” मैंने पूछा, “मुझे लगता है कि आपकी बातों में बहुत-कुछ बातें ऐसी हैं, जो मुझे ध्यान में रखनी चाहिए। इसीलिए पूछ रहा हूं।”

“लगता है न ?” भाभी ने मेरी ओर मुड़कर मुझे ताकते हुए कहा, “यदि रख सकते हो तो रख लो ध्यान में, वरना तुम भी भूल जाओ। मेरा किसीसे कोई आग्रह नहीं।”

इसके बाद कोई कुछ न बोला। भोजन के रंग में भंग हो गया था। उषा की मुद्रा से मुझे लगा कि वह भीतर-ही-भीतर बहुत भड़की हुई होगी। उत्तर के लिए प्रति-उत्तर देने में वह बड़ी माहिर थी। पर इस समय उसने भाभी को कोई मुंह-तोड़ जवाब क्यों नहीं दिया, इसपर मुझे आश्चर्य हुआ।

इसके बाद उषा ने हमारे सामने अपने स्टडी सर्कल का कभी नाम न लिया। उसका नित्य-क्रम उसी प्रकार जारी था। उस दिन के बाद से भाभी ने उससे कभी नहीं पूछा कि वह कहां जाती है और क्या करती है। पर मेरी जिज्ञासा अवश्य जाग्रत हो गई थी। मेरे मन में बार-बार आ रहा था कि बुद्धिमानों के उस स्टडी-सर्कल में मैं भी एक बार जाकर देखूं।

मौका सामने था, परन्तु उषा से मैं जितना डरता था, उसकी अपेक्षा भाभी कहीं मुझसे नाराज न हो जायं, इसका डर मुझे अधिक था। इसलिए मैं अपनेको रोक रहा था।

घर की यह उदासीनता मुझे असह्य हो उठी। लगा, इस रुके हुए पानी को फोड़कर एक बार बहा देना चाहिए। इसके बिना हमारे घर का वातावरण निर्मल नहीं होगा।

और एक दिन मैंने यह मौका साधा।

: ६ :

घर के विषम वातावरण के बारे में उषा से ज़रा चर्चा आते ही वह उछल पड़ी। बोली, “तुमने तो जैसे मेरे मुंह की बात छीन ली। बिना देखे राय देने की मेरी जीजी की बड़ी बुरी आदत है।”

“मुझमें वह आदत नहीं है।” मैंने गंभीरता से कहा, “मैं एक विद्यार्थी हूं। मुझे अभी बहुत पढ़ना है। पढ़ने का मौका खो देना मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं तो उसी दिन कहनेवाला था। पर भाभी बात को जाने कहां-से-कहां उड़ा ले गईं। मुझे उनकी बातें ज़रा भी अच्छी नहीं लगीं। सोच रहा था, आज या कल तुम खुद मुझसे पूछोगी। इस आशा से अभी तक चुप रहा। पर देखता हूं, कुछ दिनों से तुम सभी बिल्कुल खामोश हो गये हो। इसलिए बात करने की मुझे हिम्मत ही नहीं हो रही थी। अंत में आज जी कड़ा किया और पूछ लिया। फिर भी डर रहा था कि जाने क्या जवाब

मिलता है।”

“अब तो डर भाग गया न ?” उषा कहकहा लगाकर बोली, “किसी कार्य के प्रति यदि उत्साह है तो उस कार्य से डरकर भाग जाने के समान दूसरा गुनाह नहीं। अब तो यकीन हो गया न ?”

“भला यह भी क्या कोई पूछने की बात है ?” मैंने हर्षविभोर होकर कहा, “अब पछता रहा हूं कि इतने दिन यूं ही व्यर्थ चले गये।”

विद्यार्थियों का यह स्टडी-सर्कल, जिसे स्वाध्याय-मंडल भी कहते थे, उन्हीं विद्यार्थियों में से एक विद्यार्थी के कमरे में हुआ करता था। एक दिन मैं उसमें गया। इस मंडल में छात्रों और छात्राओं की संख्या का परिमाण अस्सी और बीस प्रतिशत था। प्रत्यक्ष चर्चा करने के वजाय इस कक्षा में शोर-गुल ही अधिक होता था।

पहले मुझे शक हुआ कि क्या हमेशा यही होता रहता है यहां। परन्तु थोड़ी देर के बाद एक गम्भीर दीखाई देने-वाले विद्यार्थी के आ जाने के कारण सारा कोलाहल शान्त हो गया। नवागत विद्यार्थी की मुद्रा से लगता था कि वह मंडल के विद्यार्थियों का नेता है और जितना वह सुन्दर था उतना ही वह बुद्धिमान भी जान पड़ता था। दूसरों पर अपना प्रभाव डालने की कला उसे पूर्ण रूप से सिद्ध थी। समाजवाद के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर यहां चर्चा होती थी। उन्हीं पहलुओं में से एक महत्वपूर्ण पहलू आज की चर्चा का विषय था। उस पहलू पर पहले उषा को बोलना था। उषा ने चर्चा शुरू की। उसने बड़े अच्छे ढंग से विषय का विवेचन किया, इसमें शक नहीं। पर बोलते समय क्षण-क्षण में वह प्रश्नार्थक मुद्रा से उस नेता की ओर क्यों देख रही थी, यही मैं नहीं समझ पा रहा था। शाला के इन्स्पेक्टर जब कक्षा का मुआइना करने आते हैं, और किसी विद्यार्थी से प्रश्न पूछते हैं तो वह विद्यार्थी जिस तरह इन्स्पेक्टर के पीछे खड़े हुए अपने शिक्षक की ओर देखकर उत्तर देता है, उसी तरह इस समय उषा का हाव-भाव था। मुझे लगा, वह शायद उसकी शिष्या होगी। पर वहां आज परीक्षक कौन था ? किसके भय से वह इस तरह उसकी ओर देख रही थी ? या वह जो भाषण दे रही थी, उसके बारे में क्या वह सशंक थी ? क्या इसलिए वह उसकी ओर देखकर बोल रही थी कि उसे शक था कि वह भूल रही है और

उसकी भूल दूसरे विद्यार्थियों की नज़रों में न आने पावे ?

उषा की ओर देखना छोड़कर मैं उस विद्यार्थी नेता की ओर देखने लगा। उषा के भाषण से उसकी मुद्रा क्षण-क्षण में बदल रही थी। आंखों के इशारे हो रहे थे। उन इशारों से उषा का भाषण इधर-उधर मोड़ ले रहा था। मेरे नजदीक बैठा हुआ एक विद्यार्थी अपने साथी के कान से मुंह लगाकर बोला, “देखोजी, किस तरह खिला रहा है उसे ? जैसे रिंगमास्टर रिंग में किसी घोड़ी को नचा रहा हो।” दूसरा बोला, “चुप रहो। वह देख लेगा। बाज की तरह नजर है उसकी।” वह एकदम चुप हो गया। सचमुच, उस नेता की नजर इतने में उन दोनों विद्यार्थियों पर घूम गई।

उस नेता के प्रति मेरे मन में श्रद्धा जाग उठी। मुझे यह भी लगा कि नेता बनने के लिए यदि कोई योग्य व्यक्ति है तो वह यही है। उससे परिचय कर लेने के लिए मैं उतावला हो उठा।

उषा का भाषण समाप्त हुआ और फिर प्रश्नोत्तर शुरू हुए। सब लोग प्रश्न पूछ रहे थे और एक क्षण की भी फुरसत न लेकर वह उनके प्रश्नों के उत्तर दे रहा था। उसके प्रति मेरी श्रद्धा और अधिक बढ़ गई। क्षण-भर के लिए मुझे लगा कि फिज़ूल ही मैं उस युवक को गलत समझ बैठा था।

बैठक के समाप्त होने पर उषा ने उससे मेरा परिचय कराया। सब लोग उसे रमेश कहते थे। रमेश उसका असली नाम न था। पर इसी उपनाम से सब उसे पहचानते थे। वह एम० ए० पास था। प्रोफेसर हो जाना उसके लिए असम्भव नहीं था, पर वह नौकरी के भ्रंश में न पड़ा और इस मंडल की खानगी प्रोफेसरी उसने स्वीकार कर ली।

भावावेश में मैंने भी मंडल में अपना नाम दर्ज करा लिया। वहां से घर लौटते समय रास्ते में उषा मुझसे कुछ न बोली, इसपर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मुझे शक हुआ कि मेरा साथ होने के कारण उसके नित्यक्रम में कुछ बाधा आ गई होगी। मंडल से निकलते समय उषा और रमेश के बीच आंखों से कुछ बातें हुईं, जो मेरी नज़रों से बच न सकीं।

घर आते ही मैंने भाभी से मंडल के बारे में बातें करना शुरू किया। जो वहां हुआ था, वह सब बताकर मैंने कहा, “रमेश कोई भी हो, पर बड़ा असाधारण पुरुष है, इसमें शक नहीं। वह सिर्फ आंखों के इशारों पर सबको

खिला सकता है। इतनी सामर्थ्य है उस युवक में।”

“तुम मानते हो न ?” उषा बड़ी उल्लसित होकर बोली, “आज तुम वहां गये, यह सचमुच बड़ा अच्छा हुआ, बलवन्तराव ! कम-से-कम अब तो जीजी को विश्वास हो जायगा।”

“याने वह तुम्हारा स्टालिन है ?” भाभी ने व्यंग्य से कहा, “समता की सतह पर बुद्धि की श्रेष्ठता की यह धाक तर्क-संगत कैसे हो सकती है, इसका मुझे शक है। जबकि समता के तत्वों का प्रतिपादन किया जा रहा है, तब क्या तुम यह नहीं सोचतीं उषा कि प्रतिपादकों को भी समता की रेखा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।”

“तुम क्या समझोगी, जीजी ?” उषा बोली, “अपनी मुट्ठी क्यों खोल रही हो। उसे वन्द ही रहने दो। तुम लोगों का यह काम नहीं। तुम तो चरखे पर सूत कातती रहो बैठी-बैठी।”

“देख लिया लाला, ऐसी बात है ?” भाभी बोलीं, “किसी पार्टी के प्रति अभिमान हो जाने से ऐसा हो जाता है। फिर वह मनुष्य बहस करना पसन्द नहीं करता।”

“बहस नहीं चाहिए, ऐसा मैंने कहां कहा ?” उषा बोली, “तुम्हारे मत पत्थर की लकीर बन गये हैं। अपने मत बदलने के लिए ही जब तुम तैयार नहीं हो तो तुमसे बहस करने की ज़रूरत ही क्या ?”

“क्या खूब !” भाभी बोलीं, “तुम्हीं कभी यह कहती हो कि मैं लगा-तार अपने मत बदलती रहती हूं और तुम्हीं यह भी कहती हो कि मेरे मत पत्थर की लकीर होते हैं। इसका मर्म समझे तुम, लाला ? तुम इसकी बातें बड़ी भावुकता से सुनते हो, इसलिए यह तुमसे चर्चा करती है। मुझसे चर्चा करते समय उसे आड़े-टेढ़े प्रश्नों का जवाब जो देना पड़ता है और यही उससे बरदाश्त नहीं होता। ऐसी बात है !”

“अच्छा-अच्छा ! यही सही !” उषा चिढ़कर बोली, “तुम बड़ी होशियार हो, बड़ी बुद्धिमान हो, बड़ी पुरुषार्थी हो। तुमसे बहस करने की मुझमें लियाकत नहीं। लो, अब तो खुश हो गई ?”

“बिल्कुल सच कहा तुमने !” भाभी बोलीं, “क्रोधावेश में भले ही कहा हो, पर है सोलहो आने सत्य। दूसरों के उधार के और जूठे विचार

लेकर उन्हींका पिष्ठपेषण करनेवाले तुम वाचालों से कुछ न हो सकेगा। प्रत्यक्ष रूप से जिन कामों को करना जरूरी है, उन्हें करनेवाले लोग वाचाल नहीं होते। वे काम करते हैं। मनुष्य को जब वाचालता की आदत पड़ जाती है, तब उससे प्रत्यक्ष काम कुछ भी नहीं होता।”

क्रोध से उषा के सारे बदन में जैसे आग लग गई। जिस अधिकार-पूर्ण वाणी में भाभी बोलीं थीं, उसके शब्दों के जोर से वह डर गई। बचपन से ही भाभी ने उसे बढ़ाया था। बचपन के उस पुराने संस्कार को भटककर एकदम दूर कर देना उसके लिए कठिन हो गया था। वह वाचाल थी, पर नासमझ या अबोध नहीं थी। भाभी की बातों में कुछ तथ्य है, यह उसे जंच गया और इसीलिए वह चुप रही।

परन्तु मेरी खुराफाती वृत्ति जाग उठी। मैं नहीं चाहता था कि वह विषय बन्द हो जाय। इसलिए मैंने भाभी से कहा, “कुछ भी हो भाभी, पर मैं चाहता हूँ कि आप कम-से-कम एक बार तो हमारे स्टडी सर्कल में अवश्य पधारें। सिद्धान्त को बिना पूरी तरह समझे उसपर अमल अच्छी तरह नहीं होता। किसीकी आज्ञा मानकर काम करना अलग बात है। ऐसे काम सर्कस में घोड़ों और बन्दरों द्वारा किये जानेवाले कामों की तरह होते हैं। उनमें वास्तविकता का अभाव होता है। वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव से जो कार्य किया जाता है, उसकी नींव पक्की नहीं होती।”

मेरी ओर न देखकर भाभी सिर्फ हँस दीं और बोलीं, “अब तो बहुत बातें करना सीख गये हो तुम। यही कमी थी तुममें। पर बात यह है लाला, कि मैं सिद्धान्त नहीं चाहती और न अमल चाहती हूँ। मैं अपने ही मतों के अनुसार चलनेवाली एक हठी औरत हूँ। मुझे पढ़ना होगा तो स्वयं ही पढ़ लूंगी, विचार करना होगा तो स्वयं ही विचार कर लूंगी। यह सिद्ध करने के लिए भी कि मैं पढ़ रही हूँ या सोच रही हूँ, मैं दूसरे के चुल्लू से पानी नहीं पीना चाहती। इसके लिए यदि कोई मुझे अपढ़ और गंवार कहे तो इसपर मुझे गर्व ही होगा।”

मेरा प्रयत्न बेकार रहा। विषय की चर्चा जो रुकी सो आखिर रुक ही गई। क्या हुआ था कौन जाने, पर वाद-विवाद के लिए हमेशा उत्सुक रहनेवाली उषा ने भी फिर कोई विवाद शुरू नहीं किया। क्या भाभी की

बातों का उसके मन पर प्रभाव पड़ गया था, या उसने यह सोचा था कि जिद्दी से बहस करना बेकार है, कुछ कहा नहीं जा सकता।

उषा के स्टडी-सर्कल में भाग लेना मैंने आरम्भ कर दिया था। रमेश के प्रति मेरा आदर दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था। क्या बात थी, मैं नहीं कह सकता, पर वह मुझसे कभी दिल खोलकर बातें नहीं करता था। उषा को वह परमेश्वर जैसा लगता था, पर मेरा इस विषय में मतभेद था। बुद्धिमान लोग अपनी बुद्धि का उपयोग सब प्रकार से कर सकते हैं। सभी बुद्धिमान लोग अपनी बुद्धि को अच्छे ही कामों में खर्च करते हों, यह बात नहीं है। बुद्धिमत्ता के बल पर प्राप्त हुई प्रतिष्ठा का दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति कुछ बुद्धिमान लोगों में होती है, ऐसा जो भाभी बार-बार कहा करती हैं, क्या वह रमेश पर लागू हो रहा था, ऐसी शंका बार-बार मेरे मन में आती थी।

जब कार्यक्रम समाप्त हो जाता था, तब रमेश उषा को एक तरफ ले जाता था। परन्तु मैं बेशरमी से जोंक की तरह उषा से चिपका रहता था। वह इशारे-ही-इशारे में मुझे जताता कि मैं कुछ समय के लिए उषा का साथ छोड़ दूँ और उसे उससे मिलने का मौका दूँ। पर मैं उसके इशारों की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता था। ये दोनों बातें उषा की नज़रों में आ जाती थीं। रमेश बेशक मुझसे दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक जलने लगा था, इसका मुझे यकीन हो गया।

उस स्वाध्याय-मण्डल से अधिक परिचय बढ़ने पर मुझे यह दिखाई देने लगा कि यहां का वातावरण गंदा है। अध्ययन करने की अपेक्षा अध्ययन करने का ढोंग करने की प्रवृत्ति ही बहुतों में दिखाई दे रही थी। जो इनी-गिनी लड़कियां इस स्वाध्याय-मंडल में आती थीं, उनमें से बहुत-सी ऊपरी तौर पर स्वच्छंद दीखती थीं और उनका स्वभाव बड़ा छिछोरा था। मैंने देखा कि बहुत-से लड़के उन लड़कियों के आस-पास चक्कर काटने के लिए ही उस मंडल में आते थे।

एक दिन इसका सबूत भी मिल गया। इस मंडल का एक सदस्य इसी मंडल की एक लड़की को लेकर भाग गया। सारे शहर में यह बात फैल गई। भागनेवाले ये व्यक्ति यदि भिन्न-भिन्न प्रदेशों के होते तो कोई विशेष बात

न थी और लोग इस घटना की परवा भी न करते। पर वे लोग भिन्न-भिन्न धर्मों के थे। लड़की ब्राह्मण थी और लड़का ईसाई।

इस घटना के कारण लोग रमेश की रामकहानी का पता लगाने लगे। वह कहाँका था, कौन था, उसकी जाति क्या थी। उसके मां-बाप कहाँ रहते हैं, आदि की किसीको भी कोई जानकारी न थी। मराठी, उर्दू, हिंदी, पंजाबी, गुजराती आदि प्रत्येक भाषा वह इतनी सफाई और स्वाभाविकता से बोलता था जैसे वह उसकी मातृभाषा हो। इसलिए उसकी बोली से यह पता नहीं लगता था कि वह किस प्रदेश का है। चेहरे की बनावट से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता था कि वह कम-से-कम महाराष्ट्रीय नहीं था।

इस घटना के कारण बड़ी सनसनी फैल गई। हर कोई रमेश के बारे में पूछने लगा। बहुतेरों ने रमेश से भी प्रश्न किये। पर वह किसीकी भी परवा नहीं करता था। उड़ते हुए उत्तर देकर सबके मुंह बंद कर देता था। उषा ने जब उससे पूछा तो वह बोला, “मेरी जात-पांत से तुम्हें क्या करना है? मैं एक हिन्दुस्तानी हूँ, विदेशी तो हूँ ही नहीं। इसके अलावा मैं और कुछ नहीं कहना चाहता।”

इस उत्तर से उषा को शायद संतोष नहीं हुआ, ऐसा मुझे लगा। मैंने पूछा तो वह बोली, “मैंने रमेशबाबू से पूछा, यही मेरी भूल हो गई। मुझे उनसे नहीं पूछना चाहिए था। जाति या धर्म पूछना हमारे लिए शोभनीय नहीं कहा जा सकता।”

जी कड़ा करके मैंने पूछा, “रमेश के प्रति तुम्हारा आदर यदि प्रेम में बदल जाय तो तुम क्या करोगी?”

“हम विवाह कर लेंगे।” बिना किसी हिचकिचाहट के उषा ने कहा।

जैसे ‘विवाह कर लेंगे’ कह देना उसकी दृष्टि में बिल्कुल मामूली बात थी। वह आगे बोली, “या शायद हम दोनों विवाह न भी करें, वैसे ही रहेंगे।”

‘वैसे ही’ याने किस तरह? मैंने कहा, “क्या बिना विवाह किये विवाहित की तरह?”

“हां।” उषा बोली, “उसमें क्या हर्ज है? तुम तो बड़े पुराणपंथी मालूम होते हो, वलवन्तराव।”

“पर क्या ऐसी कोई संभावना है?” मैंने भिन्नकते-भिन्नकते पूछा।

उषा गालों में हँस पड़ी और बोली, “क्यों, क्या अभी तक तुम आशा किये बैठे हो?”

“आशा क्यों छोड़ दूँ? आशावादी होना कोई गुनाह नहीं। मैं बहुत ही निष्ठावान मनुष्य हूँ, उषा। मैं जितना निष्ठावान हूँ, उतना ही प्रेमल—नहीं प्रेमी हूँ। मेरा प्रेम तितली की तरह इधर-उधर उड़नेवाला नहीं। मैंने एक निश्चय कर लिया है। उस निश्चय के अनुसार तुम्हारा प्रेम पाने के लिए जितनी तैयारी करना आवश्यक है, उतनी मैं कर रहा हूँ। तुम्हारी नज़रों में वह तैयारी भले ही अधूरी हो, पर मैं अपना सर्वस्व उस तैयारी में लगा रहा हूँ। क्या मेरे लिए आशा की कोई जगह नहीं?”

मेरे इस आकस्मिक प्रश्न का उषा के मन पर कोई प्रभाव न पड़ा। बिल्कुल शान्ति से वह बोली, “यदि इसीके लिए तुम इतना परिश्रम कर रहे हो तो उसे अब एकदम बंद कर दो।”

उसके इतना कहते ही मेरा चेहरा उतर गया। यह देखकर वह बोली, “वैसे मैं तुम्हें बिल्कुल निराश नहीं कर रही हूँ। कबूतर एक पक्षी है। बड़ा प्यारा, बड़ा सुन्दर। काम में लाने के लिए बहुत बढ़िया। मीलों सफर भी कर लेता है। फिर भी कबूतर गरुड़ नहीं है! मैं पौरुष की पुजारिन हूँ। इसीपर से जो समझना हो, समझ लो!”

इसपर से जो समझना था, वह मैं समझ गया। यद्यपि मैं महसूस करता था कि मैं बड़ा सामर्थ्यवान हूँ, पर उषा को मुझसे भी अधिक समर्थ जोड़ीदार चाहिए था। वह न अपनी जोड़ का जोड़ीदार चाहती थी और न अपने से कमजोर की उसे इच्छा थी। मुझे लगा, कितनी भी लंबी-चौड़ी गप्पें क्यों न हाँके, पर यह उषा है आखिर पुराणपंथी ही!

मैं उषा से भाभी की तुलना करके देखने लगा। बुद्धिमत्ता को छोड़कर और किसी भी बात में उन दोनों में वृत्ति की समानता मुझे नज़र नहीं आई। अपनी बुद्धिमत्ता का उपयोग करने के लिए भाभी को मौका न था। अवसर की अनुकूलता होती तो वह क्या करती, इसकी मैं कल्पना करने

लगा। मैं ठीक से कोई उत्तर नहीं पा रहा था। प्रतिकूल परिस्थिति में उन्होंने जो संघर्ष किया, वह मुझे याद हो आया। पति-पत्नी का भगड़ा चरम सीमा पर नहीं पहुंच पाया था, इसका कारण दादा की सज्जनता और चतुराई थी। यदि दादा उस भगड़े को हृद से बाहर ले जाते तो भाभी क्या करतीं ?

इस प्रश्न का उत्तर मुझे सूझ नहीं रहा था। जब यह बात मैंने भाभी से पूछी तो वह बोलीं, “जबतक कोई बात प्रत्यक्ष रूप में हो नहीं जाती, तबतक उसके बारे में कल्पना से कोई अनुमान करना मुझे अच्छा नहीं लगता। मेरा मन कहता है, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, कभी न-कभी, वैसा प्रसंग उपस्थित होने ही वाला है। परंतु जबतक वह उपस्थित नहीं होता है, तबतक एक व्यर्थ का काल्पनिक संकट पालकर मैं अपने मस्तिष्क को नहीं थकाऊंगी।”

क्षण-भर के लिए मैं स्वस्थ रहा। भाभी के उत्तर से मुझे सन्तोष नहीं हुआ। परन्तु यह सोचकर कि वह सीधा उत्तर तो देंगी नहीं, मैंने कहा, “उषा के वर्तमान चाल-चलन के बारे में आपका क्या ख्याल है ? क्या उसका बर्ताव आपको पसन्द है ?”

“यह क्यों पूछा तुमने ?”

“परसों की चर्चा याद आ गई, इसलिए।”

“पर तुम्हें तो उसके मत जंचते हैं, तुम उसके स्वाध्याय-मण्डल में जाते हो, तुम उसकी हरकतें देख रहे हो। तुम्हें क्या लगता है ? उषा के बारे में ?”

“आजकल मैं कुछ शंकित हो रहा हूं, इसीलिए आपसे पूछा। रमेश से मेरी बनती नहीं और उषा उससे बेहद खुश है। परसों किसी विद्यार्थी के एक लड़की भगा ले जाने के बाद से मैं जरा डर गया हूं।” इतना कहकर रमेश के बारे में उषा से मेरी जो बातें हुई थीं, वे सब मैंने भाभी को कह-सुनाई।

उन बातों को सुनकर भाभी बहुत देर तक खामोश रहीं। उनके माथे पर शिकनें पड़ गई थीं। भौहें आकुंचित हो गई थीं। सोचने से उनके मस्तक पर तनाव पड़ रहा था। कुछ समय के बाद वह बोलीं, “क्या आज तुम्हारे

स्वाध्याय-मण्डल का दिन है ?” मैंने “हां” कहा तब वह बोलीं, “आज मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।” यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई।

इसी समय उषा आ गई और जब उससे मैंने यह समाचार कहा तो क्षण-भर के लिए वह, मेरी और भाभी की ओर, बारी-बारी से देखती रही।

वह बोली, “आज तुमने हमारे मण्डल की ओर अपना ध्यान मोड़ दिया, जीजी ! क्या बलवन्तराव ने कोई शिकायत कर दी है तुमसे ?”

“नहीं, शिकायत नहीं की।” भाभी बोलीं, “अभी हम वहीं की चर्चा कर रहे थे। लाला ने मुझे बहुत-सी नई बातें बताईं। बहुत-से प्रश्न पूछे। मैं निरुत्तर हो गई। तब सोचा, एक बार जाकर देख ही आऊं तुम्हारा स्वाध्याय-मण्डल। अगर मैं आऊं तो तुम्हें तो कोई आपत्ति नहीं है ?”

“बिल्कुल नहीं।” कहकर उषा अपने कमरे में चली गई।

मैं उससे कुछ कह रहा था कि भाभी ने आंख के इशारे से मुझे डांट दिया। तब होंठों तक आये शब्दों को मैंने निगल डाला। भाभी ने अभी जो सफल अभिनय किया था, उसे देखकर मैं पहले ही दंग रह गया था। ऊपर से यह इशारे की डांट देखकर मैं शंकित हो उठा। यह देखने के लिए कि उषा कहीं अपने कमरे के भीतर से सुन तो नहीं रही है, मैं उठ ही रहा था कि मेरा हेतु भांपकर भाभी ने इशारे से मुझे नीचे बिठा दिया।

वह बोलीं, “तुम्हें भी तो कोई आपत्ति नहीं, लाला ? मुझे आश्चर्य इसी बात पर हो रहा है कि इतने बड़े तत्त्वज्ञान को तुमने इतनी जल्दी हस्तगत कैसे कर लिया ? उषा तुम्हें मूर्ख कहती थी, मैंने तुम्हें कभी मूर्ख नहीं कहा और न कभी कहूंगी। परन्तु कोई बहुत ही कुशल पढ़ानेवाला मिले बिना इतना कठिन विषय तुम इतनी जल्दी और इतनी सरलता से नहीं सीख सकते थे। इसलिए मैं भी सोचती हूं कि जब एक मौका आ गया है तो ज्ञानार्जन के लिए मैं भी क्यों न इस बहती गंगा में हाथ धो लूं ?”

उस दिन हम तीनों स्वाध्याय-मण्डल गये। कह नहीं सकता, क्यों, पर उस दिन रमेश के भाषण पर रंग न चढ़ा। यदि यह कहूं कि भाभी की उपस्थिति के कारण ऐसा हो गया था तो भाभी से तो उसका कोई परिचय था नहीं। यह जानना उसके लिए सम्भव न था कि भाभी उषा की बड़ी

बहन हैं। अगर यह मानकर चलें कि उषा ने उससे पहले कह दिया हो कि आज उसकी जीजी कक्षा में आ रही हैं, केवल इसी कारण उसे इतना निरुत्साहित क्यों हो जाना चाहिए, यह मैं समझ नहीं पा रहा था।

घर जाने पर भाभी ने उषा से कहा, “तुम कुछ भी कहो, उषा, पर तुम्हारा रमेश मुझे बिल्कुल ही रूखा लगा। ऐसे बोल रहा था जैसे ग्रामो-फोन का तवा घूम रहा हो !”

“नहीं-नहीं, भाभी !” मैंने कहा, “आज ही न जाने क्या हो गया था उसे ? पर रोज इतना अच्छा बोलता है कि बस, सुनते ही रहो। वाणी बड़ी सरस है उसकी। इतने मनोरंजक ढंग से विषय का विवेचन करता है, जैसे कोई दिलचस्प किस्सा सुना रहा हो। समझाने का तरीका भी बड़ा अच्छा है, वरना इतनी जल्दी और इतनी सरलता से मुझे इतना ज्ञान कैसे प्राप्त हो जाता ? अगर आज की तरह कक्षा चलती तो मैं कभीका उसमें जाना बन्द कर देता।”

“बलवन्तराव बिल्कुल ठीक कह रहे हैं।” उषा बोली, “आज उनकी मनस्थिति क्यों बदल गई थी, भगवान जाने ? मैं उनसे पूछना चाहती थी, पर मौका न मिला।”

“और देखो उषा,” भाभी बोलीं, “वहां मुझे एक बात मुख्य रूप से यह दिखाई दी कि तुम्हारे मण्डल के विद्यार्थियों में ज्ञानार्जन के लिए हृदय से लगन नहीं है। मुझे बहुत थोड़े विद्यार्थी ही वहां ऐसे दिखाई दिये, जो एकाग्रतापूर्वक तुम्हारे रमेश के भाषण की ओर ध्यान दे रहे थे। बाकी बहुत-से तो आपस में कानाफूसी कर रहे थे। यह अनुशासनहीनता मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं। सच पूछा जाय तो ऐसी कक्षा शाला की कक्षा की तरह लगनी चाहिए, कालेज की कक्षा की तरह नहीं। ऐसे मण्डलों में अनुशासन बहुत कड़ा होना चाहिए। यदि कोई बाहर का दर्शक आकर तुम्हारी कक्षा देखे तो उसे वहां कोई दोष न दिखाई देना चाहिए।”

“कुछ भी हो, आखिर मास्टरनीजी हो तुम।” उषा नाक फुलाकर बोली, “कड़े अनुशासन में ऐसे कठिन विषय का अध्ययन कभी हो ही नहीं सकता। वहां छात्र और छात्राओं को प्रेम से मिल-जुलकर ही रहना चाहिए। वहां कोई इतिहास, भूगोल या गणित थोड़े ही पढ़ाया जाता है।

तुम्हें तो हर बात में ऐब-ही-ऐब दिखाई देते हैं, जीजी ! इसीलिए तुम जीवन में इतनी असंतुष्ट रही हो ।”

“उस असंतोष में ही बड़ा संतोष है, उषा ।” भाभी गंभीर होकर बोलीं, “मैं कोई प्रौढ़ा नहीं हूँ । अभी तुम मुझे लड़की ही कह सकती हो । वैसे कौन बड़ा फर्क है हम दोनों की उम्र में ? पर अनुशासन से मुझे बड़ा प्यार है । वह मेरी स्वाभाविक रुचि है । ऐसी कक्षाओं में पहले अनुशासन चाहिए । यदि अनुशासन न हुआ तो सारा अध्ययन व्यर्थ जाता है । तुम यह न समझना कि सिर्फ आज जो मैंने देखा है, उसीसे मैं तुम्हारे स्वाध्याय-मंडल के बारे में कोई बुरा मत बना लूंगी । अब तो मैं रोज ही चलूंगी, तुम लोगों के साथ और देखूंगी कि कुल मिलाकर तुम्हारी कक्षा में अध्ययन किस तरह होता है ।”

एक क्षण के लिए उषा के माथे पर सलवटें उभर आईं । थोड़ी देर पहले की भाभी की मुद्रा मुझे याद हो आई ।

स्वाध्याय-मंडल की बैठकें रोज नहीं होती थीं । किसी सप्ताह में दो दिन, तो किसी में तीन दिन, इस मंडल की बैठकें होती थीं । भाभी ने मंडल में अपना नाम दर्ज करवा लिया । हर बैठक में वह उपस्थित रहने लगीं । पर रमेश की मनस्थिति जो एक बार बिगड़ी वह फिर किसी भी तरह ठीक नहीं हो पा रही थी । अकेली भाभी से रमेश को इतना क्यों डर जाना चाहिए, यह मैं नहीं समझ पा रहा था ।

एक दिन मुझे पूर्व-सूचना देकर, भाभी मंडल से अनुपस्थित रहीं और हमारे सामने जो पहेली खड़ी हो गई थी, वह हल हो गई ।

: १० :

रमेश के उस दिन के भाषण पर बेहद रंग चढ़ा । ऐसा लग रहा था, मानो वह इतने दिनों का बदला ले रहा हो । ‘तर्क-शास्त्र बनाम विरोध-विकास’ उसके भाषण का विषय था । अपने कुशल वक्तृत्व के जोर पर उसने वह विषय हरिकीर्तन की तरह मनोरंजक बना दिया । मैं भी क्षण-भर के लिए दंग रह गया ।

कार्य-क्रम के समाप्त होने पर हम जब घर जाने के लिए निकले तो

उषा बोली, “बलवंतराव, तुम जाओ अब। मुझे थोड़ा काम है। रमेशबाबू से कुछ बातें करनी हैं।”

“क्या कुछ खानगी बातें हैं?” मैंने पूछा, “अगर मैं तुम्हारे साथ रहा भी तो क्या हर्ज है? अगर तुम चाहो तो कुछ दूर हट जाऊंगा।”

“पर तुम मेरे पीछे इतने क्यों लगे हो?” उषा बोली, “क्या किसीने तुमको मुझपर निगरानी रखने के लिए जासूस मुकर्रर कर दिया है? क्या सुलू जीजी ने?”

“जासूस दादा के होते हैं”, मैंने कहा, “भाभी के नहीं। परंतु इस मामले से दोनों का कोई संबंध नहीं है। यह जासूसी खुद मैं कर रहा हूं। मुझे अपने स्वार्थ की रक्षा करनी चाहिए।”

“तुम्हारे स्वार्थ का यहां क्या वास्ता?” उषा बोली।

“देखो उषा”, मैं उसके बहुत पास जाकर बोला, “तुम चाहे मुझे इस तरह भले ही फटकार दो, पर मैं अपना ध्येय नहीं छोड़ूंगा।”

“कौन-सा ध्येय?”

“मेरा ध्येय...मेरा ध्येय...सबकुछ तुम्हीं हो। तुम शायद भूल गई होगी, पर मैं नहीं भूलूंगा। रमेश की ओर तुम्हारा खिंचाव भले ही हो, पर मैं तुमसे कहे देता हूं, मेरे हृदय में उसके प्रति कोई आदर नहीं है। याद रखो, वह किसी एक जगह उलझकर रहनेवाला आदमी नहीं है। डाल के पंछी की तरह एक दिन फुर्र-से उड़ जायगा।”

मुझे उत्तर देने से पहले उषा ने मेरी आंखों में आंखें डालकर क्षण-भर मेरी ओर देखा। होंठों पर आये हुए क्रोध के शब्द निगलकर वह चेहरे पर शान्ति का भाव लाई और बोली, “देखो, मेरी बातों में तुम्हें दखल नहीं देना चाहिए। रमेशबाबू के बारे में जो शक तुम्हें हो रहा है, वही मुझे भी होता है। मैं एक बार इस शक को दूर कर लेना चाहती हूं और इसीलिए मैं उनसे मिलने जा रही हूं। मुझे एकान्त चाहिए। समझे?”

निमिष-भर विचार करके मैंने कहा, “ठीक है। मैं जाता हूं। ज़रा जल्दी आ जाना।”

मैं दौड़ता हुआ घर आया और जो बात हुई थी वह भाभी को कह-

सुनाई। भाभी हँस पड़ीं। जब कुछ न बोलीं तो मैंने चिढ़कर कहा “क्या आपको कुछ भी नहीं लगता, भाभी ? चाहे आपको मेरी कोई परवा न हो, पर उषा की चिन्ता तो होनी ही चाहिए।”

भाभी खड़ी थीं, बैठ गई और बोलीं, “बैठो, लाला।” मैं चुपचाप बैठ गया। वह बोलीं, “तुम क्या सोचते हो ? क्या उषा की तरह मुझे भी बेवकूफ समझ रहे हो ? तुम्हारे ढोंग क्या मैं समझ नहीं रही हूँ। मुझे दिखाने का तुम कितना भी ढोंग करो कि उषा के लिए तुम्हारा दिल तड़प रहा है, मैं उसपर विश्वास नहीं करूंगी।”

“क्यों ?” मैंने पूछा।

“इसलिए कि मुझमें थोड़ी अकल है। भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोगों को मैंने देखा है। उनके स्वभावों को मैंने परखा है। लोगों को आजमाकर देखा है। हर मनुष्य के हृदय में एक कोना सुरक्षित होता है। उस कोने तक अपनी नज़र पहुंचाने की ताकत मैंने पैदा की है। मुझे धोखा देना सरल नहीं है, लाला। उषा न तुम्हारे वश में आयगी और न रमेश के। वह तुम दोनों को खेल खिला रही है, पर वह इतनी मूर्ख है, जो यह नहीं समझ पा रही है कि तुम दोनों ही उससे खिलवाड़ कर रहे हो। वह स्वयं अपने-आपको गलत समझ रही है।”

भाभी की बातों पर मुझे हँसी आ गई। एक लड़की के इशारों पर हम दोनों किस तरह नाच रहे हैं, यह देखकर मुझे आश्चर्य हुए बिना न रहा। फिर भी मैंने कहा, “शायद ऐसा हो। मैं इन्कार नहीं करता। मैं एक अपढ़ आदमी हूँ। मेरी इच्छा है कि मुझे ऐसी पत्नी मिले, जो लोगों की दृष्टि में सुशिक्षित हो, पर मेरी चिन्ता करे, मेरा ख्याल रखे। मेरा खुद का तो कोई सामाजिक दर्जा है नहीं। कम-से-कम अपनी पत्नी के कारण ही समाज में मुझे कुछ ऊँचा दर्जा मिल जाय, इस आशा से ही मैं कोशिश कर रहा हूँ।”

“तो फिर करते रहो कोशिश !” मुझे दुत्कारकर भाभी बोलीं, “तुम्हारे भाग्य में क्या है सो भगवान जाने। अभी तो मुझे यही दीख रहा है कि तुम व्यर्थ ही इतनी परेशानी उठा रहे हो।”

हमारी बातें हो ही रही थीं कि उषा उछलती हुई आ पहुँची। आते

ही उसने भाभी के गले में बाहें डाल दीं। उसके मुंह से हँसी के फव्वारे छूट रहे थे। “क्या हुआ ? क्या हुआ ?” भाभी ने पूछा, पर कोई उत्तर न दे, उन्हें बाहों में भरे हुए वह लगातार हँसती ही रही। मुझे लगा, क्या आज अपना सारा प्यार ही बहन पर उड़ेल देगी !

आखिर उसका मुंह खुला। अपने दोनों हाथों से भाभी का चेहरा अपने सामने खींचकर वह बोली, “हो गया। तय हो गया।”

गंभीर मुद्रा से भाभी ने पूछा, “क्या हुआ ? क्या तय हो गया ?”

“मेरा विवाह।”

भाभी हँस पड़ीं। हँसते-हँसते बोलीं, “विवाह ‘तय होना’ और ‘विवाह होना’, इसमें बड़ा अंतर है। जब मेरा विवाह तय हुआ था तब ‘ये’ कहते थे कि अभी कुछ दिन ठहर जायं, परन्तु हमारे पिताजी बड़े चतुर हैं। उन्होंने जल्दी की और एक सप्ताह के भीतर ही हम दोनों का विवाह कर दिया गया।”

“यही तो गलती हो गई !” इतना कहकर उषा ने चट-से जीभ काट ली। हम दोनों से ही उसकी यह हरकत छिपी न रही।

“क्या गलती हो गई ?” भाभी बोलीं, “हमारी गृहस्थी में क्या गड़बड़ है ? दुनिया के दूसरे परिवारों की तरह हमारा भी परिवार है। सुख से रह रहे हैं हम लोग। किसीको कहीं कोई शिकायत नहीं।”

“और जेल गई थीं सो ?” उषा बोली।

“वह काण्ड खत्म हुआ।” भाभी बोलीं, “अब तो ‘वह’ भी हो गये हैं खादीवाले। खादीवालों की मातहत में ही तो अब नौकरी कर रहे हैं ! उस समय भी उन्होंने कहां मुझे कोई दोष दिया था ? जेल से लौटने पर कौन उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया था ? अगर ऐसी गृहस्थी को सुखी गृहस्थी न कहें तो फिर किसको कहेंगे ?”

“अच्छा-अच्छा !” उषा बड़े लाड़-भरे स्वर में बोली, “पर तुमने मुझे बधाई नहीं दी।”

“विवाह होने पर दूंगी।” भाभी हँसकर बोली, “या विवाह होने के दो-चार वर्ष बाद गृहस्थी जम जाने पर।”

उषा मेरी कोई परवा नहीं कर रही थी, जैसे मैं किसी गिनती में ही

न था। मेरी ओर उसने फूटी आंख से भी न देखा। इसलिए जानबूझकर उसके सामने जाकर मैंने कहा, “आपकी उपलब्धि पर मैं बधाई देता हूँ।”

उषा ने एक बार ऊंची नज़र करके मेरी ओर देखा और तिरस्कार से गर्दन घुमा ली। इस समय वह अपनी बहन की गोद में बैठी हुई थी। उसकी यह झूठी चापलूसी देखकर मुझे बड़ी नफरत-सी हुई। मैं चिढ़ उठा। ऐसा लग रहा था कि उसके कान पकड़कर दो चपत रसीद कर दूँ।

इसके बावजूद मैंने कहा, “कैसा दुर्भाग्य है! मेरे भाग्य में बधाई देना भी नहीं! मेरे लिए सुख का एक शब्द नहीं। किसी-किसीका ऐसा दुर्भाग्य होता है।”

दोनों चुप। संयोग से उसी समय दादा आ गये। उन्हें देखते ही उषा को धीरे-से गोद से उतारकर भाभी खड़ी हो गई और बोली, “सुना आपने? उषा का विवाह तय हो गया है!”

“अच्छा।” बड़े सहज भाव से ‘अच्छा’ कहकर दादा चल दिये।

भाभी को आश्चर्य नहीं हुआ। पर उषा जिस रास्ते दादा गये थे, उस ओर आंखें लगाकर देखती रही।

“देखा!” उषा की पीठ पर हल्की थपकी देकर भाभी बोली, “ऐसा स्वभाव होना चाहिए मनुष्य का। तभी आज के इस धकापेला के जमाने में मनुष्य सुख और संतोष से रह सकता है।”

“बड़ी अजीब-सी बात है। रावसाहब को खुशी हुई, या रंज, उन्होंने कुछ भी नहीं बताया।” उषा जैसे अपने-आप ही बुदबुदाई।

उसे आश्चर्य हुआ, धक्का लगा। दादा कुछ कहेंगे, कम-से-कम अचरज जरूर प्रकट करेंगे, ऐसी उसे आशा थी। पर वह व्यर्थ हुई। इस निराशा में उसे कुछ अच्छा लगे, इसलिए मैंने कहा, “जिनका विवाह हो चुकता है, उनको अगर दूसरे का विवाह तय हो जाय तो इसका कोई सुख-दुःख नहीं होता। शायद उन्हें बुरा ही लगता होगा। पर यह समाचार सुनकर मुझ-पर जो बीत रही है, उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। ऐसी है यह दुनिया!” मेरे इतना कहने पर भी कोई कुछ नहीं बोला।

उसी समय कपड़े बदलकर दादा आये और बोले, “हां, तो उषा का विवाह तय हो गया? किसके साथ?”

उषा रूठी बैठी थी। भाभी ने कहा, “रमेश नाम का एक कम्प्यूनिस्ट है, उसके साथ।”

एकदम चौंककर उषा बोली, “तुम्हें कैसे पता चला ?”

“तुमसे पहले लाला आये थे न ?” भाभी बोलीं, “उन्होंने कर दी थी प्रस्तावना।”

“याने ?” दादा बिल्कुल स्वाभाविक भाव से बोले, “क्या उषा ने नहीं बताया था तुम्हें ? कम्प्यूनिस्ट के साथ क्यों विवाह तय किया इसने ? उससे तो कोई कांग्रेसवाला अच्छा रहता। आजकल कांग्रेस की सरकार है। उन्होंने ही तो कम्प्यूनिस्टों को जेल से रिहा किया है। पर बड़े अहसान-फरामोश हैं ये लोग। अब उन्होंने कांग्रेस का ही विरोध करना शुरू कर दिया है। बड़े खतरनाक होते हैं कम्प्यूनिस्ट। तुम दोनों बहनें सचमुच बड़ी विलक्षण हो। तुम्हें हमेशा खतरा ही पसन्द आता है। तुमने वह खतरा उठाया था और उषा अब यह खतरा उठा रही है। ठीक है। मौज करो।”

“मतलब ?” उषा बोली, “क्या आपको यह पसन्द नहीं ?”

“मेरी पसन्द को कौन पूछता है ?”

विषय यहीं समाप्त हो गया।

कुल मिलाकर मुझे अच्छा लगा। सोचा, उषा अब सीधी राह पर आ जायगी। वह गुस्से से भरी बैठी हुई थी। कोई उसकी सराहना नहीं कर रहा था।

वह दिन उसी तरह बीत गया। दूसरे दिन उषा मुझसे बोली, “जीजी पर मुझे बड़ा गुस्सा आया है। रावसाहब की बात दूसरी है। उनके पेशे ने ही उन्हें वैसा बना दिया है। पर वह तो मेरी सगी बहन है न ? क्या उसे मेरे मामले में दिलचस्पी से कोई पूछताछ नहीं करनी चाहिए थी ?”

“तुम बिल्कुल ठीक कह रही हो।” मैं एक बुजुर्ग की तरह बोला, “भाभी हमेशा ऐसी ही गलती कर जाती हैं। चाहती तो हैं कि उन्हें सब मालूम हो जाय, पर पूछती कुछ भी नहीं। वह चाहती हैं कि उनके बिना पूछे ही लोग उन्हें सब कुछ बता दिया करें। ऐसी वह कौन बड़ी हैं ?”

“अब यह देखो,” मेरी बात पर ध्यान न देकर उषा बोली, “मैंने रमेश-बाबू से पूछा था। उन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया है, पर वह

अभी एक साल रुक जाने के लिए कह रहे हैं। मैंने उनकी यह शर्त मंजूर कर ली है। क्या मैंने यह ठीक किया ? तुम्हें क्या लगता है ?”

“ठीक किया भी कह सकते हैं और ठीक नहीं किया, यह भी कह सकते हैं। बात यह है कि दादा ने जो कहा, वह भूठ नहीं। जो विवाह तय करके रख छोड़े जाते हैं, वे हमेशा हो ही जाते हों, यह बात नहीं। यदि मैं यह कहूं कि शायद तुम्हारे मामले में भी ऐसा ही कुछ हो जाय तो मेरा सोचना भूल न होगी।”

“स्वार्थी हैं सब लोग !” उषा बोली, “अपनी-अपनी सब सोचते हैं। मेरे बारे में कोई कुछ नहीं सोच रहा है।”

“तुमने मुझसे प्रश्न किया था कि मुझे क्या लगता है ? इसलिए मुझे जो लगा, वह मैंने तुम्हें बता दिया। इसमें स्वार्थ कैसा और परमार्थ कैसा ? साल-भर रुकने के लिए जिस तरह वह तैयार है, उसी तरह मैं भी तैयार हूं। यदि उससे तुम्हारा न जमा तो मैं हूं ही। बस इतनी ही बात मैंने सुभाई है।”

“यदि उनसे नहीं जमा तो धरती कोई पुरुष-विहीन नहीं हो गई है। हो गई तो मैं विवाह नहीं करूंगी।”

मैं उसके सामने जाकर खड़ा हो गया बोला, “मेरी एक बात याद रख लो, उषा। रमेश तुम्हारे साथ खिलवाड़ कर रहा है। वह पुरुषार्थी होगा, परन्तु उस जैसे मर्द की अपेक्षा मुझ जैसे सामान्यजन अच्छे, जो कभी धोखा नहीं देंगे। तुम्हें यह ठीक लगे या न लगे, मेरा कर्तव्य तुमसे कह देने का था। वह मैंने कर दिया।” इतना कहकर मैं एक तरफ जाकर बैठ गया।

बोझिल मन से उषा वहां बैठी थी। उसके मन पर किसी भी कारण से हो, बड़ा असर हो गया था। वह असर मेरी बातों के कारण नहीं था, यह निश्चित था।

फिर वह किसका था ? भाभी और दादा ने अपने उद्गारों में जो खतरे की घंटी बजा दी थी, क्या वह उसका था ? या दादा ने उसकी उपेक्षा की थी उसका ? मैंने उषा को गंभीर कम ही देखा था। आज उसे विचारों में खोई हुई देखकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ।

उस दिन स्वाध्याय-मंडल में भाभी भी उपस्थित थीं। विषय वही था

—विरोध-विकासवाद । आज रमेश पूरे उत्साह में था । उसके भाषण में संकोच या अस्वस्थता दिखाई नहीं दे रही थी । मैंने सोचा, अपने विवाह की बात तय हो जाने के कारण अब वह भाभी की कोई परवा नहीं करेगा । क्या तमाशा है ! संसार की राजनीति की इतनी साधिकार और व्यापक चर्चा करनेवाला मनुष्य क्या एक क्षुद्र लड़की के मामले में अपने मन का इतना सन्तुलन खो दे !

भाषण सुनने के बजाय मैं अपने ही विचारों में डूबा रहा । भाषण का विषय मेरी समझ के बाहर था । अचानक मैं चौंक पड़ा । भाभी ने बीच ही में वक्ता से एक प्रश्न पूछा । वक्ता की किस बात पर भाभी ने वह सवाल पूछा, मैं नहीं सुन पाया । पर भाभी की आवाज सुनते ही मैं चौंक पड़ा । भाभी कह रही थीं, “जब तर्कशास्त्र की दलीलें ही आपको अस्वीकार हैं, तब आप जिसे विरोध-विकासवाद का सूत्र कहते हैं, वह साधारण मनुष्य को कैसे जंचेगा ? मार्क्स के विरोध-विकासवाद को स्पष्ट करते समय लेनिन ने निःशस्त्रीकरण को थीसिस, बचाव करने के लिए शस्त्र-धारण करने को एंटी-थीसिस और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-प्रस्थापना के लिए सिविलवार करने को सिंथीसिस कहने का जो नियम बताया है, उसका क्या मतलब है ? तर्क की बात तो छोड़ दीजिये, पर कम-से-कम साधारण बुद्धि को भी क्या ये परस्पर-विरोधी बातें जंच सकती हैं ? फिर हमारे वेदों पर आप क्यों हँसते हैं ? ऐसा असंगत होने के कारण आपका यह विरोध-विकासवाद वैज्ञानिक स्वरूप का है, ऐसा कैसे कहा जा सकता है ?”

रमेश क्षण-भर के लिए घबरा गया । तुरन्त ही जोश में आकर वह तर्कशास्त्र पर आक्रमण करने लगा । विरोध-विकासवाद का मंडन करने के बजाय तर्कशास्त्र का खंडन करने में ही वह अपनी कौशल दिखा रहा था । बुद्धिवादी मनुष्य को उसकी बातें नहीं जंचती थीं । मैं यह शान नहीं बघारता कि मैं बुद्धिवादी हूँ, परन्तु आज तक मेरे मन पर उसके वक्तव्यों का जो असर हुआ था, वह अब डाँवाडोल हो गया । विरोध-विकासवाद की जड़ में बुद्धि की अपेक्षा भावना की ही प्रबलता अधिक है, ऐसा मुझे लगने लगा ।

जो हो, पर इस छोटी-सी घटना के कारण भाभी के प्रति मेरा आदर दूना बढ़ गया। मुझे शक हुआ, उषा भी कुछ डांवाडोल हो गई होगी।

उस दिन उषा हमारे साथ ही घर आई। आते समय रास्ते में वही चर्चा हो रही थी। घर पहुँचे, फिर भी वह चर्चा समाप्त नहीं हुई।

मुझे लगा, बड़ी कुशलता से भाभी ने उषा के विचारों को बदलने का प्रयत्न आरंभ कर दिया है। जिस आधार पर रमेश का महत्व अधिक ऊँचा उठ गया था, भाभी उस आधार की जड़ ही काट रही थीं।

आजकल घर में रोज़ प्रायः यही चर्चा हुआ करती। मुझे ऐसा दिखाई दिया कि इस नये तत्त्वज्ञान का भाभी ने बड़ा गहरा अध्ययन किया था। इतने गहन अध्ययन के बाद भी वह गांधीवादी ही रहें, इसलिए उषा उनका मजाक उड़ाती थी। भाभी कहती थीं कि मार्क्स ने गुलामों की राजनीति का सवाल हल नहीं किया था, इसलिए मार्क्स का तत्त्वज्ञान हमारे किसी काम का नहीं। भाभी का यह कथन उषा को चाहे ठीक न लगता हो, पर मुझे ठीक लगता था।

पर इस तत्त्वज्ञान से मुझे कोई वास्ता न था। भाभी जिस तरह कहा करती थीं कि संसार की राजनीति से हमें क्या सरोकार है, हमें पहले अपने देश की राजनीति पर ही विचार करना चाहिए, उसीको देखना चाहिए, उसी तरह मैं भी कहा करता कि हमें पूरे देश से क्या मतलब, पहले हम अपने कुटुम्ब तक ही देखें !

उषा का क्या होगा ? वैसे देखा जाय तो वह हमारे कुटुम्ब की न थी। हमारे कुटुम्ब में आकर वह उलझ गई थी। इसलिए मैं उसके लिए चिन्तित हो उठा था। ऊपर से दिखाने के लिए मैंने कितना ही आडम्बर किया हो, पर उसके प्रति मुझे रंचमात्र भी आकर्षण नहीं मालूम होता था। पूना आने और विशेषतः अखबार के दफ्तरों में काम शुरू करने के बाद से मैं कालेज के छात्रों और छात्राओं से मिलने-जुलने लगा था। मेरे नाम के साथ कुछ लड़कियों का नाम जोड़कर मेरा मजाक भी उड़ाया जाता था। परन्तु आजकल मेरी निगाह बिगड़ गई थी। किसी व्यक्ति के गुणों को देखने के बजाय मैं उस व्यक्ति के छिपे हुए अवगुणों को ही विशेष रूप से खोजा करता था। इसलिए हर लड़की मेरी जीवनसंगिनी होने के लिए अयोग्य

है, ऐसा मुझे लगता। पूना जैसे लड़कियों के साम्राज्य में भी जब मुझे अपने अनुरूप वधू खोजने से नहीं मिल रही थी तो आगे मेरा क्या होगा, यही चिन्ता मुझे सताने लगी।

“तो यह बताओ कि आखिर तुम पत्नी चाहते कैसी हो?” भाभी ने एक दिन सवाल किया। उस समय उषा वहां नहीं थी। मैंने कहा, “आप जैसी!”

“मुझ जैसी एक मैं ही हूँ।” भाभी ने हँसते हुए कहा, “दुनिया की निगाह में मैं असाधारण भले ही न होऊँ, पर मुझे लगता है कि अन्य स्त्रियों से मैं बिल्कुल निराली हूँ। दुनिया के इतिहास में मेरे कार्यों को चाहे कोई मान्यता न मिले, क्योंकि परिस्थिति ने मुझे दबा दिया है, परन्तु मेरी पक्की धारणा है कि मेरा यह निरालापन भी असाधारण है। ऐसी असाधारण पत्नी के साथ तुम्हारी निभेगी कैसी?”

“यह सच है।” मैंने कहा, “पर मैं ‘पति’ नहीं होना चाहता, ‘धनी’ नहीं होना चाहता, ‘स्वामी’ नहीं होना चाहता! मैं एक जीवन-संगिनी चाहता हूँ, जो मुझ जैसे छोटे को बड़ा बना दे। मैं ऐसी जीवन-संगिनी चाहता हूँ, जिसे मैं सखी और माता, इन दोनों दृष्टियों से देख सकूँ।” मैं बिल्कुल जी की बात कह रहा था। मेरी भावनाओं को शब्द व्यक्त नहीं कर सकते थे।

“यह तो नामर्दी है!” भाभी बोलीं, “पुरुष का स्वाभाविक धर्म दूसरे पर शासन करना, अधिकार की धाक जमाना है। माल पर अपनी मालकी साबित रखना, इसे ही कहते हैं मर्दानगी। स्त्री पुरुष की सम्पत्ति होती है। महाभारत का एक बूढ़ा यह फैसला कर गया है। उसीने द्रौपदी को पांडवों की संपत्ति साबित किया था। पर उसी समय वहां एक दूसरा बुद्धिमान बूढ़ा भी बैठा हुआ था। वह चर्मचक्षु से अंधा था, पर अन्तर्दृष्टि से आंखों-वाला था—समझदार था। उसने भीष्म के निर्णय को रद्द कर दिया। बड़ों की बातें माननेवाले हम लोग—हमने भीष्म का निर्णय ग्रहण कर लिया और धृतराष्ट्र का निर्णय भुला दिया। वही चल रहा है आज तक। शास्त्र के वचनों को माननेवाले लोग हैं हम। यहां तुम्हें या मुझे पूछता कौन है?”

विषयांतर करने के उद्देश्य से मैं बोला, “मैं जो पूछ रहा हूँ, आपसे

पूछ रहा हूं, भावना के वशीभूत होकर नहीं। जब तर्क-कंकश बुद्धिवाद से विचार करके देखता हूं, तब यही लगता है कि जैसी मैंने बताई, उसी तरह की जीवन-संगिनी की मुझे जरूरत है।”

“तो फिर जन्म-भर अविवाहित ही रहना पड़ेगा।” भाभी बोलीं, “अगर परिवार ही बढ़ाने की इच्छा हो तो किसी भी लड़की से विवाह कर लो। चार बच्चे हो जायेंगे। कल अगर तुम्हें कुछ हो जायगा तो तुम्हारा श्राद्ध होगा, लड़के तुम्हें पिंड देंगे, अंगूठे से पानी छोड़ेंगे। जिन्दगी भर चाहे गृहस्थी के नरक में पड़े रहोगे, पर मरने पर स्वर्ग मिलेगा।”

“आपको क्या सचमुच ऐसा लगता है?” मैंने कहा।

“तो क्या तुम्हारा ख्याल है कि मैं झूठ बोल रही हूं? दुनिया के लोग जो कहते हैं, वही मैं कह रही हूं। मरने के बाद मनुष्य स्वर्ग में जाता है या नरक में, पुनर्जन्म है या नहीं, इन बातों को मैं सोचना ही नहीं चाहती। ऐसे विचार करके मैं अपने दिमाग को हैरान करना नहीं चाहती। आज हम जिन्दा इन्सान हैं, कल हमें मरना है और मरते तक हमें जीना है। यह जिन्दगी हम कैसे जियें, इसका विचार करना चाहिए। जब हम देख रहे हैं कि पीछे के जीवन की हमें कोई याद नहीं है तो आगामी जन्म की या मरने के बाद क्या होगा, इसकी चिन्ता क्यों की जाय? इसीलिए कहती हूं कि अगले जन्म पर विश्वास रखनेवाला यदि आंख बन्द करके अपनी जीवन-संगिनी को खोजे तो उसे यह शोभा देता है। ऐसे लोगों पर विश्वास रखकर मैंने धोखा खाया है, कोई श्राद्ध करनेवाला भी अभी तक मेरे घर नहीं जन्मा! यह कैसे कहूं कि मुझे पश्चात्ताप हो रहा है? पर दुःख जरूर होता है। मन को वेदना होती है। रात-दिन तिल-तिल करके कलेजा छीज रहा है। प्राण सूख रहे हैं। इससे जो सबक लेना चाहो, ले लो और सावधान हो जाओ।” इतना कहकर, अपनी आदत के अनुसार भाभी चट-मे उठीं और चली गई।

इधर भाभी बाहर गई, उधर से उषा आई। उसका चेहरा उतरा हुआ था। फिर भी वह मेरी ओर देखकर बोली, “बड़ी चिन्ता में दिखाई दे रहे हो?”

“कौन? मैं?” मैंने हँसकर कहा, “मुझे क्यों होने चली कोई चिन्ता?”

एक चिन्ता थी, सो उसका फैसला तुमने कर ही दिया। तुम्हारा रमेश के साथ जम गया।”

“ठहरो।” उषा एकदम गम्भीर होकर बोली। नजदीक की एक कुर्सी खींचकर वह मेरे पास आकर बैठ गई और जितनी मन्द आवाज में सम्भव था, उतनी मन्द आवाज में बोली, “वह मुसलमान है।”

“वह कौन ?”

“रमेश। रमेश नाम धारण करनेवाला वह आदमी मुसलमान है। उसका नाम है...”

“उसके नाम से मुझे क्या लेना-देना। और देखो, उसका नाम क्या है, यह किसीको न बताना। कम-से-कम दादा को मत बताना। शासन कांग्रेस के हाथ में भले ही हो, पर आखिर वह सरकार है। भगोड़े गुनहगार को माफ नहीं करेगी।”

उषा क्षण-भर के लिए खामोश रही, फिर बोली, “सच है। पर अब मैं क्या करूँ ?”

“क्या करूँ का मतलब ?” मैंने बेफिक्री से कहा, “विवाह करो। तुम लोग जाति और धर्म नहीं मानते न ?”

“यह सच है।” उषा बोली, “पर कुछ भी हो, मन को बड़ा अजीब-सा लगता है। मुसलमान से विवाह करने का विचार, छिः ! छिः ! नहीं !”

मैं ठहाका मारकर हँस पड़ा। बोला, “क्या यही है तुम्हारा तत्व और तुम्हारी तत्त्वनिष्ठा ? क्या यही है तुम्हारी समता ! क्या यही है तुम्हारा विश्वबंधुत्व ! क्या यही है तुम्हारा समाजवाद और विरोध-विकासवाद ! वाह, क्या खूब !”

उषा एकदम कुर्सी से उठकर खड़ी हो गई और मेरे सामने आकर झल्लाती हुई बोली, “क्या तुम्हें बड़ी खुशी हुई ? क्यों ? तुम्हें लग रहा है कि अच्छा हुआ जो मेरी फजीहत हो गई। अब तुम्हारी बन आई। नहीं, यह भूल जाओ। रमेश का अब कुछ भी हो, मैं उससे विवाह करूँ या न करूँ, पर जान चली जाय, फिर भी मैं तुमसे विवाह नहीं करूँगी।”

मैं गम्भीर हो गया। उषा उसी तरह क्रोध से जलती हुई खड़ी थी। उसके सामने जाकर मैंने कहा, “मुझसे विवाह करो, चाहे मत करो, इस

समय यह सवाल नहीं। सवाल फिलहाल यह है कि तुम लोगों के कहने और करने में कितना फर्क है ? तुम लोग मुंह से सब जगह यह बकते फिरते हो कि तुम धर्म नहीं मानते, जाति नहीं मानते। जाति-निष्ठ और धर्म-निष्ठ लोगों को उल्टी-सीधी गालियां देते हो और अब जब एक मुसलमान से विवाह करने का मौका आ गया है तो एकदम तुम्हें 'अजीब-सा' लगने लगा ! क्यों ? हिम्मत हो तो रमेश से विवाह करो, वरना मैं यही कहूंगा कि तुम ढोंगी हो, दम्भी हो, वाचाल हो, नालायक हो ! अब देखें तुम्हारा कम्प्यूनिज्म !”

इतना कहकर मैं सचमुच चिढ़कर वहां से चल दिया।

: ११ :

उस दिन का मेरा चिढ़ना बेकार रहा। उषा की उलझन आप-ही-आप सुलझ गई। दिल्ली के एक वारंट पर रमेश गिरफ्तार कर लिया गया।

उषा ने भाभी से यह नहीं कहा था कि रमेश मुसलमान है। मुझे यकीन था कि दादा से रमेश के बारे में बुराई उषा ने ही की होगी। पहले से ही उसपर कोई वारंट है, यह वह जानती थी। अपनी राह के कांटे को चुपचाप निकाल डालने के लिए उसके द्वारा किये गए इस उपाय को देखकर मुझे उससे घृणा हुई। भाभी से जब मैंने यह कहा तो वह बोलीं, “तुम्हारा यह शक भूठ भी हो सकता है, लाला। किसी दूसरे ने शायद यह खबर दी हो। तुम्हारा मन आजकल उषा के प्रति विकृत हो गया है। इसी-लिए शायद ऐसी गलतफहमी हो गई होगी।”

“नहीं भाभी !” मैंने कहा, “गलती मुझसे ही हो गई थी। जब उषा ने मुझसे उसके बारे में कहा था, तब मैंने ही उससे यह कह दिया था कि वह रमेश का असली नाम दादा को न बताये। उसने मेरी इस सूचना से ही फायदा उठाया है, इसमें ज़रा भी शक नहीं, वरना उसे गिरफ्तार करने दादा क्यों जाते ?”

“अच्छा ! यह बात है ?” भाभी आश्चर्यचकित होकर बोलीं, “क्या तुम्हारे दादा ने उसे गिरफ्तार किया है ? अजीब बात है !” वह क्षण-भर

के लिए रुकीं, फिर बोलीं, “उनसे पूछने में कोई फायदा नहीं। अगर पूछूंगी तो बतायेंगे नहीं। यह कहकर कि कांग्रेस के राज्य में भी कम्युनिस्ट पकड़े जाते हैं, वह चुप हो जायेंगे। कम-से-कम यह अच्छा है कि वारंट यहां का नहीं, दिल्ली का है।”

“अब स्वाध्याय-मंडल अपने-आप बन्द हो गया।” मैंने कहा, “रमेश के न रहने से वह क्यों बन्द हो जाना चाहिए। स्वाध्याय-मंडल के कोई खिलाफ न था। दूसरे मेंबर यदि सच्चे और ईमानदार होते तो उसे कभी बन्द न होने देते।”

“सब दिखावा है। सच्चे और ईमानदार लोग बहुत कम होते हैं। इसीलिए हमारे आन्दोलन सफल नहीं होते। इस आशा से कि कांग्रेस के शासन में कुछ अधिकार हमें भी मिल जायं, आज कितने ही लोग विदेशी कपड़ों का त्याग करके खादी की पोशाक पहन-पहनकर कांग्रेस में घुस रहे हैं! यह इसी तरह चलता रहेगा। एक कहावत है, ‘हर गांव में ढेड़ों का एक मुहल्ला होता ही है!’”

आखिर भाभी ने दादा से पूछा ही और उन्हें उत्तर भी वही मिला, जिसकी उन्होंने आशा की थी। मुझे लगता है, दादा ने उषा से कहा होगा। एक बार मुझसे मिलकर वह बोली, “तुमसे यह किसने कहा कि रावसाहब को रमेश का नाम मैंने बताया?”

“कौन कहता है, ऐसा?” मैंने पूछा।

“रावसाहब ही कह रहे थे।”

“इस विषय में दादा से मेरी कोई बात ही नहीं हुई।”

आगे वह कुछ न बोली। पर बहुत देर तक वह मेरी ओर देखती रही। मैं भी उसी तरह बैठा रहा। मैंने अपने चेहरे के भाव ज़रा भी न बदलने दिये। उसके मन से संशय किसी भी तरह जा नहीं रहा था। उसे यह शक हो गया था कि उसकी पोल खुल गई है और इस शक से वह घबरा उठी थी। उसके चेहरे पर यह बात स्पष्ट झलक रही थी।

“तुम्हींने कहा होगा शायद!” वह एकदम बोली।

‘चुप रहो।’ मैं चिढ़कर चिल्ला उठा, “तुम स्वयं उसका नाम मुझे बता रही थीं। पर मैंने ही तुम्हें रोक दिया था। याद है तुम्हें? मैंने यही

मूर्खता की जो तुमसे कह दिया कि दादा को नाम न बताना । उसी धागे को पकड़कर तुमने यह बखेड़ा खड़ा किया है, अब मुझे पूरा यकीन हो गया !”

वह चुप रही । अपराध की स्वीकृति उसके मुखमंडल पर झलक रही थी ।

“कितना नीच काम किया तुमने यह, उषा ? मुसलमान से तुम यदि विवाह नहीं करना चाहती थीं तो साफ उससे कह देतीं । एक अच्छे कार्य-कर्ता को जेल भिजवा देने में तुम्हें क्या मिला ? मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि तुम जैसी पढ़ी-लिखी लड़की की इतनी अधोगति हो जायगी ! आज मुझे विश्वास हो गया कि यह अपराध तुम्हारा ही है ।”

उषा की आंखों में एकदम आंसू आ गये । वह बोलने की कोशिश कर रही थी, पर उसके मुंह से शब्द बाहर नहीं निकल रहे थे । भीतर से उमड़ रही सिसकी कहीं बाहर न निकल पड़े, इसलिए वह वहां से उठकर भीतर चली गई ।

थोड़ी देर के बाद भाभी आई, और बोलीं, “क्या हुआ उषा को ? तुमने क्या कह दिया उससे ? वह रो क्यों रही है ?”

“उसीसे पूछिये ।” मैंने कहा, “मेरा शक ठीक था । उसने मुंह से स्वीकार नहीं किया तो क्या हुआ, पर रोकर उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है, मेरे सामने ।”

भाभी तनकर बैठ गई, जैसे अकड़ गई हों ।

“उषा, इधर आओ ।” उन्होंने ज़ोर से पुकारा ।

आंखें पोंछती हुई उषा बाहर आई । भाभी बोलीं, “उषा, सच बताओ । यहां तुम्हारी कोई जान नहीं ले रहा है । रमेश का नाम तुमने बताया था ?”

गर्दन झुकाये उषा चुप बैठी हुई थी । यह देखकर भाभी ने आगे कहा, “अगर तुम्हें बताने की इच्छा न हो, तो मत बताओ । पर झूठ मत बोलो । हां, तुम्हींने बताया था । कितनी गिर गई हो तुम । ऐसा करो, पूना में तुम काफी रह चुकीं । अब बम्बई चली जाओ । मेरे घर मत रहो । विश्वास-घातियों से मुझे घृणा होती है !”

फूट-फूटकर रोती हुई उषा भीतर चली गई। भाभी वहीं एक कोच पर बैठ गई, बोलीं, “माफ करो, लाला। मैंने तुम्हें व्यर्थ दोष दिया। मेरी बहन इतनी नादान होगी, ऐसा मैंने नहीं सोचा था।”

वह प्रसंग देखकर मैं स्तंभित हो गया। मुझे यह कल्पना ही न थी कि बात इस हद तक पहुंच जायगी। भाभी का उस समय का आवेश देखकर मैं दंग रह गया। उन्होंने कोई हो-हल्ला नहीं किया। वह नाराज नहीं हुई। एक अप-शब्द भी नहीं बोलीं! पर जो दो-चार शब्द उनके मुंह से निकले थे, उनसे ही उषा लज्जा से गड़ गई थी।

जब दादा आये तब भाभी ने उनसे कहा, “उषा कल बम्बई जाने वाली है।”

“क्यों?” नित्य की भांति सहज भाव से दादा ने पूछा।

“यह आप जानते हैं।” भाभी ने गंभीरता से कहा, “विश्वासघाती मनुष्य को मैं अपने घर में नहीं रहने देना चाहती।”

“उसने क्या विश्वासघात किया है?” आंखें ऊपर उठाकर दादा ने पूछा।

“वह भी आप जानते हैं।” भाभी उतने ही निश्चय से बोलीं, “अब उस चर्चा की जरूरत नहीं।” इतना कहकर भाभी चली गई।

दादा हँस पड़े और वह भी ऊपर के कमरे में चले गये। उनके पीछे-पीछे किसी और की भी पग-ध्वनि हुई, इसलिए मैंने भांककर देखा तो उषा उनके पीछे-पीछे कमरे में जा रही थी। यह देखकर उसके पीछे-पीछे दबे पांव मैं भी ऊपर पहुंचा। ऊपर पहुंचते ही उषा दादा के कमरे में गई और उसने कमरे का दरवाजा तुरन्त भीतर से बन्द कर लिया। मैं दरवाजे से कान लगाकर खड़ा हो गया।

भीतर दोनों इतने धीरे-धीरे बोल रहे थे कि बाहर खड़े रहनेवाले को यह मालूम भी नहीं होता था कि कमरे के भीतर कोई कानाफूसी हो रही है। मैंने सुनने की बहुतेरी कोशिश की, पर ठीक से कुछ भी सुनाई न पड़ा। बीच-बीच मुझे अपना, भाभी का और रमेश का नाम जब-तब सुनाई दे जाता था।

इसी समय पीछे से किसीने मेरे चिकोटी काटी। मड़कर देखा तो भाभी

खड़ी थीं। उन्होंने मुझे नीचे उतरने का इशारा किया और वह स्वयं भी दबे पांव नीचे चलीं। शाला में सबक याद करके न आनेवाले लड़के की तरह डरते-डरते मैं नीचे आया। नीचे पहुंचकर भाभी डांट के स्वर में बोलीं, “क्या कर रहे थे वहां ? चोरी से बातें सुनने की औरतों की आदत कही जाती है। तुम तो आदमी हो। क्या कर रहे थे वहां ?”

मुझे चार बेंत मार दिये होते तो मैं उन्हें खुशी से सह लेता, परन्तु भाभी के वे शब्द सुनकर मुझे ऐसा लगा, जैसे किसीने मेरे कान पकड़कर जोर से उमेठ दिये हों। मुझे अनेक उत्तर सूझ रहे थे, पर मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। मैंने हिचकिचाते हुए कहा, “माफ कर दीजिये, भाभी। मुझे वह अच्छा नहीं लगा—आपके लिए ही।”

“मेरी चिन्ता करने की किसीको कोई ज़रूरत नहीं।” भाभी बोलीं, “मुझे सब बातों का पूरा पता है। क्या तुम सोचते हो कि उन दोनों को ऊपर जाते हुए मैंने नहीं देखा था ? पर क्या मैं गई थी वहां चोरी-चोरी उनकी बातें सुनने ? तुम पुरुष हम औरतों के लिए कहते हो कि हम छिपकर बातें सुनने की आदी होती हैं। तुम खुद ही ऐसा कर रहे हो ?” इतना कहकर भाभी एकदम वहां से चल दीं।

मैं लज्जा से गड़ गया। भाभी के भीतर आज यह सब क्या उठ खड़ा हुआ था ? मेरे सामने जब वह खड़ी हुई थीं, मुझे ऐसा लग रहा था, मानो मैं एक क्षुद्र कीट हूं। उषा-कांड का उनके मन पर बड़ा ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा था, जिसके कारण वह हम सबको ऐसे देख रही थीं, जैसे कोई हिमालय पर चढ़कर नीचे देखता है। कम-से-कम मुझे तो यही लगा।

मसलकर फेंक दिये गए कागज़ के टुकड़े की तरह मेरी दशा हो गई थी। मैं वहीं आराम-कुर्सी पर लेट गया। खड़े रहने की भी मुझमें शक्ति नहीं रह गई थी।

इसी समय किसीकी पदचाप मेरे कानों में पड़ी। जब ऊपर निगाह उठाकर देखा तो उषा हँसते-हँसते हाथ के बेग को भुलाती हुई बाहर जा रही थी। मैं दंग रह गया। रोती हुई ऊपर जानेवाली उषा नीचे आते समय हँसती हुई कैसे आई ? मन में आया कि जाकर यह समाचार भाभी

को सुना दूं, परंतु कुछ समय पहले के उनके रोष की याद आते ही मैं चुप रहा ।

दूसरे दिन बड़े तड़के उठकर भाभी नीचे आई और चाय बनाने लगीं । मुझे लगा चूंकि उषा आज सुबह की गाड़ी से बंबई जा रही है, इसलिए चाय और नाश्ता बन रहा होगा । उन्होंने उषा को जगाया, चाय पिलाई, नाश्ता कराया और उसका सामान ठीक से जमाने लगीं । जलपान से छुट्टी पाकर मुंह धोकर उषा आई और बोली, “मैं अभी नहीं जाती ।”

“तो कब जाओगी ? शाम को ?” भाभी ने पूछा ।

“अभी नहीं,” उषा बोली, “शाम को नहीं, कल नहीं, परसों नहीं, कभी नहीं । मैं यहीं रहूंगी ।”

भाभी का माथा भन्ना उठा, ऐसा उनकी मुद्रा से लगा । फिर भी वह बड़ी शान्ति से बोली, “हुक्म न मानना कोई अच्छी बात नहीं है, उषा !”

“अब हुक्म मानूँ किसका !” भाभी का कोई लिहाज न करती हुई उषा बोली, “तुम्हारा या तुम्हारे पति का ? घर के मालिक वह हैं । उनका हुक्म न मानना मुझे उचित नहीं मालूम होता ।”

“और मेरा हुक्म तोड़ना ?”

“तुम कौन हो ? सिर्फ पत्नी ही हो न ? क्या अधिकार है यहां तुम्हारा ? कल तुम मुझे इस घर से भगा रही थीं और आज मैं यहां जमकर डटी हुई हूं । यदि तुममें ताकत हो तो निकालकर देखो मुझे घर के बाहर !”

भाभी क्रोध से उबल पड़ीं । सिसकी को दबाकर बोलीं, “उषा, तुम्हारे भले के लिए मैं कह रही हूं । तुम्हारी इतनी बदनामी होने के बाद तुम्हारा यहां रहना ठीक नहीं । यह तुम्हें स्वयं ही समझ लेना चाहिए था ।

इसके बाद आगे बात नहीं हो पाई ।

“क्या गड़बड़ है ?” कहते हुए दादा कुरता पहनते-पहनते वहां आ पहुंचे ।

“लो, ये आ गये रावसाहब ।” उषा बोली, “अब तुम पूछ लो इनसे, जो पूछना चाहती हो ।”

“देखो, सुलू।” दादा बोले, “मैंने इसे यहीं रख लिया है। दूसरी बातें कुछ भी रहें, पर इसके पिता को मैं वचन दे चुका हूँ। यह अगर बीच ही में चली जायगी तो एक तो उसकी पढ़ाई अधूरी रह जायगी, दूसरे, बंबई जाने पर इसके पिता इससे व्यर्थ की जिरह करेंगे। जो बातें तुम नहीं चाहतीं कि उन्हें मालूम हों, वे सब वहां खोद-खोदकर बेकार निकाली जायंगीं। उषा जाओ, अपना सामान खोलो और अपने कमरे में ले जाकर जहां-का-तहां फिर से जमा लो।”

फिर भाभी की ओर देखकर बड़ी प्यारी हँसी हँसकर वह बोले, “पगली हो तुम। जाओ!” इतना कहकर वह वहां से चल दिये।

नाक पर अंगूठा रखकर उषा ने भाभी को मुंह बिचकाकर चिढ़ाया। यह देखकर मुझे लगा कि जाऊँ और उसके मुंह पर जोर से एक तमाचा जड़ दूँ। भाभी ने आंखें तरेरकर मेरी ओर देखा और उषा की ओर मुड़कर बोलीं, “ऐसा लगता है, उषा कि उनके साथ पेश आना मेरी अपेक्षा तुम अच्छी तरह समझती हो। उनसे गलती हो गई। विवाह के समय उन्होंने फिजूल जल्दी मचाई!”

उषा बड़े जोर-से हँस पड़ी। भाभी बोलीं, “उषा, इधर आओ।”

उषा नज़दीक आ गई तब भाभी बोलीं “लो, मेरा यह कान पकड़ो और जोर से इसे उमेटो। कम-से-कम मुझे यही सज़ा मिलने दो!”

उषा सचमुच अपना हाथ उनके कान के पास ले गई। यह देखकर मैं एकदम उठा और तड़ाक से उसके हाथ पर अपना हाथ मार दिया। भाभी ने आंखें निकालकर मेरी ओर देखा। मस्तक में चढ़ा हुआ मेरा खून एकदम नीचे उतर आया। उषा के चरणों को छुते हुए मैंने कहा, “मुझे माफ कर दो, उषा! भाभी, आप भी मुझे माफ कर दीजिये।” ऐसा कहकर मैं जैसे ही उनके चरणों को छूने के लिए झुका कि वह एकदम गरज उठी, “लाला!”

ये सब बातें एक क्षण में इतनी जल्दी हो गई कि अब उनकी संगति जोड़ना भी मुझे कठिन हो रहा है।

भाभी की डांट के कारण मैं एकदम ठंडा पड़ गया। इस बीच सामान लेकर उषा अपने कमरे में चली गई। मैं विचारों में खोया हुआ वहीं बैठा रहा। सामान रखकर उषा बाहर आई और जान-बूझकर मेरे सामने से

निकल गई। जाते समय की उसकी शान देखकर मुझे बड़ी चिढ़ हुई। शब्द होंठों तक आ गये, परंतु मैं उन्हें दबाकर चुप बैठ आ रहा। भाभी कब आकर चाय का प्याला मेरे सामने रख गई, इसका मुझे पता तक न चला।

उस दिन से घर का सारा वातावरण बिगड़ गया। बिना काम के कोई किसीसे भी नहीं बोलता था। भाभी ने तो मुझसे बातें करना ही छोड़ दिया था। उस दिन की बात से भाभी को गहरी चोट लगी होगी, ऐसी मेरी धारणा है।

इसी स्थिति में कुछ महीने बीत गये। इस अवधि में विशेष उल्लेखनीय कोई बात नहीं हुई। देश के नये शासन से दादा बहुत खुश थे। उस समय जब हर आदमी यह कहता था कि श्री मुंशी जैसा गृहमंत्री आज तक कोई नहीं हुआ, उस समय उन मंत्रियों के बारे में मेरा मन सशंक हो उठता। उन्होंने ऐसा कौन-सा काम किया था, जिससे दादा इतने खुश थे? क्या कड़े शासन का पुराना ढंग उन्होंने ज्यों-का-त्यों चालू रक्खा था?

कम-से-कम बाहर से तो वैसा नहीं दिखाई दे रहा था। मत-भेद सर्वत्र थे ही, पर गरीब लोग नये शासन से खुश थे। उस समय म्यूनिसिपैलिटी के चुनाव शुरू हो गये थे। मैं तांगे से कहीं जा रहा था। सहज ही मैंने तांगे-वाले से पूछा, “तुम अपना वोट किसे दोगे?”

“कांग्रेस को।” तांगेवाला बोला।

“क्या ऐसा इसलिए कह रहे हो कि मैं खादीधारी तुमसे पूछ रहा हूँ?” मैंने पूछा।

“नहीं, साहब।” वह बोला, “पहले ये पुलिसवाले हमें बहुत तंग करते थे। पर जबसे कांग्रेस का राज्य शुरू हुआ है, तबसे हमारी वह परेशानी बहुत कम हो गई है। ऐसी हालत में हम यदि कांग्रेस को वोट न दें तो फिर किसे दें?”

वात मामूली थी, परंतु उससे मैंने एक बड़ा सबक सीखा।

विधान-सभा का अधिवेशन अब पूना में शुरू हो गया था। सभा के सामने ‘ट्रेड यूनियन बिल’ शीघ्र ही पेश होनेवाला था। अपने-अपने मजदूरों के नेता कहनेवाले कम्युनिस्ट और स्वतंत्र मजदूर पक्ष के लोग इस बिल के खिलाफ जोरदार प्रचार कर रहे थे, विशेषतः कम्युनिस्टों का प्रचार बहुत

तेजी से हो रहा था। पूना, बंबई और शोलापुर में सभाएं हो रही थीं। कांग्रेस की जितनी निंदा की जा सकती थी, उतनी करने के लिए प्रत्येक वक्ता जी-जान से प्रयत्न कर रहा था।

अपने पक्ष के समर्थन में कांग्रेस ने इस समय कोई प्रचार किया था, यह मुझे तो याद नहीं आता। एक ही पक्ष की बात सुनी जाने के कारण मजदूरों में बड़ी गलतफहमी हो रही थी। बहुजन समाज पर कांग्रेस का काफी प्रभाव देखकर जो विरोधी पार्टियां हमेशा हार मान रही थीं, उन्होंने इस सूत्र को लेकर कांग्रेस से रस्साकशी शुरू कर दी थी। लोक-दृष्टि से वह बिल बिल्कुल निर्दोष नहीं था, ऐसा बहुतों का ख्याल था। यदि वह बिल सलेक्ट कमेटी के पास जाता तो उसमें कोई दोष न रह पाता। पर जब विरोधियों ने यह प्रचार करना शुरू कर दिया कि पूंजीपतियों को खुश करने के लिए ही कांग्रेस यह बिल विधान-सभा में ला रही है तो प्रचार का उचित उत्तर देने के लिए, किसी भी कारण से हो, कांग्रेस की तरफ से जो ढिलाई हुई उसके कारण कांग्रेस के खिलाफ असंतोष फैलाने का कांग्रेस विरोधियों का उद्देश्य सफल होने लगा।

कांग्रेस के विरुद्ध हो रहे इस आन्दोलन में उषा आगे बढ़कर भाग ले रही थी। कम्यूनिस्टों की दृष्टि से जब मैं उनका यह कांग्रेस-विरोधी आन्दोलन देखता तो मुझे उनकी यह बड़ी कृतघ्नता मालूम होती। मैं यह नहीं कहना चाहता कि चूंकि कांग्रेस-मंत्रि-मंडल ने कम्यूनिस्टों को जेल से रिहा कर दिया था, इसलिए उन्हें कांग्रेस के हर काम का आंखें बंद करके समर्थन ही करना चाहिए था। वह कृतघ्नता का विपर्यास होता, परंतु जिस ईर्ष्या से जिस कसक से, जिस जोश से, वे इस मामले में कांग्रेस के खिलाफ उठ पड़े थे, उतना भयंकर वह बिल निश्चित ही नहीं था। महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता करनेवाले आज के कम्यूनिस्ट, कल अगर मिल में हड़ताल होने जैसी असंभव बात हो गई, तो इसी कानून को लेकर मिलों को चालू रखने में मदद किये बिना न रहेंगे। महायुद्ध में उन्होंने ब्रिटिश सरकार की सहायता सन् १९४१ में की थी। पर यह बात है सन् १९३८ की याने महायुद्ध होने के पांच वर्ष पहले की। उस समय यह कल्पना ही न थी कि महायुद्ध होगा। ऐसे समय में कम्यूनिस्टों ने ट्रेड यूनियन बिल को

‘काला कानून’ कहकर, कांग्रेस की जो बदनामी की उसका कारण कांग्रेस के प्रति उनका द्वेष ही था, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं। यह द्वेष स्पष्ट दिखाई दे रहा था। यदि उन्हें उस काले कानून का ही विरोध करना होता तो इसके लिए वे डा० अम्बेदकर की स्वतंत्र मजदूर पार्टी और जमनादास मेहता की डेमाक्रैटिक स्वराज्य पार्टी तथा अन्य सभी कांग्रेस-विरोधी सभासदों से अपवित्र गठबंधन न करते।

कम्यूनिस्ट पार्टी कोई बिल्कुल ही कमजोर न थी। न वह डेमाक्रैटिक स्वराज्य पार्टी की तरह ‘षण्मुखशेटी पार्टी’ थी। उसी तरह यदि कांग्रेस के प्रति कम्यूनिस्ट पार्टी का द्वेष न होता तो अपनी ताकत पूरी होते हुए भी, जानबूझकर, किसी समय कांग्रेस के समान ही, बल्कि कांग्रेस से भी अधिक तीव्रता से कम्यूनिस्टों का विरोध करनेवाली इन पार्टियों से कम्यूनिस्ट कभी मदद न लेते।

जब मैंने यह कहा तब उषा बोली, ‘यह राजनीति है। राजनीति में कोई भी पार्टी किसी भी शक्ति का किसी भी समय उपयोग कर सकती है।’

“क्या यही तुम्हारा सिद्धान्त है?” मैंने पूछा, “दूसरी पार्टियां इस तरह बेपैदी के लोटे हो सकती हैं, परंतु अपनेको महान तत्त्वनिष्ठ कहने-वाले कम्यूनिस्ट भी यदि बेपैदी के लोटे की तरह पेश आयें तो यह उनके लिए अशोभनीय है।” इसपर उषा चिढ़ उठी और झल्लाकर बोली, “तो राजनीति में तुम बिल्कुल नालायक हो।”

मैं जानता था कि उषा का मत कम्यूनिस्ट पार्टी का मत नहीं था। पर उस समय मुझे यही दिखाई दिया कि कम्यूनिस्ट पार्टी के चोटी के नेता ठीक से यह नहीं देख रहे थे कि उनकी पार्टी के जिम्मेदार लोग किसे क्या उत्तर देते हैं !

पूना में कम्यूनिस्टों की जो सभाएं होती थीं, उनमें अपने अखबार की तरफ से मैं उपस्थित रहता था। उनमें कोई खास बात नहीं हुआ करती थी। विरोधियों का सारा आक्रमण बंबई के मोर्चे से हो रहा था। शोलापुर में भी बड़ी धूम थी। इस सारे प्रचार-कार्य में, जिसे मजदूरों का अधिकारी नेता कहा जा सकता था, ऐसा एक ही व्यक्ति अनुपस्थित था ! वह थे भारत-सेवक-समाज के एन० एम० जोशी। पर उस समय वह दिल्ली में थे, ऐसा

पता लगा। वह अगर बंबई में होते तो काले कानूनवाला यह मामला आगे चलकर जितने उग्र रूप में फैला, उस हद तक वह कभी न फैलता।

विरोधी पार्टियों के इस गुट ने इस काले कानून के विरोध में ७ नवंबर १९३८ को एक सार्वजनिक हड़ताल करने की योजना बनाई थी। जलूस निकल रहे थे। हड़ताल पूर्ण रूप से सफल हो, इसलिए जहां-तहां जो प्रचार किया जा रहा था, उसमें प्रमुखता से भाग लेने के लिए उषा बंबई चली गई थी।

बंबई में रोज सभाएं हो रही थीं। जलूस निकल रहे थे। प्रदर्शन हो रहे थे। लोगों में ग्राम चर्चा थी कि ये विरोधी पार्टियां भीतर-ही-भीतर जबर-दस्त कार्रवाही कर रही हैं। कांग्रेस के विरुद्ध होनेवाली सभाओं के भाषणों की जो रिपोर्ट आती थी, उनसे यही दीख पड़ता था कि कम्युनिस्ट पार्टी की भाषा उग्रता की चरम सीमा पर पहुंच गई थी। यह भाषा जितनी उग्रता से कांग्रेस का विरोध करने के लिए उपयोग में लाई जाती थी, उतनी साम्राज्यवाद के खिलाफ भी उन्होंने शायद ही कभी उपयोग में लाई होगी। उग्र भाषा के इस उफान में बीच-बीच में अश्वेदकर पार्टी और जमनादास पार्टी की भरपूर बघार मिल रही थी। बंबई और पूना के कांग्रेस-विरोधी पत्र होंठ चबा-चबाकर यह प्रचार कर रहे थे।

उषा के चले जाने से घर में कोई रुकावट नहीं रही थी। इसके बावजूद भाभी का क्रोध अभी तक शान्त नहीं हुआ था। इतने दिनों तक सार्वजनिक बातों की चर्चा करने के लिए उन्होंने एक बार भी मुंह न खोला था।

वैसे मैंने भी इस चर्चा के विषय में उनसे अभी तक कोई सवाल नहीं पूछा था। बिना पूछे उत्तर देने की उनकी आदत न थी। सवाल कम्युनिस्टों के बारे में था। इसलिए मुझसे रहा नहीं जा रहा था।

एक बार मैंने मौका निकाला और जो सवाल उषा से पूछे थे वे भाभी से पूछ डाले। वह बोलीं, “जब कम्युनिस्टों की बात उठती है तो उषा इस तरह बातें करने लगती है, जैसे वही उस पार्टी की महान नेता हो और उसकी बातें उतनी ही साधिकार हों। मैं कांग्रेस की अनुयायी हूं। पर कांग्रेस पार्टी से मेरा कोई संबंध नहीं है। कांग्रेस का व्रत और कांग्रेस पार्टी का कार्य

एक ही होता है, यह बात नहीं। कम-से-कम कौंसिल-प्रवेश के पश्चात् तो मैं निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकती। अखबार मैं रोज पढ़ती हूँ। प्रचार एक ही तरफ से हो रहा है। वैसे देखा जाय तो कम्यूनिस्ट विचार-धारा के श्री एम० एन० राय आज कांग्रेस की तरफ हैं। इस काले कानून के मामले में प्रत्येक 'रायस्टि' कांग्रेस का ही समर्थन कर रहा है। इसीलिए मेरे सामने यह सवाल खड़ा हो गया है कि सच किसे मानूँ? कानून के दांव-पेंच मेरी समझ में नहीं आते और न मैं उन्हें समझना ही चाहती हूँ। ऐसी परिस्थिति आगे पैदा होगी, ऐसा मुझे बहुत पहले से लग रहा था। बार-बार यह मैंने कहा भी था। जिसके हाथ में अधिकार होता है, उसका विरोध करना सामान्य वृत्ति होती है। इस बिल में थोड़ा-सा दोष है, उसे लेकर तिल का ताड़ बनाने की विरोधियों द्वारा जो कोशिश हो रही है, उसके कारण कांग्रेस के विरोधियों की संख्या बढ़ जायगी।" इतना कहकर वह थोड़ी देर के लिए चुप हो गई, फिर बोलीं "तुम पुरुष हो। फिर ऐसे सवाल मुझसे क्यों पूछते हो? बरस-छः महीने से ही क्यों न हो, पर उमर में तुम मुझसे बड़े हो। अखबार के दफ्तर में काम करते हो, बाहर राजनैतिक नेताओं से मिलते-जुलते रहते हो, विधान-सभा की बैठकों में उपस्थित रहते हो। ये सब बातें तुम्हें मालूम होनी चाहिए। असल में मुझे ही तुमसे ये बातें पूछनी चाहिए थीं, क्योंकि मैं घर में बैठी रहती हूँ।

"इसीलिए तो आपसे पूछा।" मैंने कहा, "हम बाहर घूमते हैं। चार लोगों के चार मत हमारे कानों में पड़ते रहते हैं। उनका मन पर प्रभाव पड़ता है। आप घर में रहती हैं। किसी भी पार्टी की बात आपको सुनाई नहीं पड़ती। अपनी ही अक्ल से आप सोचती हैं, इसीलिए आपसे ही पूछना चाहिए!"

भाभी हँस पड़ीं, बोलीं, "आजकल तो तुम काफी बोल लेते हो!"

"यह उषा की कृपा है!" मैंने हँसकर कहा, 'यदि वह मुझसे न बुलवाती रहती तो अबतक मैं मूक ही बना रहता, सिर्फ सुनता रहता। उषा की कृपा से वाचालों का सहवास मिला और मेरी वाचा फूट पड़ी। स्वाध्याय-मंडल में कई पारिभाषिक शब्द सीख गया। अब बोलता हूँ, काफी बोल-लेता हूँ, कौन कहेगा कि मैं अशिक्षित हूँ।"

भाभी ने एकदम ठहाका मारा यह देखकर मैंने कहा, “आज मुझे ऐसा लगा, जैसे पेट भर गया। इतने दिनों तक मैं भूखा था। कभी आप मेरे पास बैठी नहीं, मुझसे बोली नहीं, मुझसे लड़ीं नहीं, मुझपर नाराज नहीं हुई। उषा के उस कांड के बाद से मुझपर कभी आंखें भी तेज नहीं कीं, बिल्कुल जड़ जैसा लग रहा था मुझे। आज ऐसा जान पड़ा जैसे ग्रहण छूट गया, जी ठंडा हो गया।”

इस समय भाभी हँसी नहीं। अनजाने एक सिसकी लेकर बोलीं, “कैसे कटेगी तुम्हारी, लाला ? जो हो रहा है, वह ठीक नहीं। दो के दो अलग-अलग रास्ते हैं। तुम अब यहां उलझ गये हो। तुम्हारे दादा का यदि कल कहीं दूसरी जगह तबादला हो गया तो क्या तुम नौकरी छोड़कर हमारे साथ चलोगे ? क्या होगा तुम्हारा ?”

“और आपका ?” मैंने धीरे से पूछा।

“हां।” भाभी बोलीं, “यह भी एक प्रश्न ही है। क्या होगा हमारा आगे ?” कहते-कहते वह एकदम रुक गई।

दादा को भीतर आते उन्होंने देख लिया था। वह बात वहीं तक रही। दूसरी बातें चल पड़ीं। हड़ताल के सिलसिले में दादा शायद बंबई भेजे जा रहे थे। आस-पास के जिले के और भी कई पुलिस अफसरों और सिपाहियों को भी बंबई जाने का हुक्म हो गया था। दादा बड़े खुश थे। कई दिनों के बाद अब दंगा, मार-पीट, आगजनी और शायद गोलीकांड भी होगा, इस आशा से वह आनंदविभोर होकर बड़े रंग में बातें कर रहे थे।

उनकी सारी बातें सुनते हुए मेरे मन के आस-पास एक ही विचार चक्कर काट रहा था, “हमारा क्या होगा ? हम दोनों की कैसे कटेगी ?”

: १२ :

नवंबर की ७ तारीख नज़दीक आ गई थी। विरोधियों का प्रचार ज़ोरों पर था। बंबई की प्रांतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने इस काम का नेतृत्व ग्रहण किया था। सन् १९३६ के नागपुर के अधिवेशन में एन० एम० जोशी ने ऑल इंडियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस से अपना संबंध-विच्छेद कर दिया और वह संस्था संपूर्ण रूप से कम्युनिस्टों के हाथ में चली गई। जोशी महाराज की पार्टी ने ‘नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन’ नाम की संस्था स्थापित की।

कम्यूनिस्टों की 'मिल मजदूर यूनियन' (लाल भंडा) इसका नेतृत्व कर रही थी। इस संस्था के द्वारा बंबई से 'क्रान्ति' नाम का एक समाचार-पत्र प्रकाशित होता था। सन १९३७ के अक्टूबर में कांग्रेस-मंत्रि-मण्डल द्वारा कम्यूनिस्टों को जेल से रिहा कर देने के बाद से यह समाचार-पत्र प्रकाशित होने लगा था। सन् १९३८ के सितंबर में 'स्वतंत्र मजदूर पार्टी' के उस समय के सभासद शामराव फुलेकर (आगे चलकर उन्होंने यह पार्टी छोड़ दी।) विलायत से लौटे। उस समय उन्होंने १० सितंबर के 'क्रान्ति' पत्र में एक दिन की सार्वत्रिक हड़ताल करने का विचार प्रकाशित किया। सहज ही डा० अम्बेदकर भी इसके समर्थक थे। सितंबर के तीसरे सप्ताह में 'बांबे ट्रेड यूनियन कांग्रेस' के अध्वर्यु कम्यूनिस्टों ने इस हड़ताल में शामिल होने का निश्चय किया। जमनादास मेहता भी उसमें शामिल हो गये। इस अवधि में उन्होंने बंबई में जगह-जगह पर कोई चालीस सभाएं कीं। मराठी का 'क्रान्ति' और अंग्रेजी का 'नेशनल फ्रंट' ये दो अखबार इस एक दिन की सार्वत्रिक हड़ताल का बड़े जोर-शोर से प्रचार कर रहे थे। सबके क्रोध का निशाना श्री मुंशी थे। सहज ही कांग्रेस-मंत्रि-मंडल के मुख्य मंत्री बालासाहब खेर भी उनके आक्रमण से बच नहीं पाये थे। मारपीट और दंगा करने के लिए जनता को खुल्लमखुल्ला भड़काया जा रहा था। कांग्रेस के अहिंसा के सिद्धान्तों की खिल्ली उड़ाई जा रही थी, और ऐसी कोशिश की जा रही थी कि किसी भी तरह कहीं-न-कहीं दंगा जरूर हो।

हड़ताल के काम पर दादा की नियुक्ति होने के कारण वह बंबई चले गये।

बम्बई के अखबारों में इस आन्दोलन के जो समाचार आते थे, उनसे पता चलता था कि इस आन्दोलन में उषा बड़ी प्रमुखता से भाग ले रही है। मुझे उन समाचार-पत्रों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। इस आन्दोलन में वह किस रीति से भाग ले रही है और किन मुख्य बातों पर भाषण दे रही है, यह प्रत्यक्ष सुनने को मिलता तो अच्छा होता, परन्तु विधान-सभा की बैठकें आजकल पूना में हो रही थीं। इसलिए अपने पत्र के प्रतिनिधि के नाते मुझे यहीं काम करना पड़ता था। बम्बई के इस आन्दोलन का पूना के पत्रों पर विशेष असर न होता था। शोलापुर के संवाद वहां से सीधे आते

थे, इसलिए वहां भी अपना कोई रिपोर्टर भेजने के लिए हमारे सम्पादक तैयार न थे।

इस आन्दोलन के मूल प्रवर्तक डा० अम्बेदकर और जमनादास मेहता तथा इस कल्पना के जनक शामराव पट्टेकर विधान-सभा की बैठक के लिए इस समय पूना में ही थे। बम्बई के कम्युनिस्ट मिल-नगरी में जगह-जगह पर जो भाषण दिया करते थे, वे सब एक निश्चित सांचे में ढले होते थे। साम्राज्यशाही की अपेक्षा पूंजीपतिशाही—और पूंजीपतिशाही के साथ-ही-साथ से कांग्रेस और कांग्रेस-मन्त्रि-मण्डल, इनपर निश्चित भाषा में आक्रमण हो रहा था। बीच-बीच में जलूस भी निकलते थे।

मैं इस आन्दोलन की अन्दरूनी कार्यवाही जानना चाहता था। इस समय यदि मैं बम्बई जाता और उषा के पीछे लग जाता तो शायद वह जानकारी मुझे मिल जाती। उषा ने पीछे एक समय मुझे जो वचन दिया था, उससे फायदा उठाकर, दुनिया की राजनीति को हिला देने की इच्छा रखनेवाले बम्बई के उन लाल नेताओं से मैं परिचय भी कर सकता था। पर मेरे सम्पादक ने वह मौका मुझे न दिया। इसका मुझे मलाल था।

दादा बम्बई में कहां जाकर रहे थे, इसका हमें कोई पता न था। परंतु वह अपनी ससुराल में नहीं रहे थे, यह निश्चित था। दूसरी हैरानी मुझे यह हो रही थी कि क्या बम्बई में भी उषा दादा से मिलती होगी?

उषा उस समय शत्रु के गिरोह में थी। जिस गुट में वह थी, उस गुट पर नज़र रखने के लिए दादा की नियुक्ति हुई थी। उषा के भोलेपन से फायदा उठाकर कम्युनिस्टों की अन्दरूनी बातें जान लेना दादा के लिए असम्भव न था। शासन भले ही कांग्रेस का हो, पर कम-से-कम मैं तो यह नहीं करता था कि पुराने शासन के मंजे हुए पुलिस अफसर अहिंसक हो बैठेंगे।

भाभी का भी यही ख्याल था। वह बोलीं, “जो हम नहीं चाहते थे, वही हो रहा है। मैं बड़ी चिन्ता में हूं। मुझे लगता है कि कांग्रेस-मन्त्रि-मण्डल का शान्ति रखने का उद्देश्य कम-से-कम इस समय तो सफल न होगा। कम्युनिस्टों की कार्य-दक्षता के लिए मुझे आदर है। परन्तु उनकी एक बुरी आदत यह है कि वह दूसरी पार्टियों की बातों में बहुत जल्द आ जाते हैं।

उनके वशीभूत हो जाते हैं। आज इस आन्दोलन को सफलतापूर्वक चलाने की उनमें पूरी शक्ति है। इसके बावजूद उन्होंने स्वतन्त्र मजदूर दल की मदद क्यों ली, यही मैं नहीं समझ पा रही हूँ। सच पूछा जाय तो मिल-नगरी में लाल भण्डे याने कम्यूनिस्टों का ही प्रभाव अधिक है। उनकी पुकार पर ही आज सब मजदूर लड़ने के लिए तैयार हो गये हैं। स्वतन्त्र मजदूर पार्टी भले ही यह दावा करे कि सारे मजदूरों पर उसका प्रभाव है, पर यह दावा थोथा है। मजदूरों में कुछ विशेष जाति के लोग हैं, सिर्फ उन्हींपर इस पार्टी का प्रभाव है। बाकी लोगों पर इस पार्टी के नेता का कोई प्रभाव नहीं। जमनादास मेहता की पार्टी को मजदूर लोग ज़रा भी महत्व नहीं देते। 'भारत-सेवक समाज' ने मिल-नगरी में आज तक जोशीजी के नेतृत्व में जो काम किया है, उसके कारण शामराव परुलेकर का मिल-नगरी में थोड़ा-बहुत प्रभाव है। पर जोशीजी और परुलेकर दोनों आज बम्बई में नहीं हैं। इस लिए मेरा ख्याल है कि उनकी गैरहाजिरी का परिणाम अच्छा नहीं होगा। जोशीजी कम्यूनिस्ट नहीं हैं, परन्तु आज तक उन्होंने अनेक बार कम्यूनिस्टों को अपने हाथ में लेकर खिलाया है। कम्यूनिस्ट कितने भी ताकतवर हों, कितने भी उग्र हों, पर जोशीजी उन्हें चाहे जब अपनी ओर झुका सकते हैं। उनका पुरुषार्थ ही ऐसा है। उनकी सारी ताकत उनके पुरुषार्थ में है, पारिभाषिक वाचालता में नहीं। बम्बई में जब कम्यूनिस्टों का जन्म भी नहीं हुआ था, तबसे उन्होंने मजदूरों की राजनीति में बड़ी स्पर्धा से भाग लिया है। भारत-सेवक-समाज की पुरानी नरम नीति को लड़ाकू बना देनेवाले जोशीजी इस समय बम्बई में नहीं हैं, यह कांग्रेस-मन्त्रि-मण्डल का दुर्भाग्य है।" इतना कहकर भाभी ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा और चुप हो गई।

जोशीजी याने नारायण मल्हार जोशी को मैंने एक-दो बार सिर्फ रास्ते से जाते देखा था। उनसे मेरा प्रत्यक्ष परिचय न था। भाभी उन्हें पहचानती थीं। यही नहीं, बल्कि कुछ दिनों तक वह उनकी शिक्षा में बढ़ी थीं। उनकी बातों से मुझे लगता था कि जोशीजी के प्रति उनके हृदय में बड़ा आदर है। जोशीजी कांग्रेस में नहीं थे। कुछ लोगों का ख्याल था कि वह कांग्रेस के विरोधी हैं। मैं सोचता हूँ कि चूँकि वह भारत-सेवक-समाज

के सदस्य थे, इसीलिए शायद लोगों का यह ख्याल हा गया होगा। कांग्रेस पार्टी में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था, जो मजदूरों के लिए काम करता हो। इसीलिए कांग्रेस की राजनीति की दृष्टि से भाभी को जोशीजी बड़े महत्वपूर्ण लग रहे थे।

मैंने कहा, “आज तो नहीं, पर हड़ताल के दिन मुझे बंबई भेजना हमारे पत्र के संपादक ने स्वीकार किया है। आप चलेंगी मेरे साथ ?”

भाभी ने एक बार मेरी ओर देखा। माथे पर शिकनें डालीं और बायां हाथ अपने केशों पर से फेरते हुए बोलीं “कई बरसों से मैं मायके नहीं गई हूं। अगर जाऊं तो पिताजी को भी बड़ी खुशी होगी, पर तुम्हारे दादा से इजाजत नहीं ली है। पत्र से इजाजत मंगवाऊं, उतना वक्त नहीं है। क्या चलूं तुम्हारे साथ ? तुम्हारा क्या ख्याल है ? चलूं ? अगर उनकी इजाजत के बिना जाऊं तो वह क्या कहेंगे ? क्या सोचेंगे ?”

“मुझे आपपर बड़ा आश्चर्य होता है, भाभी !” मैंने सचमुच आश्चर्यचकित होकर कहा, “मैंने कभी नहीं सोचा था कि दादा से आप इतनी डरती हैं ! आप सुशिक्षिता हैं। मेरा ख्याल था कि सुशिक्षितों की गृहस्थी पुराने ढर्रे की गृहस्थियों की अपेक्षा कुछ भिन्न होती होगी। यहां आप दोनों की गृहस्थी में मैं एक मुफ्तखोर हूं। मुझे यह पता ही नहीं चल पाता कि आप दोनों आखिर एक-दूसरे के साथ व्यवहार किस तरह करते हैं ? क्या दादा से आप सचमुच इतना भय खाती हैं ?”

भाभी हँस दीं और क्षण-भर के लिए खामोश रहीं। जब वही प्रश्न मैंने फिर किया तो बोलीं, “मान लो तुम भी आज गृहस्थी सजाकर बैठे हो और तुम्हारे दादा की तरह तुम्हें भी किसी काम के लिए घर से बाहर जाना पड़ता है और तुम्हारी गैरहाजिरी में तुमसे बिना पूछे तुम्हारी पत्नी मायके चल देती है...।”

“आप सिर्फ मायके ही नहीं जा रही हैं।” मैं बीच ही में बोल उठा, “आपको वह एक-दिवसीय हड़ताल भी तो देखनी है न ?”

“यह सच है। पर जब यहां से जाऊंगी तो बंबई में किसी होटल में तो उतरूंगी नहीं। जाऊंगी तो घर ही न ? और यह जाना, मायके में जाना ही माना जायगा। कारण को कौन देखता है ?”

“देखिये भाभी, आप मुझे पत्नी के बारे में कल्पना करने को कहती हैं। पर सच यह है कि हम जो कल्पनाएं करते हैं, वे सभी प्रत्यक्ष अनुभव में सच नहीं निकलतीं। कुछ ही सच निकलती हैं और बहुत-सी गलत हो जाती हैं। इसलिए अगर मुझे सिर्फ कल्पना ही करनी है तो मैं कहूंगा कि मेरी गैरहाजिरी में मेरी पत्नी मुझसे बिना पूछे यदि अपने मायके चली जाती है तो इसका मुझे ज़रा भी बुरा न लगेगा। पति और पत्नी दोनों को थोड़ी स्वतंत्रता तो होनी ही चाहिए। मायके जाना कहीं भाग जाना नहीं है। पर पति-पत्नी के प्रत्यक्ष रिश्ते में मन की जो स्थिति होगी, उस स्थिति को कल्पना से जानने की कोशिश करना खतरनाक होगा, ऐसे मुझे लगता है।”

“कम-से-कम इतना तो समझते हो !” भाभी ने इस तरह कहा जैसे अपने-आपसे बोल रही हों, “परिस्थिति के परिणाम के बारे में जो मनुष्य संशंक होता है, उसके हाथ से बहुधा गलती नहीं होती। जिनके मन पक्के बन जाते हैं, उन्हें किसीके बारे में कभी कोई शंका ही नहीं होती ! हां, तो तुम्हारा ख्याल है कि मैं भी चलूं ?”

“मैं कुछ भी नहीं कहता।” मैं बड़ा सावधान होकर बोला, “मैंने सिर्फ आपसे पूछा भर है। मैं जा रहा हूं, यह बिल्कुल तय है। यदि हो सका तो दो दिन पहले ही चला जाऊंगा।”

“अच्छा-अच्छा !” भाभी बीच ही में बोल उठीं, “अच्छा, चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी। ज़रा मज़ा तो देखने को मिलेगा। ऐसे प्रसंग देखने का सौभाग्य शायद ही कभी प्राप्त होता है।”

अंत में हम दोनों के जाने का निश्चय हो गया। पति से इजाजत लेने का ढोंग न करके भाभी ने दादा को पत्र लिखकर अपने बंबई आगमन की सूचना भेज दी। उत्तर आने के लिए समय ही न था।

५ तारीख की शाम को बंबई पहुंचे। बोरीबंदर स्टेशन से बाहर आकर मैं एक टैक्सी तय कर रहा था। इसी समय हमारे सामने से एक टैक्सी निकल गई। उस समय कुछ अंधेरा-सा हो गया था। फिर भी मैंने पक्के तौर से पहचान लिया कि उस टैक्सी में दादा थे और उनके नज़दीक ही उषा बैठी हुई थी।

भाभी ने अपने आने की सूचना पिताजी को नहीं दी थी। वह उन्हें आश्चर्यचकित कर देना चाहती थीं। परंतु घर पहुंचने पर वह बोले, “सुलू आ गई तू ? तेरी ही प्रतीक्षा कर रहा था ?” मुझे लगा कि दादा ने पहले आकर हमारे आने की सूचना यहां दे दी होगी।

सब ठीक-ठाक हो जाने पर जब हम लोग शांति से बैठे, तब भाभी के पिताजी बोले, “देख फकीर की तरह मैं अकेला रह रहा हूं और तुम लोगों को मेरी कोई चिन्ता नहीं। सुना है, तेरा पति भी यहां आया है। पर वह अभी तक आकर मुझसे मिला तक नहीं। बूढ़े का हृदय कैसा होता है, यह बुढ़ापा आये बिना तुम लोग जान ही नहीं सकते।”

विल्कुल रुआंसी हूँसी हूँसकर भाभी बोलीं, “वृद्ध हो जाने पर मनुष्य अपनी तरुणार्थ भूल जाता है। आप ही बताइये कि क्या आप भी मेरी मां को जल्दी-जल्दी उनके मायके भेजा करते थे ?”

एक कहकहा लगाकर भाभी के पिताजी बोले, “क्या तू सोचती है, सुलू कि तेरे इस सवाल का मेरे पास कोई जवाब नहीं ? तेरे होश में आने तक तेरी मां का मायका ही कहां रहा था ? पर जब उसका मायका था, तब वह चाहे जव कोकण चल देती थी। मुझसे पूछती तक न थी और न मैंने ही कभी यह ज़िद की कि उसे मुझसे पूछकर जाना चाहिए। पर इस समय मेरे पास इसका कोई सबूत नहीं। हां, यह जरूर सच है कि बहुत-से लोगों को उस समय पत्नी को इतनी स्वतंत्रता देना अच्छा नहीं लगता था।”

“उषा कहां गई ?” मैं बीच ही में पूछ बैठा।

“उषा...कहां...गई...!” भाभी के पिताजी एक लंबी सांस लेकर बोले, “यदि मैं यह जानता तो यह क्यों कहता कि लड़कियों को मेरी चिन्ता नहीं ? सुलू की बात छोड़ दो, उसका विवाह हो चुका है। पर उषा इतनी आजाद हो गई है कि मैं क्या कहूं ! एक तो जन्म से ही बच्चों को डांटने-धमकाने की मुझे आदत नहीं, पर अब ऐसा लगता है कि इस छोकरी की भी शादी कर देता तो अच्छा होता !”

इतने निराशा के स्वर में वह यह कह रहे थे कि इसके बाद उनसे कोई प्रश्न पूछना मुझे उचित न जान पड़ा। अर्थ-भरी दृष्टि से भाभी ने मेरी

और देखा । बोरीबंदर पर उषा और दादावाली टैक्सी क्या उन्होंने भी देख ली थी ?

भाभी के पिता ही पुनः बोले, “यहां एक दिन की जो हड़ताल हो रही है, उसीके काम में लगी है । रात को बारह-एक बजे तक घर लौटती है । गोदावरी गोखले, कमल वागले और हमारी यह उषा, ये तीनों लड़कियां भगवान जाने क्या किया करती हैं ! कहती हैं, हम प्रचार कर रही हैं । लोग उन्हें मनमाना बदनाम कर रहे हैं । मेरे पास आकर शिकायत करते हैं । मैं किसीकी नहीं सुनता । अपने कर्मों के लिए लड़कियां खुद जिम्मेदार हैं । मैं क्यों जान-बूझकर उनके काम में हस्तक्षेप करूं ? उनका नाम अखबारों में छप रहा है । इसके आड़े मैं क्यों आऊं ? यदि मैं उन्हें इस काम से रोक दूं तो इसीके लिए लोग मुझे दोष देने लगेंगे । मैं नहीं चाहता कि कोई मुझे यह दोष दे । मैं तो फकीर हो ही गया हूं । यदि उसका विवाह हो जाता तो वह भी इस सुलू की तरह पति के घर के जेल में बंद हो जाती अभी तक ! मैं यही सोच लेता हूं और खामोश रहता हूं ।”

उन वृद्ध महाशय की यह वृत्ति मुझे बड़ी सराहनीय लगी । घड़ी-भर के सहवास में ही उनके प्रति मेरे मन में बड़ा आदर पैदा हो गया । कम-से-कम हमारी जाति में ऐसे मनुष्य बहुत ही कम मिलते हैं । भाभी से उनके पिता वचपन में किस तरह पेश आये होंगे, इसकी कल्पना मुझे हो गई ।

मन-ही-मन मुझे भाभी पर बड़ा गुस्सा आया । गुस्सा इसलिए आया कि उन्होंने इतने दिनों तक अपने पिता के बारे में मुझसे कभी कुछ नहीं कहा था । भाभी ने कभी मुझे यह नहीं बताया था कि किसी समय कपास के बाजार में हलचल मचा देनेवाले ये वृद्ध महाशय आजकल बेकार होकर घर में अकेले रहकर अपना जीवन किस तरह बिता रहे हैं । क्या पिता की उन्हें कोई चिन्ता ही नहीं थी, और फिर ऐसे पिता की !

मेरे प्रश्न का आप-ही-आप उत्तर मिल गया । भाभी बोलीं, “यह सब आप ही का अपराध है, बापू ।” भाभी उन्हें ‘बापू’ कहती थीं । “हमें आपने वचपन से ही स्वतंत्रता दे रखी थी । हम कुछ भी करतीं तो आप हमसे कुछ कहते ही न थे । फिर अब क्यों आप हम लड़कियों की शिकायत करते हैं ?”

“मैं कहां शिकायत कर रहा हूं ? तू आई है, इसलिए सहज कह दिया। बस !”

बीच में बापू उठकर किसी काम से भीतर के कमरे में चले गये। उस समय मैंने भाभी से कहा, “आपके बापू बड़े विलक्षण मालूम होते हैं। पूरे स्थितप्रज्ञ दिखाई देते हैं। आपने इनके बारे में मुझसे कभी कुछ नहीं कहा ?”

भाभी की आंखों में एकदम आंसू छलछला उठे। आंचल से उन्हें पोंछकर वह बोलीं, “अभी देखा न तुमने ? क्या कोई दिखावा किया उन्होंने। मैं आज इतने दिनों के बाद आई हूं, पर उन्होंने कोई खुशी जाहिर नहीं की, और न मुझपर इसलिए नाराज ही हुए कि मैं इतने दिनों तक क्यों नहीं आई ? मां की अपेक्षा मुझे बापू से ही अधिक प्यार रहा। इसीलिए किसी के सामने उनकी याद करना मेरे लिए बड़ा कठिन होता है। मेरे लिए वह मां से भी अधिक हैं !” यह देखकर कि बापू लौटकर पुनः हमारे कमरे में आ गये हैं, वह रुक गई और बापू को लक्ष्य करके बोलीं, “क्या हम उषा की राह देखें या उसके आने से पहले ही खाने पर बैठ जायें ? मुझे बड़ी भूख लगी है।”

“और तेरे इन लाला को ?” बापू ने पूछा, “शायद इन्हें भूख नहीं लगती ? मैं तो रात को खाना खाता नहीं। तुम दोनों जाकर खाना खालो। अगर उषा के लिए रुकोगे तो सुबह हो जायगी !”

“नहीं-नहीं ! मैं यह नहीं सुनूंगी !” भाभी बड़े लाड़ में आकर बोलीं, “आज आपको हमारे साथ खाना ही होगा। एक दिन शाम को थोड़ा-सा खा लेने से आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा !”

“तू भी बड़ी शरीर है, सुलू !” ऐसा कहकर उन्होंने रसोइये को पुकारा और बोले, “एक और थाली परस दो। अच्छा हुआ, जो आज ‘पापलेट’ मिल गये। बहुत दिनों के बाद तुझे आज बंबई के ‘पापलेट’ चखने को मिलेंगे ?”

हम लोग खाने पर बैठ ही रहे थे कि उषा आ पहुंची। भांककर जाते-जाते बोली, “आगई, जीजी ?” उससे किसीने कुछ नहीं पूछा। जब वह थोड़ी देर के बाद फिर आई तो मुझे लगा कि वह हाथ-मुंह धोकर आई

होगी। भीतर आते ही उसने रसोइये को पुकारकर अपने लिए भी एक थाली लगाने को कहा।

“कहां गई थीं, उषा ?” भाभी ने पूछा। पीढ़े पर बैठती हुई वह बोली, “तुम्हें कुछ कल्पना भी है ? ये कितने संकट के दिन हैं ? कितने इरादे किये हैं हम लोगों ने ? ७ नवम्बर दुनिया के इतिहास में अमर रहनेवाला दिन होगा। रूस के उस ७ नवम्बर का यहां यह दूसरा संस्करण होगा। मुंशी भी याद रखेंगे ! मुना है, बड़ा सख्त इंतजाम कर रहे हैं वह, और बनते हैं अहिंसा के बड़े हिमायती, महान समर्थक ! कई स्थानों से यहां पुलिस बुलाई गई है। उन्हींकी एक बड़ी भीड़ लग गई है बंबई में। पर हम लोग भी उनसे कोई कम नहीं हैं। हमने भी अपनी अच्छी तरह मोर्चाबंदी कर ली है। ७ नवम्बर तो आने दो। फिर देख लेना, सारी बंबई में उस दिन हमारा राज...”

“हमारा याने किसका ?” भाभी ने बीच ही में धीरे-से पूछा।

“हमारा याने वर्कर्स का” उषा बोली, “मजदूरों का, किसानों का !”

“क्या किसान लोग भी आये हैं ?” भाभी ने पूछा।

“अजी, सारे वर्कर्स का।” उषा आवाज़ चढ़कर बोली, “इस शब्द में सबकुछ आ गया ! एक दिन सारी बंबई में सरकार का शासन ठप्प कर दिया जायगा। मिलें बंद रहेंगी, गाड़ियां रुक जायंगीं, बसें नहीं चलेंगी, ट्राम्स बंद रहेंगी, विक्टोरिया भी खोजने से न मिलेंगी। यही नहीं, बल्कि घरों में बर्तन मांजनेवाली तथा दूसरे काम करनेवाली नौकरानियां, लड़के और नौकर आदि भी काम पर नहीं जायेंगे !”

“और टैक्सी ?” भाभी ने पूछा।

“टैक्सियां भी बंद रहेंगी, लाल भंडेवाली टैक्सियों को छोड़कर !” उषा बोली।

“तब तो मेरा आना बेकार ही हुआ !” भाभी बोलीं।

“क्यों ?” चकित होकर उषा ने पूछा, “क्या हड़ताल का मज्जा देखने आई हो तुम १ सुलू जीजी, याद रखना, उस दिन कोई कांग्रेस का जलूस नहीं निकलेगा। क्रांति का झंडा फहरायगा उस दिन ! एक खासा मोटा डंडा लेकर निकलनेवाले हैं हम तुम्हारे मुंशी के पीछे उस दिन ! यह तुम्हारा

‘रघुपति राघव राजा राम’ नहीं है। यह क्रान्ति है, इन्कलाव है ! पूंजी-पतियों और मजदूरों की लड़ाई है। इसमें तुम जैसों को स्थान नहीं ! हड़ताल का तमाशा देखनेवाले तमाशवीनों को एक भी टैक्सी नहीं मिलेगी उस दिन ! और बलवंतराव तुम, तुम कैसे पधारे ?” मैं एकदम चौंक उठा। यह देखकर वह बोली, “तुम तो सिर्फ इतने से ही चौंक उठे ! फिर संवाद कैसे इकट्ठे करोगे ? हमारी मिल-नगरी में घूमनेवाले हो न ? टैक्सी के लिए तुम्हें पैसे दिये हैं क्या तुम्हारे पूना के सम्पादक ने ? या अपनी ही जेब से खर्च करनेवाले हो ? पर हां, तुम्हें टैक्सी मिलेगी कैसे, यही बड़ा सवाल है। एक बात याद रखना बलवंतराव, यह खादी की टोपी लगाकर कल वहां मन ग्राना, वरना इस सफेद टोपी के नीचे का सिर सलामत रखना मुश्किल हो जायगा तुम्हें ?”

“मतलब ?” मैंने घबरा जाने का अभिनय करते हुए कहा, “क्या सिर फूटेंगे उस दिन ?”

“कौन कह सकता है ?” उषा बोली, “फूट भी सकते हैं। वैसे हमने तो सारा आन्दोलन बिल्कुल शान्ति से चलाने का ही निश्चय किया है और हम भरसक कोशिश भी करेंगे कि हमारे मजदूर बिल्कुल शान्त रहें। पर तुम्हारी पुलिस ही यदि गड़बड़ी करने लगेगी तो क्या होगा और क्या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।”

“पुलिसवालों के सिर पर खादी की टोपी नहीं होती।” भाभी बोलीं, “तुम इन्हें खादी की टोपी से डरा रही हो ? इन दोनों का मेल कैसे जमे ?”

“यह उसी दिन देख लेना।” उषा बोली।

उषा हमारे वाद खाना खाने बैठी थी। उसने जैसे-तैसे जल्दी-जल्दी खाना खाया और हमसे पहले ही उठ गई। यह देखकर बापू बोले, “क्या अभी और भी कहीं जाना है तुम्हें ?”

“अब और कितनी बार कहूं आपसे, बापू ?” उषा चिड़कर बोली, “आप मुझसे ऐसे सवाल न पूछा करें।”

यह देखकर कि उषा चली गई, वह भाभी से बोले, “देखा ? यही चल रहा है। तू भी तो पहले आन्दोलनों में भाग लिया करती थी ! पर तूने मुझसे ऐसा कभी नहीं कहा !”

“यही मैं पूछना चाहती हूँ आपसे।” भाभी बोलीं, “मैं जब यहां था, तब वह कितनी सीधी तरह से रहती थी ? मेरे यहां से जाने के बाद आप ही ने उसे सर पर चढ़ा रखा है।”

“अब तू कुछ भी कह सकती है !” बापू बोले, “जो है, सो है। मैं कहता हूँ कि विवाह कर ले तो मुझीसे पूछती है, ‘बताओ किससे करूँ ?’ तब मैं कह देता हूँ कि किसीसे भी कर, सड़क की पटरी पर बैठे किसी चमार से भी कर ले तो मुझे आपत्ति नहीं। पर विवाह कर ले और मुझे छुट्टी दे दे ! मैंने जीवन-भर बहुत काम किया। अब सारा व्यवसाय छोड़कर विश्राम करने के इरादे से घर आया हूँ। जब वह पूना में थी तो मैं यहां बड़े मजे में था। पर यह फिर दौड़कर बंबई आ गई और कहती है, क्रान्ति करूंगी। ज़रा भी तो ताकत है नहीं और क्रान्ति करने जा रही ? यह क्या आन्दोलन है ? सिर्फ भूसा पीसा जा रहा है। उससे अब कितना कहूँ और चिन्ता भी कहां तक करूँ ? इससे तो तू अपने पति से कह दे कि इस छोकरी को भी पकड़कर जेल में बंद कर दे और एक साल तक उससे चक्की पिसवाये। फिर देखूँ, कैसी करती है क्रान्ति ?”

बापू लगातार बड़बड़ा रहे थे। मुझे रह-रहकर हँसी आ रही थी। परंतु भाभी बिल्कुल गंभीर थीं। नहीं, उनका चेहरा उदास-सा हो गया था। जब उनकी ओर मेरी दृष्टि गई तो मेरी भी वृत्ति एकदम बदल गई। कहीं रमेश के मामले की तो याद उन्हें न हो आई हो ? बोलने के लिए शब्द जीभ पर आ गये थे, पर चुप रहा। फिर याद हो आई बोरीबंदर स्टेशन की...

बड़बड़ाते हुए बापू उठकर चले गये। भाभी उसी तरह बैठी हुई थीं। मैंने पूछा, “बड़ी गंभीर-सी हो गई हो ?”

मेरे प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर वह बोलीं, “जब बोरीबंदर स्टेशन से हम बाहर निकले थे और तुम टैक्सी तलाश रहे थे उस समय...”

“हां, मैंने देखा था।” मैंने एकदम कहा, “मुझे शक-सा हुआ था...”

“तुम्हे तो सिर्फ शक ही हुआ था, पर मेरी तो आंखों ने अच्छी तरह देख लिया था।” भाभी बोलीं, “मेरे लिए कोई शक ही नहीं रहा। भगवान जाने, क्या खेल खेल रही है यह उषा ? मनुष्य जब एक बार फिसल

जाता है तो आगे फिसलता ही जाता है और फिसलते-फिसलते अंत में वह कहां पहुंच जायगा, यह नहीं कहा जा सकता।”

क्षण-भर के लिए वह चुप रही। यह सोचकर कि इस समय कुछ न बोलना ही ठीक है, मैं भी चुप रहा।

बापू पुनः आकर हम लोगों के पास बैठ गये और फिर गप्पें होने लगीं। पुराने जमाने की बातें चल पड़ीं। बापू बड़े बातूनी थे। वह अपने पुराने दिनों की अनेक मजेदार बातें सुना रहे थे। उनकी बातों से मुझे बहुत जानकारी मिली। भाभी भी अब दिल खोलकर बातें करने लगी थीं। वही एक बोध उनके मन पर था। उसके उतर जाने पर उनका मन हलका हो गया था और अब वह बड़े रंग में आकर बातें करने लगी थीं। उनकी बातों से स्पष्ट नज़र आ रहा था कि अपने पिता से उन्हें बड़ा प्यार रहा होगा। नित्य की प्रौढ़ता को छोड़कर वह भी बिल्कुल बच्ची बन गई थीं। लाड़ला बच्चा जितने लाड़ से बोलता है, उतनी ही बाल-आत्मीयता से वह इस समय बापू से बातें कर रही थीं। दोनों यह भूल गये थे कि मैं वहां मौजूद हूं। उनके रंग में भंग न हो, इसलिए मैं भी खामोश बैठा हुआ था।

मुझे यही आश्चर्य हो रहा था कि पिता से इतना प्यार होते हुए भी भाभी ने पहले पिता का कभी नाम भी नहीं लिया! मैंने सोचा, हो सकता है कि अनेक वर्षों के बाद भेंट होने से ही भाभी शायद इतने लाड़ में आ गई हों!

बापू का वात्सल्य देखकर मेरा हृदय भर आया। इतने वर्षों के बेटी के वियोग के कारण वह बिल्कुल ललचाये-से हो गये थे। खोया हुआ पुराना खिलौना मिल जाने से बच्चे की खुशी का जिस तरह कोई ठिकाना नहीं रहता, उसी तरह खुशी से बिल्कुल पागल होकर वह बोल रहे थे। इसी समय एक का घंटा बजा।

“अरे, एक बज गया?” बापू घड़ी की ओर देखकर बोले, “कितनी जल्दी इतना समय निकल गया, सुलू? आज कितने दिनों के बाद मेरा जी ठंडा हुआ।” मेरी ओर मुड़कर बोले, “और तुम्हारे इन लाला को तो मैं बिल्कुल ही भूल गया था। माफ करना, बलवंतराव! ये तो बहुत कम बोलनेवाले मालूम होते हैं! तेरे पति जैसा ही स्वभाव दीखता है इनका।

कम-से-कम उस समय तो तेरा पति बहुत ही कम बोलता था। बड़ा 'रिजर्व' रहा करता था। अब यहीं देख लो। बंबई आया है। मैं जानता हूँ कि उसे काम होंगे। पर यहाँ आने के लिए उसे दो-चार मिनट की भी फुरसत नहीं मिल सकती, इस बात पर मैं विश्वास नहीं कर सकता। बड़े अफसर हैं, बड़े आदमी हैं, हम क्यों उन्हें नाम धरें? अब तू जाकर सो जा। लाला का बिस्तर भी लगा दिया है न? यह तू खुद ज़रा देख लेना। कहीं हमारे नौकरराम उन्हें भूल ही गये हों! वह छोकरी अभी तक नहीं आई है न? कहीं किसीने उसे पकड़कर जेल में तो नहीं ठूस दिया? मैं तो बिल्कुल परेशान हो उठा हूँ। अब जाकर आराम से सो जाइये, बलवंत-राव। हमारी सारी रामकहानी को, जो अभी तक तुमने सुनी है, भूल जाओ।" इतना कहकर बापू चले गये।

मैंने भाभी की ओर देखा। उनकी आंखें सजल हो गई थीं। मैं चौंक पड़ा। मैंने पूछा तो आंखें पोंछनी हुई बोलतीं, "कितने दिनों के बाद आज लग रहा है, जैसे मनुष्यों के बीच आ गई हूँ। वह भूटा जीवन, वह भूठी गृहस्थी, वह भूटे नाते, मंतोष और सुखी होने का ढोंग, वह भुठाई, जान-बूझकर की गई वह मक्कारी, वह सबकुछ यहाँ एक निमिष में नष्ट हो गया था। पर वह सब अब फिर याद हो आया, एकाएक पर्दे पर दीखनेवाले चित्रों की तरह सब बातें दीखने लगीं और हृदय खरोँचा जाने लगा! आगे मेरा भविष्य क्या है, भगवान जाने!" ऐसा कहकर वह भी वहाँ से चल दीं।

दूसरे दिन जागा तो पता चला कि उषा रात्रि के अंतिम प्रहर में लौटकर आई थी। बापू ने उससे एक शब्द भी नहीं कहा। उठते ही मेरी आवभगत की तैयारियां होने लगीं।

सुबह की चाय के साथ भी प्लेटें भरकर नाश्ता रख दिया गया था। इतनी मेवा-मिठाई इतने सुबह आ कहां से गई, यह सवाल मेरे सामने खड़ा हो गया। मैंने बापू से पूछा। वह बोले, "मेरे पुराने गुजराती व्यापारी मित्र रोज़ मुझसे मिलने आया करते हैं। उनके लिए यह सब इन्तजाम रखना पड़ता है। मैं हूँ असली सारस्वत। चाय के साथ मुझे कुछ चीजों की जरूरत होती है। वही आज तुम्हें भी देनेवाला था। परन्तु तुम हो गये हो

अब घाट^१ के, अपनी जाति भूल गये हो। कपास के व्यापार के व्यवहारों को शायद तुम नहीं जानते। वहां हम लोगों की आपस में बड़ी स्पर्धा चलती रहती है। पर उतनी ही आत्मीयता भी होती है हममें एक-दूसरे के प्रति। इसीलिए तो वह रोज मुझसे मिलने मेरे घर आते हैं। आज भी वह मुझे फिर से व्यापार में खींचना चाह रहे हैं। पर मन को पक्का करके जब एक बार उस घरे से छूटकर आ गया हूं तो अब उसमें फिर जाने की इच्छा नहीं होती। अब आराम करने को जी चाह रहा है।” बापू ने फिर अपनी पुरानी बातें कहनी शुरू कर दीं। भाभी नज़दीक बैठी हुई थीं। इसी समय उपा आ गई! भाभी ने उसे चाय बना दी। पर बापू ने उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखा। उपा मुझसे भी कुछ न बोली।

जल्दी से नहाकर मैं भीतर के कमरे में जाकर बैठ गया। बाहर के कमरे में बापू के गुजराती मित्र उनसे मिलने आये थे। कल से बापू का वातूनी स्वभाव देख रहा था, पर उनका वह स्वभाव अब जैसे गायब हो गया था। वह एक शान्त, गम्भीर और प्रौढ़ की तरह बातें कर रहे थे।

बहुत देर तक अपने स्थान पर बैठा हुआ मैं उन लोगों की बातें सुनता रहा। ये सभी लोग द्विस्वभावी हैं, यह मुझसे छिपा न रहा। भाभी के प्रारम्भिक जीवन से लेकर आज तक के उनके जीवन की याद करके मैं जैसे-जैसे विचार करने लगा, वैसे-वैसे मेरी यह धारणा और अधिक दृढ़ होती गई।

इसी समय हाथ में बेग और छाता लेकर उपा भीतर आई। कमरे की अलमारी से जल्दी-जल्दी एक चीज निकालकर वह बाहर जा रही थी कि मैंने उसे रोका और कहा, “अजी, सुनो तो! तुममें कुछ इंसानियत भी है या नहीं, उपा? कल से मैं आया हूं तुम्हारे घर। कम-से-कम दो मीठे शब्दों से तो मेरा स्वागत करना था तुम्हें!”

“माफ करना, बलवंतराव!” उपा मेरी ओर मुड़कर हँसने का प्रयत्न करती हुई बोली, “इतने काम हैं मेरे पीछे कि मुझे मरने की भी फुरसत

^१ महाराष्ट्र का वह भाग, जो सैह्याद्रि के पूर्व में है। पूना इसी भाग में है।

नहीं। आज दो घंटे भी नींद नहीं मिली मुझे ! ७ नवम्बर निकल जाने दो।”

“तुमने मुझसे वादा किया था कि तुम अपनी पार्टी के चोटी के नेताओं से मेरा परिचय करा दोगी। याद है न ?”

“आप भी अजीब आदमी हैं। क्या उसके लिए यह समय है ? इतनी मामूली बात भी आपके दिमाग में नहीं आती, बलवंतराव ? यहां किसीको आज सांस लेने की भी फुरसत है ? जमीन पर पैर नहीं टिक रहे हैं हम लोगों के, जनाब ! आप हैं कहां ? हम लोग लगातार चक्कर काट रहे हैं, इधर से उधर, उधर से इधर ! कल क्रान्ति का दिन है और क्या मैं तुम्हें लेकर उनसे परिचय कराती फिरूं ? क्या कहेंगे वे लोग मुझसे ? क्या वे कोई मामूली आदमी हैं ? या हमारे बापू के सेठजी हैं ? माफ करना। मैं अब एक सेकिंड भी नहीं रुक सकती।” इतना कहकर वह झट-से बाहर चल दी।

भाभी द्वार पर खड़ी हुई तमाशा देख रही थीं। वह आगे बढ़कर बोलीं, “क्यों जनाब, बन गये बुद्धू ? अजी, ये उषा के वादे हैं !”

“ऐसा न कहिये, भाभी !” मैंने किंचित क्रोध में भरकर कहा, “हर बात में उसे दोष देना ठीक नहीं। आज का दिन सचमुच उन लोगों का बड़ी गड़बड़ी का दिन है।”

“होगा, होगा !” भाभी बोलीं, “गड़बड़ी का दिन होगा। नहीं है, यह मैं नहीं कहती। वह है ही। खैर, मुझसे गलती हो गई है।”

“बैठिये न ?” मैंने भाभी से कहा, “आप मायके आई हैं। फिर इस तरह खड़ी क्यों हैं, जैसे इस घर की आप बहू हों।”

“मायके आई हूं, इसीलिए खड़ी रहती हूं, वरना बैठी ही रहती थी। ऐसा लगता है, जैसे मेरा बचपन लौट आया है। सुबह जीने से दौड़ती हुई नीचे उतरी और फिर जल्दी-जल्दी जीना चढ़कर ऊपर पहुंची। बड़ा अच्छा लगा। सारा संकोच जाता रहा। जब छोटी थी तो एक बार इस जीने से लुढ़ककर नीचे आ गिरी थी। बचपन की वह घटना याद हो आई। सोचा अब भी गिर पड़ूंगी, पर नहीं गिरी ! उस वक्त का वह मजा अब नहीं रहा !”

उनकी ये बचकानी बातें मुझे बड़ी अच्छी लगीं। अपनी ससुराल में उन्होंने कभी ऐसी बातें कही थीं। मैं हँस पड़ा। मुझे हँसते देखकर वह बोलीं, “हँसो नहीं, लाला। यह स्थान की महिमा है। इसी घर में मैं छोटी से बड़ी हुई हूँ। इस बंगले में आने से पहले हम एक चाल में रहते थे। मेरे जन्म के बाद ही बापू ने बालकेश्वर का यह बंगला खरीदा। इसलिए मां मुझे हमेशा शुभ-पैरा की कहा करती थीं। बचपन का स्मरण होते ही मनुष्य एकदम बच्चा हो जाता है। आज मेरी स्थिति भी वही हो गई है। तुमने देखा नहीं? सुबह से किस तरह चकरी की तरह चक्कर काट रही हूँ घर-भर में! ऐसा लग रहा है जैसे मेरी उम्र दस-बारह वर्ष की हो गई है।”

“इसी तरह बनी रहो, भाभी! इसी तरह बनी रहो!” मैंने गद्गद् होकर कहा, “आपका यह नया रूप देखकर वहाँ के आपके स्वरूप से मुझे अरुचि होने लगी है। क्यों आपने अपने हाथ से अपने इस स्वरूप को यों बिगाड़ लिया? कल बापू जब आपके बचपन की बातें कह रहे थे, तब वह मुझे सच नहीं लग रही थीं। मैं सोच रहा था, इतनी खुशदिल लड़की थोड़ी-सी उम्र बढ़ जाने पर बूढ़ी नानी जैसी कैसे हो गई? मैं रात-भर इसी विचार में खोया हुआ रहा।” बोलते हुए मेरा हृदय भर आया। मेरे मन का संतुलन इस प्रकार पहले कभी नहीं खोया था। भाभी की पलकें भी गीली हो उठीं। खुशी के आंसुओं के आनंद का अनुभव जीवन में मुझे पहली बार ही हो रहा था। उनकी खुशी के आंसू भी मैं आज पहली बार देख रहा था।

मन बड़ा व्याकुल हो उठा। लगा, कहीं कलेजा तो नहीं फट पड़ेगा! नाक और कानों से जैसे ज्वालाएं निकल रही थीं। मस्तक घूमने लगा था। “इसी तरह बनी रहो, भाभी! इसी तरह बनी रहो!” कहते हुए मैं एकदम लड़खड़ाकर नीचे गिर रहा था कि भाभी ने आगे बढ़कर मुझे सम्हाल लिया और एक कोच पर बिठा दिया। मेरे नख से शिख तक एक झनझनी दौड़ गई, जैसे करेंट छू गया हो! क्षण-भर के लिए ही लगा, जैसे मैं बेहोश हो गया हूँ। आंखों के सामने अंधेरा छा गया था। तभी कानों में शब्द पड़े—

“बड़े भाग्यवान हो, बलवंतराव!” बापू कह रहे थे, “आज तुम्हारी

किस्मत से अच्छी-अच्छी चीजें मिल गई हैं ! ”

उस दिन खाना बड़ा शानदार बना था । हम लोगों ने बड़ी खुशी के साथ खाना खाया ।

उषा खाने पर हमारे साथ न थी ।

: १३ :

मुझे ठीक से यह कल्पना न थी कि जिस काम के लिए मैं बम्बई आया था, उस काम के लिए मुझे कहां-कहां जाना होगा । मुझ-जैसा आदमी, जिसे शहर की कोई जानकारी नहीं थी, किराये की टैक्सी लेकर यह काम नहीं कर सकता था । भाभी के पिताजी के पास पहले एक निजी कार थी । पर व्यापार छोड़ देने के बाद उसकी उन्हें कोई जरूरत न रही । इसलिए वह उन्होंने बेच दी । मैं सोच रहा था कि घूमने का क्या प्रबन्ध किया जाय ?

पर मुझे अधिक हैरानी नहीं हुई । भाभी के पिता ने ही मेरा प्रबन्ध कर दिया । उन्होंने अपने एक व्यापारी मित्र की कार पूरे दो दिन के लिए मेरे अधिकार में दिला दी ।

मिल-नगरी में स्थान-स्थान पर सभाएं हो रही थीं । कम्यूनिस्ट नेता भाषण दे रहे थे । प्रत्येक नेता यह घोषणा कर रहा था कि ७ नवम्बर को बम्बई में मजदूरों का राज्य होगा । अपनी कार में मैं अकेला ही था । मैंने भाभी से साथ चलने का आग्रह किया था, पर उन्होंने मेरे साथ जाने से इन्कार कर दिया और वह अपनी पुरानी परिचित कांग्रेस की देश-सेविकाओं की बस में गई । समूचे परेल विभाग में शान्ति रखने का सन्देश देती हुई ये देश-सेविकाएं दो बसों में घूम रही थीं । इसी समय एक साइकिलवाला इनकी बसों के सामने आ गया और उसने वे बसें रोक लीं । बसों के हकते ही आस-पास की भीड़ से कुछ गुंडे निकल पड़े और देश-सेविकाओं पर आक्रमण करने लगे । उन गुंडों में एक विख्यात कम्यूनिस्ट नेता भी थे । देश-सेविकाओं को बड़ी गन्दी गालियां दी गई । भीड़ में से कई लोग आगे बढ़े और वह उन असहाय देश-सेविकाओं की साड़ियां खींचने की कोशिश करने लगे ।

यह दृश्य देखकर मेरे छक्के छूट गये । मैंने बस में बैठी हुई भाभी से

अपनी कार में आ जाने के लिए कहा। वह बोलीं, “यहां मैं अकेली नहीं हूं। क्या इन सबके लिए तुम्हारी गाड़ी में जगह है?”

इसी समय किसी हुल्लड़बाज ने एक राहगीर के सिर से गांधी टोपी जतार ली और उसे आम सड़क पर बड़े समारोह के साथ जला डाला। हर जगह हुल्लड़बाजी और गाली-गलौज का बोलबाला था। सबका क्रोध कांग्रेस वालों पर था।

घर लौटने पर हम दोनों ने एक-दूसरे को अपना-अपना हाल सुनाया। उसपर से मैंने जब अगले दिन का अनुमान किया तो सिहर उठा। मेरी घबराहट को देखकर भाभी बोलीं, “घबराने की कोई जरूरत नहीं। पुलिस आज कांग्रेस वालों के खिलाफ नहीं है। वह कांग्रेस की तरफ है। बल्कि यह कह सकते हैं कि पुलिस आज हमारी है। हाथ में जब शस्त्र होते हैं, तभी अत्याचार करने की प्रवृत्ति होती है और आज वह हमारे मियान के भीतर बन्द हैं। इसीलिए मुझे डर नहीं लगता।”

“यह आपकी भूल है, भाभी!” मैंने कहा, “आपने कम्युनिस्ट नेताओं के भाषण नहीं सुने हैं। मैंने भीड़ में घुसकर प्रायः सभी नेताओं के भाषण सुने हैं। उन्हीं भाषणों से मैं कल का अनुमान लगा रहा हूं। इसीलिए कल मैंने अपनी टोपी उतारकर छिपाली थी। उन लोगों ने यह पक्का इरादा कर लिया है कि कुछ भी हो, वे कल पुलिस वालों से लोगों पर गोलियां चलवाकर ही रहेंगे। पुलिस वालों को भड़काने की उन्होंने एक पक्की योजना बना रखी है। वे पुलिस को गोलियां चलाने के लिए मजबूर कर देंगे और फिर मजदूरों में खुल्लम-खुल्ला यह प्रचार करके कि कांग्रेस के शासन में भी जनता पर गोलियां चलती हैं, मजदूरों को कांग्रेस के खिलाफ कर देंगे। इसीलिए मैं डर रहा हूं। अम्बेदकर के स्वयं-सेवकों की बातें अगर आपने सुनी होतीं तो आप ऐसा कभी न कहतीं।” जितने सौम्य शब्दों में कहा जा सकता था, उतने सौम्य शब्दों में जब मैंने अम्बेदकर के स्वयं-सेवकों के भाषणों का सारांश भाभी को सुनाया तो वह गम्भीर हो उठीं। बापू बोले, “अगर यह बात है तो उषा को मुझे घर में कहीं बन्द करके रखना होगा। जन्म से मेरी लड़कियां बेकाबू रही हैं। मेरा ही अवगुण उनके खून में उतर आया है। यदि मैं भी बेकाबू न होता तो कपास के बाजार में चोटी पर

होता। मैं जिस मस्ती से कपास के बाजार में खेला, उसी तरह गृहस्थी में भी मस्त ही रहा। दोनों क्षेत्रों में बात एक ही रही !”

“आप उषा को घर में तभी तो बन्द कर सकोगे जब वह घर लौटकर आयगी।” भाभी बोलीं, “कल से गई है घर से और अभी तक उसका पता नहीं !”

“एक-दो सभाओं में मैंने उसे देखा था।” मैंने कहा, “मेरे मन में यह भी आया था कि उससे मिलूँ और उसे अपने साथ ले आऊँ। पर उस भीड़ में वह कहां गायब हो जाती थी, इसका मुझे पता न चलता था। कम्प्यूनिस्टों की बस में बैठे हुए भी मैंने उसे एक-दो बार देखा था। इससे इतना ही कह सकते हैं कि अभी तक वह सकुशल है, गिरफ्तार नहीं हुई है।”

उस रात भी उषा घर नहीं आई। परेशान होकर बापू लगातार बड़बड़ा रहे थे। वह बेचैन हो उठे थे, इसमें शक नहीं। उस रात मुझे भी ठीक से नींद नहीं आई। इसीलिए मैं यह देख सका कि रात को दो-तीन बार उठकर बापू यह देखने आये थे कि उषा लौटी है या नहीं।

मेरी कार मुझे ले जाने के लिए सुबह पांच बजे आनेवाली थी। इसलिए मैं पांच से पहले ही उठकर जाने की तैयारी में लग गया था। इसी समय बापू बाहर आकर मुझसे बोले, “सुनिये बालूजी, मैं सोच रहा हूँ कि सुलू को भी मैं आज बाहर न जाने दूँ। उषा का तो अभी तक पता नहीं है और अगर यह भी चली जायगी तो मैं पागल हो जाऊंगा। कैसी शरीर लड़कियां पैदा हुई हैं। अगर तुम्हारे भाईसाहब आ जाते तो उनसे ही कुछ कहता। पर उनका भी पता नहीं। कल की तरह आज भी मुझे दिन-भर टेलीफोन के पास ही बैठा रहना पड़ेगा।”

इसी समय भाभी आईं। वह बोलीं, “टोपी लगाकर मत जाना, लाला। फिजूल ही कोई खतरा मोल न ले लेना। तुम अकेले जा रहे हो। कोई रक्षक भी नहीं है तुम्हारे साथ। ऐसे वक्त जिद काम की नहीं। उतारकर रख दो वह खादी की टोपी।”

भाभी की कड़ी आज्ञा होते ही मैंने कब अपनी टोपी उतारकर अलग कर दी, इसका स्वयं मुझे भी कोई पता न चला।

जब कार से निकला, तब मेरा कलेजा धड़क रहा था। वम्बई के

विशाल आन्दोलनों से मेरा परिचय नहीं था। मुझे लग रहा था जैसे एक पोखर से निकलकर मैं समुद्र में आ गया हूँ। अभी तो आगे बहुत देखना था, पर जितना देखा था उसे देखकर ही मेरी आंखें फट पड़ी थीं।

डिलाईल रोड से मैं सीमेंट की चालों की ओर मुड़ा। कम्युनिस्ट स्वयं-सेवकों की अपेक्षा अम्बेदकर के महार^१ स्वयं-सेवक ही अधिक बौखलाये हुए थे। वह हर मुहल्ले में घर-घर जाकर धमकियां दे रहे थे। कल के भाषणों में शान्ति बनाये रखने के लिए बड़े जोरदार शब्दों में कहा गया था। पर आज प्रत्यक्ष जो प्रचार हो रहा था, वह शान्ति बनाये रखने का नहीं था। हर मजदूर को यह चेतावनी दी जा रही थी कि अगर वह हिन्दू की औलाद है तो आज हड़ताल करेगा। जो काम पर जायगा वह हिन्दू की औलाद नहीं।

मुझे इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस आन्दोलन में धर्म और जाति का सवाल क्यों उठाया जा रहा है? साम्यवाद और धर्म का क्या सम्बन्ध? मैंने जब वारीकी से देखा तो मुझे यह दीख पड़ा कि लोगों को धर्म की सौगंध खिलानेवाले स्वयं-सेवक स्वतन्त्र मजदूर दल के थे। अत्यन्त गंदी भाषा में ये सौगंधें खिलाई जाती थीं और इस कारण अनेक पाप-भीरु और धर्म-भीरु लोगों पर उन शपथों का प्रभाव पड़ रहा था। मिल-नगरी में साम्यवाद का कितना भी प्रचार हुआ हो, हथौड़ा और हंसिया का सुनहरे रंग का प्रतीक चमकाते हुए लाल भण्डा कितने भी जोर-से फहराता हो, फिर भी चर्मचक्षुओं को न दीखनेवाला हिन्दू धर्म का भण्डा, उस लाल भण्डे के सिर पर अदृश्य रूप में, निश्चित ही फहरा रहा था! इसी-लिए अशिक्षित समाज के हृदयों में गहराई तक जमी हुई धर्म-भावना को कुरेदकर उसपर प्रहार किया जाता था। यह प्रचार ईमानदारी से हो रहा है, ऐसा मुझे नहीं लगा।

सुबह आठ बजे तक कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। दंगे से डरकर बहुत-से लोग तड़के उठकर ही मिलों में काम पर चल दिये थे। किसी-न-किसी हिकमत से आज मिल में जाकर काग पर हाजिर होने की बहुत-से

^१टेढ़, एक अछूत जाति।

मजदूरों की प्रवृत्ति दीख रही थी। हड़ताल की परिस्थिति में भी जो औरतें भूल से मिल पर काम करने जा रही थीं, उन्हें अनेक महार स्वयं-सेवकों ने रास्ते में रोक लिया और उनकी बेइज्जती करने के लिए उनकी चोलियां नोंचकर फाड़ डालीं। वे अबला बेचारी क्या करतीं? स्त्री-जाति की लज्जा और आबरू छिपाने के लिए वह आंचल से अपने अंग ढांककर घर की तरफ दौड़ पड़ीं। यह दृश्य देखकर मेरा सारा बदन गुस्से से भड़क उठा। उन स्वयं-सेवकों की अच्छी-खासी मरम्मत कर दूं, ऐसा मुझे लगने लगा।

नेता लोग यह शेखी बघारते थे कि उन्होंने मजदूरों का मत-परिवर्तन करके हड़ताल कराई। पर उनकी यह शेखी थोथी थी। अनेक मजदूरों को काम पर जाने से रोकने के लिए नेताओं द्वारा उनपर जुल्म और जबर-दस्ती की गई थी, इसमें शक नहीं। उस दिन साठ हजार से भी अधिक मजदूर मिलों में अपने काम पर मौजूद थे। हड़तालियों ने यह योजना बना रखी थी कि दोपहर की छुट्टी में जब वे मजदूर कलेऊ करने को निकलेंगे, उस समय उन्हें वापस मिल में नहीं जाने दिया जायगा। रास्तों से गुजरने-वाली बसों पर पत्थर बरसाये जाते थे। ट्रामों में कोई बैठ न पाये, इसलिए दंगाई लोग स्वयं ही पूरी ट्राम में बैठ जाते थे और उसे अपने कब्जे में कर लेते थे। बहुत-सी ट्रामों के सामने लेटकर यातायात बन्द कर देते थे। दस बजे से लेकर बारह बजे तक इस तरह कोई तीस-पैंतीस ट्रामें रोक दी गई थीं, परन्तु पुलिस ने रुकावटों को हटाकर ट्रामें बराबर चालू रखी थीं। पत्थरबाजी से ट्रामों का काफी नुकसान हुआ होगा। खोंचेवालों को घेर लिया जाता था और उनका सामान या तो लूट लिया जाता या सड़क पर फेंक दिया जाता था। दूधवालों से दूध-भरे बर्तनों को छीनकर उनका सारा दूध रास्ते पर वहा दिया जाता था। कुछ हड़तालियों ने चाय की दुकानों में घुसकर प्याले-तश्तरियां फोड़कर दुकानदारों का काफी नुकसान किया।

इस प्रकार की मामूली हुल्लड़बाजी करने में यद्यपि कम्यूनिस्ट ही अधिक आगे बढ़े हुए थे, फिर भी अत्याचार करनेवालों में महार स्वयं-सेवकों की संख्या ही अधिक थी। स्त्रियों से छेड़खानी करने में, उनकी बेइज्जती करने में ये महार स्वयं-सेवक ही अगुआ होते थे। काम पर जाने-

वाली औरतों को रास्ते में रोककर वे उनसे कहते, “अगर तुम्हारी रोजी डूब जाती है तो इसके लिए इतना डरती क्यों हो ? अगर मराठे तुम्हारा पेट भरने में असमर्थ हैं तो हमारे बाबा अम्बेदकर के पास चली जाओ। हम सब लोग तुम्हें अच्छी तरह संभाल लेंगे। अब बाबासाहब का राज्य शुरू हो गया है यहां !”

दादर की ग्राम सड़क पर गोल्ड मोहर मिल के पास एक भयंकर घटना हो गई। एक मजदूर औरत जा रही थी। उसे देखकर कुछ दंगाइयों ने उसे जा घेरा और उसकी बेइज्जती करने की गरज से उसकी साड़ी खींचकर उसे बिल्कुल वस्त्र-विहीन कर दिया। बाद में सब उससे बड़ा घिनौना मजाक करने लगे। वह वेचारी लज्जा से बिल्कुल मरी-सी हो गई। इस दृश्य को देखते ही एक गोरा पुलिस साजेंट दौड़ता हुआ घटनास्थल पर आया और दंगाइयों से उस स्त्री को बचाया। उसके आते ही सारे दंगाई घटनास्थल से भाग गये। जैसे-तैसे उस स्त्री को वस्त्र में लपेटकर उस गोरे अफसर ने उसे एक ट्राम में बिठाकर उसके घर भेज दिया।

यह घटना जब मैंने आंखों से देखी तो मेरा खून खौल उठा। क्या यही है शान्तिपूर्ण आन्दोलन ? क्या यही है वह आन्दोलन, जिसके बारे में यह डींग हांकी जा रही है कि मत-परिवर्तन हो जाने से मजदूर स्वयं-स्फूर्ति से हड़ताल कर रहे हैं ? क्या यही है कम्युनिस्टों का साम्यवाद ? यदि किसी कम्युनिस्ट नेता की मां-बहन पर यही बीतती तो वह क्या करता ? क्या उसे यह नहीं लगता कि ऐसे अत्याचारियों को गोलियों से उड़ा देना चाहिए ?

परन्तु गोलियां इस समय भी नहीं चलीं। एक स्त्री को निर्वस्त्र करने की इसी प्रकार की एक और घटना काले चौक के पास हुई। वहां उस स्त्री की सहायता के लिए एक डाकिया दौड़ पड़ा। उस घटनास्थल पर मैं मौजूद नहीं था। यह मेरी सुनी हुई बात थी।

दोपहर को भोजन करने मैं घर आया। देश-सेविकाओं के साथ गई हुई भाभी उस समय घर नहीं लौटी थीं। मुझे पता चला कि गोदूबाई गोखले आदि स्त्रियों के नेतृत्व में गिरगांव में घर की नौकरानियों का एक जलूस निकाला गया था। उसी जलूस में शायद उषा भी रही होगी। वह

जलूस बड़ी शान्ति से निकला था और उसमें कोई अनुचित घटना नहीं घटी थी।

कहीं-कहीं से मामूली अत्याचार होने के समाचार आ रहे थे। सुबह एक-दो स्थानों पर गोलीकांड होने की भी खबरें आईं। पर इन खबरों का पूरा व्योरा मुझे अभी तक प्राप्त न हो पाया था।

शाम को साढ़े पांच बजे कामगार मैदान पर एक सभा हुई थी। उसमें करीब तीस-चालीस हजार लोग रहे होंगे। हड़ताली नेताओं का दावा था कि उस सभा में एक लाख पच्चीस हजार मजदूर उपस्थित थे। पर यह दावा करते समय किसीने भी इस ओर ध्यान देने की तनिक भी परवा नहीं की कि उस मैदान में इतने आदमियों को बैठने की जगह भी थी या नहीं! भाषणों में हड़ताल का विवरण देते हुए हड़तालियों की संख्या बहुत बढ़ाकर बताई जा रही थी। यह दावा किया जा रहा था कि हड़ताल अनुशासन और पूर्ण शान्ति के साथ सम्पन्न हुई। जगह-जगह पर वस्त्रविहीन करके तथा चोलियां नोचकर जो बेइज्जती की गई थी इसकी नेताओं को जैसे कोई परवा ही न थी। उनके भाषणों में इन घटनाओं का कहीं कोई जिक्र न था।

काले कानून के प्रवर्तकों पर मनमानी कीचड़ उछालकर डा० अम्बेदकर बोले, “एक लाख पच्चीस हजार मजदूर आज यहां इकट्ठे हुए हैं। एक दिन की रोजी पर इन गरीबों ने पानी फेर दिया है। कांग्रेस मनमाने कानून बना रही है। अगर जनता उन कानूनों का विरोध करती है और विरोध-प्रदर्शन में यदि कहीं साधारण-सा दंगा हो जाता है तो दंगाइयों पर पुलिस से गोलियां चलवा देती है! कांग्रेस ने शासन अपने हाथ में लेकर जब मनमाने कानून पास करना शुरू कर दिया है, तब उन कानूनों का विरोध करने के लिए हड़ताल करने, नारे लगाने और लाल भंडा फहराने से ही तुम्हारा कर्तव्य पूरा हो जाता है, ऐसा यदि तुम समझते हो तो तुम्हारे जैसा मूर्ख कोई नहीं। बुद्धिमानी इसीमें है कि कांग्रेस के हाथ से शासन छीन लिया जाय। कांग्रेस के हाथ में शासन देकर स्वयं अपना ही गला काटने जैसी बेवकूफी दूसरी नहीं है! दुश्मन के हाथ में खुद ही हथियार देने की मूर्खता मत करो। तुम अभी कुछ नहीं समझते हो। तुम्हारा समर्थन यदि कांग्रेस को

न मिलता तो यह काला कानून कभी पास ही न होता। यदि तुम अपना राज्य चाहते हो तो इस समय तुम्हारा कर्तव्य यह है कि जहां भी हुकूमत और अधिकार का सवाल खड़ा होगा, उन सब स्थानों पर तुम्हें ही कब्जा कर लेना होगा। उन स्थानों के लिए कांग्रेस के उम्मीदवार खड़े होंगे। उस समय हम कांग्रेस उम्मीदवारों के खिलाफ स्वतन्त्र मजदूर पार्टी के उम्मेदवार भी उन स्थानों की हुकूमत और अधिकार प्राप्त करने के लिए खड़े करेंगे। पिछले पन्द्रह महीनों में कांग्रेस के शासन में क्या हुआ है, यह देखो। उन्होंने क्या काम किया है, यह देखो और मन में निश्चय करो कि कांग्रेस को वोट नहीं देंगे। आगामी दिसम्बर में बम्बई म्यूनिसिपैलिटी का चुनाव आ रहा है। उस समय स्वतन्त्र मजदूर दल कांग्रेसी उम्मीदवारों के खिलाफ अपने उम्मीदवार खड़े कर रहा है। अगर तुम अपना, मजदूरों का राज्य चाहते हो, तो तुम्हें स्वतन्त्र मजदूर पार्टी के उम्मीदवारों को ही अपना मत देना चाहिए। हमारे प्रतिनिधि ही कौंसिलों और म्यूनिसिपैलिटियों में पहुंचने चाहिए। यदि हमारी यह सलाह भूल जाओगे तो आज तुम लोगों ने सफलतापूर्वक जो आन्दोलन किया है, उसका कोई फायदा न होगा।”

सभापति जमनादास मेहता ने अपने भाषण में इन्हीं विचारों को अलग ढंग से प्रकट किया और घोषणा की कि वह दिन दूर नहीं जब देश का शासन मजदूर करेंगे।

खादी की टोपी पहने हुए एक ही व्यक्ति इस सभा में दीख रहा था। और किसीके भी सिर पर खादी की टोपी नहीं थी। पर वह खादी टोपी-वाला बूढ़ा व्यक्ति भीड़ में इधर-उधर मजे से घूम रहा था। अम्बेदकर के महाहर स्वयं-सेवक भी उसे नहीं छेड़ रहे थे। यही नहीं, बल्कि वह यह सावधानी बरत रहे थे कि उस व्यक्ति पर दूसरे कोई आक्रमण न करें और न किसी तरह से उसका कोई अपमान हो।

सभा समाप्त होने के बाद भी कुछ मामूली दंगे हो ही रहे थे। मिल गये हुए कुछ मजदूर मिल से लौट रहे थे, उस समय कुछ हड़तालियों ने उन-पर पत्थर बरसाना शुरू कर दिया था। पत्थरों को यदि हथियार न कहना हो तो बेशक हड़ताली निःशस्त्र थे, इसमें शक नहीं। बंदूक की गोलियों की

तरह दूर से फेंके गए पत्थरों की मार प्राणघातक हो सकती है, यह जिसे न जंचता हो, वही इन लोगों को निःशस्त्र कह सकता था।

मुझे क्षोभ हो रहा था, चिढ़ आ रही थी, शरीर गुस्से से जला जा रहा था, एक ही बात के कारण—दिन-दहाड़े जबकि बंबई की आम सड़कों पर सैकड़ों आदमी घूम रहे थे, उस समय मां-वहनें निर्वस्त्र कर दी गईं ! इस घटना के बारे में उन वक्ताओं में से एक ने भी, कम्यूनिस्टों ने भी इस सभा में खेद प्रकट नहीं किया। यह धिनौना अत्याचार प्रत्यक्ष किसी की हत्या करने से भी अधिक जघन्य था। उसका निषेध न करना याने उस घटना का समर्थन करना है, ऐसा मुझे लगा। उस दिन की सभा में ही नहीं, बल्कि उसके बाद भी किसी भी सभा में उस घटना का निषेध नहीं किया गया। इसलिए ऐसा दिखाई दिया जैसे कम्यूनिस्ट उस घटना से सहमत थे।

उन असहाय मां-वहनों की वह भयंकर दयनीय मुद्रा आज भी मेरी नज़रों के सामने घूम रही है ! स्त्री-जाति की ऐसी दुर्दशा करनेवाले लोग यदि बंदूक की गोलियों से भून दिये जाते तो कम-से-कम मुझे तो कोई दुःख न होता। भारतीयों की सुसंस्कृत भूमि में स्वजनों द्वारा ही स्वजनों की ऐसी दुर्दशा होगी, ऐसा मैंने स्वप्न में भी कभी न सोचा था।

इसीलिए बाकी के सारे अत्याचारों को भूलकर यह एक ही धिनौनी घटना मेरी नज़रों के सामने लगातार चक्कर लगा रही थी। घर आने पर जब मैंने उस घटना का वृत्तांत बापू को सुनाया तो वह क्रोध से आगबबूला हो उठे। एलफिस्टन मिल के निकट तुलसी पाइप लाइन के एक पुल पर हड़तालियों ने पुलिसवालों को घेर लिया था और चारों तरफ से उनपर पत्थर बरसाने लगे थे। उस समय किस तरह पुलिस को अपनी रक्षा करने लिए भीड़ पर गोली चलाने के लिए मजबूर होना पड़ा, इसका आंखों-देखा हाल जब भाभी ने मुझे सुनाया तो वह भी मेरे कानों में जगह न बना सका। दादर की आम सड़क पर एक स्त्री की वह भीषण दयनीय मुद्रा के सिवा मुझे और कुछ भी नहीं दीख रहा था। मैंने कहा, “पुलिस ने अपनी रक्षा के लिए गोलियां चलाईं। कानून उनके इस काम का समर्थन करेगा। पर मुझे इसका कुछ नहीं लगता। गोलियां चलानी थीं उस समय जब कि वह

अबला नंगी की जा रही थी। कम-से-कम आपको तो ऐसा लगना चाहिए, भाभी ?”

“मेरी राय बिल्कुल भिन्न है।” भाभी बोलीं, “पुराने शासन में मंजे हुए पुलिसवालों ने अपनी पुरानी परम्परा चलाई। अगर कांग्रेसी पुलिसवाले होते तो अपने देशबन्धुओं के हाथ के पत्थरों की मार खाकर वहीं शहीद हो जाते। तब वे असली कांग्रेसी माने जाते। उनकी इस कुर्बानी के कारण ही उस दिन के सारे अत्याचार आप-ही-आप बन्द हो जाते। परंतु जड़वादी अंग्रेजी शिक्षा के कारण हम लोग इतने मुर्दा बन गये हैं कि प्राचीन काल में कलिंग देश द्वारा आचरण में लाई गई और आज गांधीजी द्वारा प्रस्थापित की गई यह शुद्ध भारतीय नीति हमारे गले ही नहीं उतरती ! इसके लिए कोई क्या करे ? मुझे दुःख इस बात का हो रहा है कि पुलिस पर पत्थर बरसाने के लिए लोगों को यह कहकर उभाड़ा गया कि वे मुसलमान हैं, इसलिए उन्हें मारो ! मैं पूछना चाहती हूं कि क्या यही साम्यवाद है ? कम्यूनिस्टों ने इस हड़ताल में बड़ी लापरवाही दिखाई। उन्होंने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि अम्बेदकर के स्वयं-सेवक इस आन्दोलन में क्या कर रहे हैं। वे अपने ही रंग में मस्त थे। कम्यूनिस्ट पार्टी के स्वयं-सेवकों ने हुल्लड़बाजी भले ही की हो, पर उन्होंने अत्याचार नहीं किये, यह मैं निश्चयपूर्वक कहूंगी।”

“यही मैं भी कहता हूं।” मैंने कहा, “मुझे भी ठीक यही दिखाई दिया। मुझे सिर्फ इसी बात का दुःख होता है कि अब अत्याचार करने का आरोप कम्यूनिस्टों पर अकारण ही मढ़ दिया जायगा !”

हम बातें कर रहे थे, इसी समय उषा आई। उसकी सूरत बदली हुई थी। बाल बिखरे हुए थे। सारा बदन धूल से भरा था। साड़ी बहुत जगह फटी हुई थी। उसका वह वेष देखकर बापू हँस पड़े, बोले, “लो, यह आई एक फ्रंट की वीरानी ! कितने जख्म हुए हैं तुम्हें ?”

“जख्म क्यों होंगे ?” उषा चिढ़कर बोली, “हम कोई मारपीट करने नहीं गये थे। हमारा आन्दोलन शान्तिपूर्ण क्रान्ति का था।”

“चुप रहो !” भाभी चिल्ला उठीं, “भूठ मत बोलो। राह चलती औरतों को अपमानित करना, भद्दे नारे लगाना, राहगीरों, बसों और

ट्रामों पर पत्थर बरसाना, हुल्लड़बाजी और दंगे करना, इसे क्रान्ति नहीं कहते, उषा ? क्रान्ति के सिपाही अनुशासनहीन नहीं होते, दिन-दहाड़े आम सड़क पर तुम या मुझ जैसी को वस्त्रहीन करनेवाले दुःशासन नहीं होते और न कीचक ही होते हैं ! यह साम्यवाद न मार्क्स का है और न लेनिन का ! लेनिन ने जो क्रान्ति की थी, वह अपने बल पर की थी । उसने तुम्हारी तरह दूसरी पार्टियों की मदद नहीं ली थी । यदि वह तुम्हारी तरह दूसरी पार्टियों की कोख में घुसता तो आज 'सोवियत यूनियन' तुम्हें कहीं दिखाई न देता । जब तुम्हारी कलाई में ही ताकत नहीं है तो भूख मारने को आन्दोलन क्यों करते हो ? क्या पा लिया आज का आन्दोलन करके ? म्यूनिसिपैलिटी का अगला चुनाव जीतने की ही यह तुम्हारी तैयारी है न ? सिर्फ इतने के लिए यह आन्दोलन करने की क्या जरूरत थी । खुल्लम-खुल्ला चुनाव लड़ना था । अगर तुम लोग यह सोचते होगे कि तुम्हारी इन कार्रवाइयों से कांग्रेस की ताकत कम हो जायगी तो यह तुम्हारा भ्रम है । मेरी यह चुनौती है तुम्हें ! चुनाव लड़कर देख लो ! कांग्रेस अपने पैरों पर खड़ी है । लेनिन की तरह वह भी संगठित रूप में लड़ रही है । सिर्फ दोनों के हथियार अलग-अलग किस्म के हैं । कांग्रेस इतनी गिरी हुई नहीं कि अपनी लड़ाई लड़ने के लिए वह बैरियों से मदद ले । आजादी ही यदि प्राप्त करनी है तो हम स्वयं प्राप्त करेंगे, वरना मर जायेंगे, यह कांग्रेस की बान है । हम किसी भी पार्टी की मदद नहीं चाहते ! ”

“मार लो गप्पें, मार लो गप्पें ! ” उषा भयानक रूप से हँसती हुई बोली, “वातें तो ऐसी कर रही हो जैसे तुम्हीं कांग्रेस हो ! कांग्रेस के सारे सूत्र जैसे तुम्हारे ही हाथ में आ गये हैं और तुम्हीं कांग्रेस का सारा कारोबार चला रही हो ! सुनो सुलू जीजी, घर बैठे-बैठे बेकार की बातें करना आसान होता है । पर जो मैदान में जाकर काम करते हैं, वे ही वहां की मुश्किलें समझते हैं ।

“फिजूल की बक-बक मत करो ! ” भाभी बोलीं, “क्यों लगे थे तुम लोग अम्बेदकर की स्वतंत्र मजदूर पार्टी के पीछे ? कौन-सा काम रुक गया था तुम्हारा उस पार्टी के बिना ? क्या मिल-नगरी में तुम्हें कोई जानता नहीं था ? या तुम्हारा वहां प्रभाव न था ? आज लाल भंडेवालों की अकारण

जो बदनामी हो रही है, उसके लिए जिम्मेदार कौन है? जाकर पूछो अपने नेताओं से, आज वे जरूर पछता रहे होंगे !”

“अच्छा-अच्छा, सुन लिया !” उषा बोली, “इस समय तुमसे बहस करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। पहले मुझे नहा लेना होगा। तीन दिन से लगातार धूल में घूम रही हूँ।” इतना कहकर वह भीतर चली गई।

“तूने ठीक मर्म पर चोट की।” बापू बोले, “उसे तेरी बातें जंच गई हैं। उसके नेता भी अब पछताते होंगे।

यद्यपि वही चर्चा जारी थी, फिर भी उसमें फिर उषा का नाम न आया। वह भी फिर बाहर नहीं आई।

दूसरे दिन सुबह हमने पूना लौट जाने का निश्चय किया। हमारा निश्चय सुनकर बापू की आंखों में आंमू आ गये। वह बोले, “बेटी कई वरसों के बाद तो आई हो। पेट-भर बातें करने को भी नहीं मिलीं। अभी बहुत-सी बातें करने को रह गई हैं। मैं आजकल इसी फिक्र में हूँ कि उषा का क्या होगा? कैसे यह पत्थर उतरता है मेरे सीने से? लगता है, किसी दिन यह छोकरी मेरे मुंह पर कालिख पोतकर ही रहेगी !”

“आप कोई फिक्र न कीजिये, बापू !” भाभी उदास स्वर में बोलीं, “वह आपके मुंह को कालिख नहीं लगायगी। मुझे इसका पूरा भरोसा है।

वह विषय यहीं तक रहा। सुबह की गाड़ी से हम पूना जाने के लिए निकले। बापू हमें स्टेशन पहुंचाने आये। गाड़ी छूटने के समय बापू का हृदय भर आया। यह देखकर भाभी का भी संतुलन खो गया। वह रोने लगीं।

और मेरा कंठ भी अवरुद्ध हो गया।

: १४ :

एम० ए० की पढ़ाई करने के लिए उषा पुनः पूना आई थी। पर इस बार आने के बाद से वह साम्यवाद का नाम भी मुंह से न निकालती थी। उस प्रकरण पर मानो परदा गिर गया था।

एक-दिवसीय हड़ताल का काण्ड समाप्त हो गया। उसके बाद ‘शराब छोड़ो’-आन्दोलन आया। इस आन्दोलन में हममें से किसीने भी कोई भाग

नहीं लिया। यह आन्दोलन हुआ था बंबई में। पूना से उसका कोई संबंध न था।

इसी समय यूरोप में लड़ाई शुरू हो गई। भारत सरकार ने ब्रिटिश के बैरियों के खिलाफ लड़ाई की घोषणा कर दी। इस विषय में अपनी नीति निश्चित करने के लिए कांग्रेस-मंत्रिमंडलों ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। अधिकार छोड़ने के समय क्या परिस्थिति थी, यह देखने में बंबई गया था। एक दिन में सारी हवा ही बदल गई थी। इतने दिनों तक हटाकर अलग रख दी गई 'प्रवेश-निषिद्ध' की तस्तियां पुनः आकर अपने स्थानों पर लगने लगी थीं। सेक्रेटेरियेट के गोरे-काले सेक्रेटरी और क्लर्क अब बड़े खुश थे। कांग्रेस-मंत्रिमंडल के शासन-काल में सेक्रेटेरियेट को जो एक मुसाफिर-खाने का स्वरूप प्राप्त हो गया था, वह अब समाप्त होगा और वहां पुनः पहले का-सा वातावरण आरंभ होगा। उस पवित्र मंदिर में अब द्विजों को छोड़कर शेष सबके प्रवेश की मनाही रहेगी, इसलिए नौकरशाही की बांछें लिख गई थीं।

बुरा लग रहा था सिर्फ चपरासियों को। वे बेचारे खुल्लम-खुल्ला आंसू बहा रहे थे। कांग्रेसी मंत्रियों के शासन-काल में उन्होंने नये सुख का मजा लूटा था। वह सुख अब समाप्त होगा, इसका उन्हें दुःख हो रहा था। सबसे अधिक उन्हें यह महसूस हो रहा था कि हरिजन चपरासी को भी प्राप्त हुआ नमस्कार करने का अधिकार चला गया था और अब जमीन तक झुककर सलाम करने के दिन फिर आ गये थे।

पुनः पहले का शासन शुरू हो गया। हमारे घर में जो खादी आई थी, वह देखते-देखते गायब हो गई। भाभी बेशक अभी तक खादी ही पहनती थीं। पहले एक बार छोड़ दी गई खादी को जब उन्होंने फिर से स्वीकार कर लिया तो वह उसे अब कभी न छोड़ेंगीं, ऐसा उनका दृढ़ निश्चय था।

उषा अब एक सच्ची अध्ययनशील छात्रा बन गई थी। वह भाषण, वह राजनीति, वह विचार-धारा, वह स्वाध्याय-मंडल, वह विरोध-विकासवाद, सब बंद हो गया था।

हमारी गृहस्थी मरियल ढंग से चल रही थी। दादा अपनी नौकरी पर जाते थे, मैं अपनी नौकरी पर जाता था। इन्टरनेशनल डिपो से पुस्तकें

लाकर भाभी पढ़ती थीं। उषा अपने कालेज की पढ़ाई में व्यस्त रहती थी। भाभी द्वारा लाई गई पुस्तकों को कभी-कभी मैं पढ़ लेता था, पर उषा उन्हें छूती भी न थी। भाभी और मैं शायद ही बैठकर बातें करते। अगर कभी कोई चर्चा दोनों में होती भी तो वह किसी पुस्तक के बारे में ही होती। राजनीति के बारे में एक शब्द भी कहने की किसीको इच्छा न होती।

समय जाते देर नहीं लगती। उषा ने एम० ए० कर लिया। प्रथम श्रेणी में आई और पूना के उसी कालेज में, जिसमें वह पढ़ रही थी, उसे लेक्चरर की नौकरी मिल गई।

इसी समय एक खलबली मच गई। सरकार को सूचित करके विनोबा भावे ने व्यक्तिगत सत्याग्रह किया। सर्वत्र इसकी चर्चा होने लगी। पर यह देखकर कि भाभी उस विषय में कुछ भी नहीं बोल रही हैं, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जबतक भाभी स्वयं कुछ नहीं कहेंगी तबतक मैं उनसे इस विषय में कोई बात नहीं करूंगा, ऐसा मैंने निश्चय कर लिया था।

व्यक्तिगत सत्याग्रह की परंपरा आरंभ हो गई थी। कांग्रेस-मंत्रि-मंडल के कुछ मंत्रियों ने भी व्यक्तिगत सत्याग्रह किया। इसके बाद अन्य कांग्रेसी भी गांधीजी की अनुमति प्राप्त करके यह सत्याग्रह करने लगे। इस सत्याग्रह में कोई भी शामिल हो सकता था, लेकिन कुछ विशेष शर्तों को स्वीकार करके। सत्याग्रह-पत्रिका पर हस्ताक्षर करनेवालों में से जिन मनुष्यों को गांधीजी चुनते, वे ही यह सत्याग्रह कर सकते थे।

जिस दैनिक में मैं काम कर रहा था, वह दैनिक आजकल बंद हो गया था। इसलिए मैंने एक दूसरे दैनिक के आफिस में प्रूफ-संशोधन की नौकरी कर ली थी। आगे उसी दैनिक के सम्पादक होने की मुझे आशा थी। एक दिन आफिस से घर आने पर मैं व्यक्तिगत सत्याग्रह के बारे में बातें कर रहा था। मैं जब-जब ऐसी कोई चर्चा करने लगता, भाभी हमेशा मेरी बातें काट देतीं। पर आज वही भाभी मेरी बातें चुपचाप सुन रही थीं। इसी समय दादा अपने कमरे से नीचे उतरकर आये। बोले, “बालू, ऐसी बातें इस घर में मत किया करो। अगर करना चाहते हो तो बेंड गार्डन चले जाया करो और वहां किया करो। समझे?”

“क्यों?” भाभी ने पूछा।

निर्विकार मुद्रा से भाभी की ओर देखकर गालों में हँसते हुए दादा बोले, “जानकर भी क्यों पूछ रही हो ?”

“ऐसा ?” भाभी ने होंठों तक आया क्रोध जबरदस्ती निगलकर कहा। उनकी मुद्रा बदल गई।

“अब समझ गई न ?” कहकर दादा चले गये।

“समझ गई !” दादा के कानों में उनके शब्द पड़ जायं, इस अन्दाज़ से आवाज़ उठाकर भाभी बोलीं।

दादा के पीछे-पीछे उषा भी उठकर चल दी।

“देख लिया ? सुन लिया ?” भाभी मेरी ओर देखकर धीरे-से बोलीं, “अब तो समझ गये न ?”

भाभी क्या समझी थीं, यह मैं नहीं कह सकता, पर मैं इस मामले को ठीक से नहीं समझ पाया। मैंने कहा, “सच बताऊं ? मैं ठीक से कुछ भी नहीं समझ पाया हूँ। पर मुझे शक होता है कि दादा की यह चेतावनी सिर्फ आज के लिए नहीं है, आगे के लिए भी है !”

“तुम बिल्कुल ठीक समझे हो।” भाभी बोलीं और फिर खामोश हो गईं।

बहुत देर तक हम दोनों उसी तरह चुप बैठे रहे। एक शब्द भी नहीं बोले।

एक दिन शाम का समय था। दादा और उषा बाहर घूमने जाने के लिए हँसते हुए जीना उतरकर नीचे आये और हम दोनों की ओर जरा भी ध्यान न देकर सीधे बाहर चल दिये। उनके बाहर चले जाने पर भाभी मेरी ओर मुड़कर बोलीं, “यह मुंदी मार अब कबतक वरदायत करूँ ? तुम तो बाहर रहते हो, इसलिए तुम मेरी कसक क्या जानो ? पर प्रत्यक्ष मेरी आँखों के सामने ये लीलाएं रोज़ हो रही हैं। मुझे धिक्कारा जा रहा है ! यह सब देखते हुए भी चुप कैसे बैठे रहूँ ?”

मैं कुछ न बोला, मुझे भी शक हो ही रहा था। शक तो पहले से ही था। पर आजकल मैं साफ देख रहा था कि दादा ने सारी मर्यादाएं तोड़ दी थीं। पहले भी वह उषा के साथ घूमने जाते थे, पर छिपकर जाते थे। अब वह उषा को साथ लेकर रोज़ सुबह-शाम खुल्लम-खुल्ला घूमने जाने लगे।

ोनों साथ ही लौटते भी थे । अपने अबतक के जीवन में दादा भाभी को साथ लेकर एक दिन भी कभी घूमने नहीं गये थे ।

शहर में पहले से ही तरह-तरह की बातें होती थीं, पर अब यह विषय जोगों को पुराना लगने लगा था । उनके लिए यह अब एक नित्य की बात हो गई थी । अतः कहीं भी इसकी चर्चा न होती । मुझे भी यह सब दिखाई दे रहा था । इसीलिए मैं चुप रहा ।

“क्यों, चुप क्यों हो ?” भाभी बोलीं, “क्या तुम कुछ नहीं कहना चाहते ?”

“नहीं,” मैंने कहा, “यह बात कोई नई नहीं है । पहले से ही यह सब मैं देख रहा हूँ । उन दिनों जब मैं उन दोनों पर निगरानी रखने लगता था तो आप वह पसन्द नहीं करती थीं । अब आप क्यों शिकायत करती हैं ?”

“यह शिकायत नहीं है, लाला ।” भाभी बोलीं, “मैं सिर्फ पूछ रही हूँ । पुरुष-जाति को नाम धरना मुझे अच्छा नहीं लगता । अगर कोई स्त्री पुरुष-जाति को नाम धरती थी तो मुझे लगता कि वह पुरुषों पर व्यर्थ ही दोषारोपण कर रही है । पर अब बात प्रत्यक्ष रूप से सामने आ गई है । भविष्य अन्धकारमय दीखने लगा है । अब जान गई हूँ कि पुरुष-जाति को जो दोष दिये जाते हैं, वे कुछ भी नहीं हैं ! यह इसी तरह चलेगा । इसमें कभी कोई फर्क न होगा ।”

उनके हृदय से निकलनेवाली आह के साथ ही मेरे भी हृदय से उसी तरह की एक गहरी सांस निकल गई । इसपर मुझे आश्चर्य हुआ । क्या मेरे हृदय में किसी स्थान पर संवेदना उत्पन्न हुई ?

यद्यपि मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, फिर भी मेरे सामने प्रश्न खड़ा हो गया कि इसका आखिर उपाय क्या ? मामला इस हद तक पहुंच गया था कि उसका कुछ-न-कुछ उपाय करना आवश्यक था, पर उपाय करना संभव न था । लेकिन उपाय किने बिना चारा भी तो न था । अशिक्षित और अपढ़ लोगों की बात दूसरी होती है । पर सुशिक्षितों की घुटन उन्हें असह्य हो उठती है । मैंने कहा, “कुछ दिनों के लिए अपने बापू के पास बम्बई जाकर रहिये न ?”

“कुछ दिनों के लिए क्यों ?” भाभी बोलीं, “अब जहां भी जाऊंगी,

हमेशा के लिए ही जाऊंगी। अब मैं अगर जाऊं तो इनके लिए सारे रास्ते खुल जायेंगे।” कहते-कहते भाभी क्षणभर को रुकीं, फिर बोलीं, “मेरी तरह उनको भी घुटन होती होगी। किसी एक को रास्ता साफ कर देना चाहिए। उन्हें यह जरूरत महसूस नहीं होती, परन्तु मुझे अपनी बहन की भलाई देखनी चाहिए। उसके लिए त्याग किये बिना अब चारा नहीं। कम-से-कम एक जीव को तो सुख मिल जायगा !”

उस दिन भोजन के बाद हम सब बैठे हुए थे। दादा नहीं थे। उस समय मैंने उषा से पूछा, “क्या तुमने अब मास्टरनी बनी रहना ही तय कर लिया है ?”

“तो फिर क्या करूं ?” उषा बोली, “कांग्रेस के सिद्धान्तों पर मेरी कोई श्रद्धा नहीं। वे मुझे जंचते ही नहीं हैं। जितना अधिक सोचती हूं, उतना ही अधिक मत-भेद होता जाता है। विश्वास किसपर रखा जाय, यही नहीं समझ पा रही हूं।”

“यह सच है।” मैंने कहा, “बम्बई के एक कम्युनिस्ट नेता मेरे दफ्तर में आये थे। वह कह रहे थे कि उनकी पार्टी की किसी लड़की ने पुलिस को उनकी पार्टी के सारे भेद बता दिये हैं।” यह खेली गई चाल किस तरह काम करती है, यह देखने के लिए ही मैंने उसके चेहरे की ओर देखा। उषा चौंक पड़ी। मैंने कहा, “कहीं तुम्हींने तो यह नहीं किया ?”

“मैंने ?” उषा घबराती हुई बोली, “मैं क्यों बताऊंगी अपनी पार्टी के भेद ? और उन्हें बताने से मुझे क्या फायदा ? कौन थे वह नेता ?”

“हमारे सम्पादकजी से बातें कर रहे थे।” मैंने कहा। सच पूछा जाय तो कोई नेता-वेता नहीं आया था। यह देखकर कि उसके माथे पर शिकनें उभर उठी हैं, मैंने कहा, “मैं उनका नाम नहीं जानता। यदि नाम पूछता तो वह व्यर्थ ही शक करने लगते। सभी जानते हैं कि मेरे भाईसाहब पुलिस में हैं।”

“मनुष्य का स्वभाव भी क्या ही अजीब होता है !” उषा बोली, “तुमने सुना, सुलू जीजी ? तुम्हारे लाला क्या कह रहे हैं ?”

“ठीक ही तो कह रहे हैं। मुझे भी यही लगता है।” भाभी शान्ति से बोलीं।

“तुम्हें भी यही लगता है ?” जहां बैठी थी, वहीं एकदम खड़ी होकर उषा बोली, “तो कहना होगा कि रावसाहब का शक ठीक है। तुम दोनों के मन एक हो गये हैं या तुम दोनों एकमत हो गये हो।”

“तुम्हारे जी में आये सो समझ लो। पर मैं यह कहना चाहती हूं कि मनुष्य जब एक अपराध करता है और उस अपराध के लिए कोई पश्चात्ताप नहीं होता तो वही अपराध वह पुनः कर सकता है। ऐसा करनेवाले को दोष नहीं दिया जा सकता।”

“अच्छा, यह बात है ?” उषा गुस्से से तेज होकर बोली, “तुम मेरी बड़ी बहन हो। मुझे तुम्हारा लिहाज रखना चाहिए। पर मैं भी तुमसे कह देना चाहती हूं कि मेरी आंखें फूट नहीं गई हैं। अगर मैं अपराधी हूं तो तुम भी बेकसूर नहीं हो, निर्मल नहीं हो। तुम भी गुनाह कर रही हो और उस गुनाह का फल भोगने का समय भी नजदीक आ गया है।”

“अच्छा किया जो तुमने यह बता दिया।” भाभी उतनी ही शान्ति से बोलीं, “लाला ने यह विषय उठाया था, इसलिए मुझे यह मालूम हुआ, वरना मैं अन्धकार में ही रहती। ठीक है। अब सावधान रहूंगी।”

“अच्छा-अच्छा ! बड़ी लाला का नाम ले रही हो ?” आवेश में भरकर उषा वहां से चली गई।

इसी समय दादा आये और हमारी ओर कोई ध्यान न देते हुए ऊपर चले गये। मेज पर बैठी हुई भाभी कुछ लिख रही थीं। इसके पहले वहां लिखने वह कभी न बैठी थीं। वह मेज मेरी थी।

वह पत्र लिख रही थीं। लिख चुकीं तो उन्होंने मुझसे एक खाली लिफाफा मांगा और उसमें पत्र को बन्द करके उसपर पता लिखे बिना ही उसे अपने साथ लेकर चल दीं।

सुबह उठकर मैं जब बाहर आया, तब वहीं हॉल में एक कोच पर सोई हुई भाभी मुझे दिखाई दीं। उषा कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। यदि कोई काम नहीं होता था तो दादा जल्दी उठकर ऊपर से नीचे नहीं उतरते थे। मैं सोच ही रहा था कि भाभी को किस तरह जगाऊं कि एकदम वह चौंकर उठ पड़ें। बोलीं, “कैसे एक पगली की तरह मैं अभी तक यहीं सोई रही।” मैं कुछ कहूँ कि उससे पहले ही वह भट-से उठकर भीतर चली गईं।”

मैं आश्चर्यचकित देखता रहा। दादा और उषा बाहर से भीतर आये। बड़े तड़के ही उठकर दोनों शायद घूमने गये थे।

कई दिन निकल गये। अचानक एक दिन जब दादा बाहर से लौटे तो आते ही उन्होंने मुझे खबर दी कि सत्याग्रह करने के कारण भाभी गिरफ्तार हो गई हैं। पति के हाथ से गिरफ्तार होने का सौभाग्य आखिर उन्हें प्राप्त हो ही गया।

दादा बोले, “मुझे लगता है, उसे ज्यादा सजा नहीं होगी। पर देखो बालू, बुरा न मानना, अब तुम अपना अलग इन्तजाम करो। अगर इसी शहर में कहीं दूसरे मकान में जाकर रहोगे तो लोग व्यर्थ ही कहेंगे कि मैंने तुम्हें घर से निकाल दिया। इसलिए मैं सोचता हूँ, तुम बम्बई चले जाओ। तुम्हारी भाभी के पिता तुम्हारे लिए वहाँ कोई नौकरी दिला देंगे। अगर फिलहाल तुम्हें रुपये की जरूरत हो तो...!”

“नहीं, बिल्कुल नहीं।” मैंने कहा, “मुझे रुपये नहीं चाहिए। अबतक जितने रुपये मैंने कमाये हैं, वे मेरे पास ज्यों-के-त्यों रखे हैं।”

दादा जाने लगे तो उन्हें रोककर मैंने कहा, “मैं आज ही जा रहा हूँ। आगे शायद आपसे भेंट न हो सके, इसलिए अभी बिदा ले रहा हूँ!”

इतना कहकर मैंने उनके चरणों पर सिर रख दिया।

सिर उठाकर मैं खड़ा हुआ और सामने देखा तो उषा खड़ी हुई थी।

चकित होने का भाव लाकर वह बोली, “क्या हुआ, बलवन्तराव?”

“मैं बम्बई जा रहा हूँ। तुम्हारे बापू के पास।”

“शायद बापू ने तुम्हें बुलाया है? कब लौटोगे?”

“अब लौटकर नहीं आऊंगा। वहीं रहूंगा।”

दादा की ओर मुड़कर उषा बोली, “हमारे बापू का स्वभाव बड़ा विलक्षण है, रावसाहब! किसपर कब कैसे खुश हो जायेंगे, यह कोई नहीं कह सकता? दो ही दिन में बलवन्तराव पर इतने खुश हो गये हैं!”

“अच्छा-अच्छा!” दादा बोले, “और देखो बालू, बिना खाना खाये मत जाना। समझे?” कहकर दोनों ही ऊपर के कमरे में चले गये।

...

...

...

“सिबिल मैरिज?” मैं आश्चर्यचकित होकर बोला, “जेल में भले ही

गें, पर भाभी अभी जीवित हैं। एक पत्नी के रहते हुए विवाह रजिस्टर कैसे होगा ?”

“यह मैं कुछ नहीं जानता।” बापू बोले, “यह पढ़ लो उषा का पत्र। मुझे यकीन हो जायगा। अच्छा हुआ, मैं एक भ्रंशट से छूटा ! कैसे ही क्यों हो, पर उषा का यह पत्थर मेरे सीने से आखिर हटा तो !”

“पर अब भाभी का क्या होगा ? मैं नहीं सोचता कि वह अब जेल से छूटने पर दादा के घर जायंगी ?”

“उसे वहां जाने की जरूरत क्या है ?” बापू चिढ़कर बोले, “यहां मैं जो अकेला हूं ! मेरे पास कौन बैठा है। मरूंगा तो मुंह में कोई गंगाजल डालनेवाला भी तो नहीं है मेरे पास !”

मेरी आंखें एकदम डबडबा आईं। बापू ने यह देखा। बोले, “अरे गालू, तुम रोते हो ! किसलिए रोते हो ? तुम्हींने तो सारा हाल मुझे बताया था ? अच्छा हुआ, वह भी छूटी बेचारी ! अब दुबारा जेल जाने के लिए उसे किसीके बाप का डर नहीं रहा। पहले से ही वह कह रही थी कि उसे देश-कार्य करने दिया जाय। पर मैंने ही जबरदस्ती उसकी शादी कर दी थी। जो शादी हुई थी, वह अब टूट गई है। अब वह बड़े आनन्द से विद्या-मंदिर खोल सकती है। मैंने उसका जो विवाह कर दिया था, वह पूरी मूर्खता थी। अपनी उस मूर्खता के प्रायश्चित्त स्वरूप मैं उसके विद्या-मंदिर को पचास हजार रुपये दे दूंगा।”

बापू की यह बात सुनकर मेरे मन का जैसे मनो बोल उतर गया। मैंने कहा, “मुझसे आप यह सब क्यों कह रहे हैं ?”

“तुम्हींसे कहना जरूरी है।” बापू बोले, “बात यह है कि हम बूढ़ों को लगता है कि लड़कियों के कल्याण की डोर हमारे हाथ में है और हम उन्हें किसी भी खूँटे से बांध देते हैं। लड़की की राय की हम कोई परवा नहीं करते। उसका नतीजा यह होता है।”

“पर यह सिविल मैरिज कैसे हुई ?”

“मैं कुछ नहीं जानता। जैसे भी हुआ हो, पर हुआ है। उसने साफ-साफ लिखा है। मेरा आशीर्वाद मांगा है और कुछ नहीं मांगा। यदि रुपये मांगती तो सोचना पड़ता। सिर्फ आशीर्वाद दे देने में मेरा क्या जाता

है ? अब तुम हमारे घर ही रहो, बालू । तुम्हें और कहीं रहने की जरूरत नहीं है । आखिर मुझे भा तो यहां एक सहारा चाहिए । अगर सुलू आई तो वह भी यहीं रहेगी । अगर कहीं अलग रहना चाहेगी तो वह प्रबन्ध भी कर दूंगा । पर मैं सोचता हूं कि उसे अलग नहीं रहना चाहिए । अगर उसका किसीके साथ तय हो गया हो तो मैं उसका विवाह भी कर दूंगा । मुझे कोई आपत्ति नहीं । यदि कहीं न तय हुआ हो तो कोई दूसरा वर खोजकर भी उसका विवाह कर देने में मुझे कोई कठिनाई न होगी । वह जो भी देश-सेवा या जन-सेवा करना चाहती है, उसके लिए उसका कोई जोड़ीदार भी रहे तो बड़ा अच्छा होगा, ऐसा मुझे लगता है । वह उसकी सुख-सुविधा का ध्यान रखेगा । वह बड़े विचित्र स्वभाव की है । अकेली रहेगी तो जिन्दगी-भर इसी धक्के से कुढ़-कुढ़कर घुलती रहेगी ।”

बापू लगातार बड़बड़ा रहे थे और मेरा कलेजा लगातार धड़क रहा था ।

...

...

...

जब भाभी सजा की मियाद पूरी हो जाने पर छूटकर आई, तब सारा भेद खुला । वह खबर उन्हें जेल में ही लग गई थी ।

उनका सगोत्र विवाह था । कानून की दृष्टि से वह विवाह ही नहीं था । आज तक वह दादा के साथ पत्नी की हैसियत से रह रही थीं, पर कानून की दृष्टि से उनकी स्थिति दूसरी थी । हिन्दू धर्मशास्त्र और हिन्दू कानून की कृपा से वह आप-ही-आप छूट्टी पा गई थीं । यही बहाना लेकर दादा ने उषा से विवाह कर लिया था ।

इस छुटकारे से उन्हें आनन्द हो रहा था । इतने बरसों की वेदना अब खत्म हो गई थी । उन्हें लग रहा था, जैसे उनका नया जन्म हुआ है ।

मेरा हृदय आनन्द से भर आया । लगा, जैसे जीवन सार्थक हो गया । आशीर्वाद देने के लिए बापू हाथ आगे बढ़ाये तैयार ही खड़े थे ।

आज भी मैं उन्हें ‘भाभी’ कहता हूं, पर वह मुझे अब ‘लाला’ नहीं कहतीं ।



